तंत्र–सूत्र

परम आनंद के सूत्र

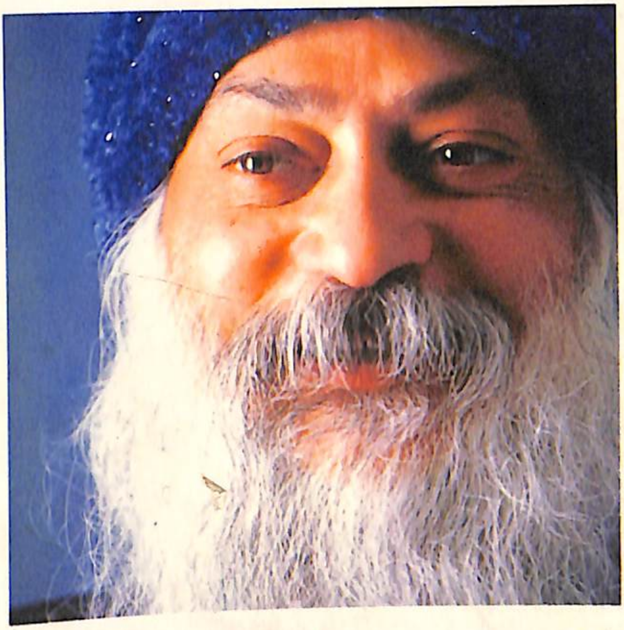

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र
दसवां खंड

ओशो

परम आंनद के सूत्र

(विज्ञान भैरव तंत्र : दसवां खंड)

तंत्र-सूत्र : ओशो द्वारा भगवान शिव के विज्ञान भैरव तंत्र पर दिए गए 80 प्रवचनों में से 73 से 80 प्रवचनों का संकलन।

हिन्द पॉकेट बुक्स

संकलन : मा प्रेम कल्पना
संपादन : स्वामी आनंद मैत्रेय, स्वामी आनंद सत्यार्थी
संयोजन : स्वामी योग अमित
साज-सज्जा : स्वामी जगदीश भारती
लेज़र टाइपसेटिंग : स्पैक्ट्रम मीडिया, दरियागंज, नई दिल्ली-110 002
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड,
दिलशाद गार्डन, जी. टी. रोड, दिल्ली-110 095
मुद्रक : न्यूटेक फोटोलिथोग्राफर्स दिल्ली-110095
कापीराइट : सर्वाधिकार सुरक्षित
इस पुस्तक अथवा इस पुस्तक के किसी अंश को इलेक्ट्रॉनिक, मेकेनिकल, फोटोकॉपी, रेकार्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व प्रकाशक की लिखित अनुमति अनिवार्य है।
संस्करण : 2001
प्रतियां : 2000

भूमिका

तंत्र का निमंत्रण

इस अंतिम खंड के साथ तंत्र-सूत्र की यात्रा पूरी होती है या इसे ऐसा कहें कि तंत्र-सूत्र को समझने की यात्रा पूरी होती है और इसके विस्मय-जगत में प्रवेश प्रारंभ होता है। ये विधियां केवल बौद्धिक तल पर समझने के लिए नहीं हैं। ये तो चुनौतियां हैं अनुभूति की—ये चिनगारियां हैं साधक के लिए, जो विराट के मार्ग पर सब प्रकार की क्षुद्रताओं का दहन करती चलेंगी। ये विधियां केवल उन साहसियों के लिए हैं जो अज्ञात की खोज के लिए अपने अहंकार का विसर्जन करने के लिए बिलकुल नहीं घबराते और उतर पड़ते हैं अनंत के सागर में।

ओशो कहते हैं : 'शिव की ये विधियां केवल उनके लिए हैं जो कुछ करने को तैयार हैं। तुम इनके ऊपर दार्शनिक चिंतन-मनन कर सकते हो, उसका कोई अर्थ नहीं है। लेकिन यदि तुम सच में ही करने को तैयार हो तो तुम्हें कुछ घटना शुरू होगा। ये जीवंत विधियां हैं, कोई मुर्दा सिद्धांत नहीं हैं। तुम्हारी बुद्धि की जरूरत नहीं है, तुम्हारे प्राणों की समग्रता चाहिए। और कोई भी विधि काम देगी। तुम यदि प्रयोग करने को राज़ी हो तो कोई भी विधि काम देगी। तुम एक नए मनुष्य हो जाओगे।'

और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि—प्रत्येक व्यक्ति को सभी विधियों को नहीं करना है। ये सभी विधियां अपने-आप में इतनी आणविक रूप से सशक्त हैं कि कोई एक विधि ही उस परम विस्फोट का प्रारंभ बिंदु बन जाएगी। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति प्रयोग के आधार पर अपने लिए विधि खोज सकता है। ओशो कहते हैं : 'इन एक सौ बारह विधियों में केवल एक विधि तुम्हारे लिए है। यदि तुम कई विधियों का उपयोग करोगे तो उलझन में पड़ोगे, क्योंकि इतनी विधियों के उपयोग के लिए तुम्हें बड़े विशाल मन की जरूरत पड़ेगी जो विरोधाभासों को पचा सके। अभी तो ऐसा संभव नहीं है, शायद किसी

दिन संभव हो जाए। तुम इतने समग्र, इतने संपूर्ण हो सकते हो कि कई विधियों के साथ एक साथ यात्रा कर सको। फिर कोई समस्या नहीं होगी। लेकिन फिर कोई जरूरत भी न रहेगी। अभी जरूरत है। तो अपनी विधि खोज लो।'

तीसरी बात, ओशो कहते हैं : 'शिव बिना किसी व्यवस्था के सब विधियां दे रहे हैं। उन्हें व्यवस्था में नहीं बांधा जा सकता, क्योंकि व्यवस्था का अर्थ है विरोधाभासों का, विरोधों का निषेध। और यहां सभी विरोधी ध्रुव समाहित हैं। यहां अपोलो और डायोनीशियस दोनों है, गंभीर और हंसता हुआ दोनों है, अंतरस्थ और पार दोनों है, लौकिक और पार दोनों है; क्योंकि यह सब कुछ है।'

तंत्र के संबंध में एक और जो आधारभूत बात ओशो समझाते हैं वह यह है कि ये सभी एक सौ बारह विधियां कामुक हैं। असल में कोई भी ध्यान की विधि गैर-कामुक नहीं हो सकती। लेकिन तुम्हें काम शब्द की विशालता को समझना पड़ेगा।

ओशो समझाते हैं : 'जब भी तंत्र कहता है काम-ऊर्जा तो उसका अर्थ है जीवन-ऊर्जा, स्वयं जीवन की ऊर्जा। वे पर्यायवाची हैं। जिसे भी हम काम कहते हैं वह जीवन-ऊर्जा का एक आयाम ही है। उसके और भी आयाम हैं। और ऐसा होना भी चाहिए। तुम किसी बीज को अंकुरित होते देखते हो, कहीं किसी वृक्ष पर फूल खिल रहे हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं—पूरी की पूरी घटना कामुक है। यह जीवन है जो कई रूपों में अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। जब कोई पक्षी गीत गा रहा है तो यह एक कामुक निमंत्रण है। जब एक फूल तितलियों को और मधु-मक्खियों को आकर्षित कर रहा है तो यह भी एक निमंत्रण है, क्योंकि मधु-मक्खियां और तितलियां प्रजनन के लिए बीजों को ले जाएंगी।

...'जहां भी विपरीत का मिलन होता है, तंत्र 'काम' शब्द का उपयोग करता है। यह एक कामुक घटना है और तुम्हारे भीतर के विरोधी ध्रुवों का कैसे मिलन हो जाए, ध्यान का सारा उद्देश्य यही है। तो ये सारी एक सौ बारह विधियां कामुक हैं और कुछ नहीं हो सकता, कोई संभावना नहीं है। लेकिन काम शब्द की विराटता को समझने की कोशिश करो।'

जीवन के प्रत्येक आयाम को तंत्र अपने में समाहित कर लेता है। तंत्र परम स्वीकार का मार्ग है—इसलिए परम आनंद का भी। तंत्र पूरे विश्व के साथ, पूरे ब्रह्मांड के साथ—नदी, पहाड़, पेड़-पौधे, प्राणी, व्यक्ति, मित्र, प्रिय, प्रेयसी सभी

के साथ सहानुभूति का मार्ग है। सजगता और संवेदनशीलता का मार्ग है। इसी सजगता व संवेदनशीलता के साथ हम पूरे जगत के साथ एकरूप होते हैं, विशाल तथा विराट होते हैं। वही असली आनंद है, परम आनंद है। इसी परम आनंद के सर्वथा अनूठे मार्ग पर ओशो हमें निमंत्रण दे रहे हैं।

स्वामी चैतन्य कीर्ति

सम्पादक : ओशो टाइम्स इंटरनेशनल

अनुक्रम

73. रूपांतरण का भय **11**

100. अनासक्त रहो 16
101. अपने को सर्वशक्तिमान मानो 24

74. संवेदनशील और आसक्ति **35**

1. संवेदनशील होते हुए भी विरक्त कैसे हुआ जाए ? 35
2. आप अपने ही शरीर को ठीक क्यों नहीं कर सकते ? 43
3. स्वयं श्रम करें या आप पर सब छोड़ दें ? 47
4. क्या सच में जीसस को पता नहीं था कि पृथ्वी गोल है ? 54

75. विपरीत ध्रुवों में लय की खोज **57**

102. भीतर तथा बाहर आत्मा की कल्पना करो 61
103. कामना से लड़ो मत 68
104. देखने की सीमाएं 71
105. अस्तित्व की अखंडता को अनुभव करो 75

76. काम-ऊर्जा ही जीवन-ऊर्जा है **79**

1. तंत्र की विधियां काम से ज्यादा संबंधित नहीं लगती हैं। 79
2. ज्ञान और अज्ञान आपस में किस प्रकार संबंधित हैं ? 82
3. कृष्णमूर्ति विधियों के विरोध में क्यों हैं ? 85
4. व्यवस्था के हानि-लाभ क्या हैं ? 92

77. चेतना का विस्तार **101**

106. प्रत्येक प्राणी हो जाओ 103
107. जानो कि केवल चेतना ही है 111
108. अपने ही आंतरिक मार्गदर्शक बनो 116

78. अंतःप्रज्ञा से जीना 123

1. कुछ विधियां बहुत विकसित लोगों के लिए लगती हैं। 123
2. अन्तर्विवेक को कैसे पहचानें ? 131
3. क्या अंतःप्रज्ञा से जीने वाला व्यक्ति बौद्धिक रूप से कमजोर होगा ? 140

79. शून्यता का दर्शन **144**

109. अपने शरीर को रिक्त अनुभव करो 148
110. सक्रियता में लीलापूर्ण रहो 155
111. ज्ञान और अज्ञान के पार 164
112. भीतर के आकाश में प्रवेश करो 165

80. पूर्णता एवं शून्यता का एक ही अर्थ है **169**

1. यदि भीतर शून्य है तो इसे आत्मा क्यों कहते हैं ? 169
2. बुद्ध पुरुष निर्णय कैसे लेता है ? 173
3. संत लोग शांत जगहों पर ही क्यों रहते हैं ? 181
4. आप कैसे जानते हैं कि चेतना शाश्वत है ? 183
5. मेरे बुद्धत्व से संसार में क्या फर्क पड़ेगा ? 187

73

रूपांतरण का भय

सूत्र

100. वस्तुओं और विषयों का गुणधर्म ज्ञानी व अज्ञानी के लिए समान ही होता है। ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में बना रहता है, वस्तुओं में नहीं खोता।

101. सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानो।

बहुत लोग ध्यान में उत्सुक दिखाई पड़ते हैं, लेकिन वह उत्सुकता बहुत गहरी नहीं हो सकती, क्योंकि इतने थोड़े से लोग ही उससे रूपांतरित हो पाते हैं। यदि रस बहुत गहरा हो तो वह अपने आप में ही एक आग बन जाता है। वह तुम्हें रूपांतरित कर देता है। बस उस गहन रस के कारण ही तुम बदलने लगते हो। प्राणों का एक नया केन्द्र जगता है। तो इतने लोग उत्सुक दिखाई पड़ते हैं, लेकिन कुछ भी नया उनमें जगता नहीं, कोई नया केन्द्र जन्म नहीं लेता, किसी क्रिस्टलाइजेशन की उपलब्धि नहीं होती। वे वैसे के वैसे ही बने रहते हैं।

इसका अर्थ हुआ कि वे स्वयं को धोखा दे रहे हैं। बहुत सूक्ष्म होगी प्रवंचना, लेकिन होगी ही। यदि तुम औषधि लेते रहो, उपचार कराते रहो, और फिर भी रोग वैसा का वैसा बना रहे—वरन बढ़ता ही जाए—तो तुम्हारी औषधि, तुम्हारे उपचार झूठे ही होंगे। शायद गहरे में तुम बदलना ही नहीं चाहते। वह भय, रूपांतरण का भय, बहुत गहरा है। तो ऊपर-ऊपर तो तुम सोचते रहते हो कि तुममें बड़ी गहन उत्सुकता है, लेकिन गहरे में तुम धोखा देते रहते हो।

रूपांतरण का भय ऐसा ही है जैसे मृत्यु का भय। वह मृत्यु ही है, क्योंकि पुराने को विदा होना पड़ेगा और नए का प्रादुर्भाव होगा। तुम नहीं बचोगे, तुम से कुछ ऐसा जन्मेगा जो तुम्हारे लिए बिल्कुल अज्ञात होगा। जब तक तुम मरने को तैयार नहीं हो, ध्यान में तुम्हारी उत्सुकता झूठी है, क्योंकि जो मरने को तैयार

हैं वे ही पुनरुज्जीवित होंगे। नया पुराने के सातत्य में नहीं चल सकता। पुराने के क्रम को तो तोड़ना ही होगा। पुराने को तो जाना ही होगा। केवल तभी नया जन्म ले सकता है। नया कोई पुराने का विकास नहीं है, उसका सातत्य नहीं है—नया बिल्कुल नया है। और वह तभी आता है जब पुराने की मृत्यु हो जाए। पुराने और नए के बीच एक अंतराल होता है, वह अंतराल ही तुम्हें भयभीत करता है।

तुम भयभीत हो। तुम रूपांतरित तो होना चाहते हो लेकिन साथ ही साथ पुराने भी बने रहना चाहते हो। यह प्रवंचना है। तुम विकसित होना चाहते हो, लेकिन तुम तुम ही बने रहना चाहते हो। तब विकास असंभव है। तब तुम केवल स्वयं को धोखा ही दे सकते हो; तब तुम केवल यह सोचते और सपना देखते रह सकते हो कि कुछ हो रहा है; लेकिन कुछ भी होगा नहीं, क्योंकि बुनियादी बात ही चूक गई।

तो दुनिया भर में बहुत लोग हैं जो ध्यान में, मोक्ष में, निर्वाण में उत्सुक हैं, और हो कुछ भी नहीं रहा। इस सबका इतना शोर है लेकिन वास्तव में कुछ भी नहीं हो रहा। बात क्या है ?

कई बार मन इतना चालाक होता है कि चूंकि तुम रूपांतरित होना नहीं चाहते तो मन एक नकली उत्सुकता गढ़ लेगा ताकि तुम स्वयं को कह सको, 'मैं तो उत्सुक हूं, मैं तो वह सब कर रहा हूं कि जो किया जा सकता है।' और तुम वैसे के वैसे बने रहते हो। और जब कुछ नहीं होता तो तुम सोचते हो कि जिस विधि का तुम उपयोग कर रहे हो वह गलत है, जिस गुरु का अनुसरण कर रहे हो वह गलत है, शास्त्र में, विधान में, विधि में कोई गलती है। यह तुम कभी नहीं सोचते कि अगर उत्सुकता वास्तविक हो तो गलत विधि द्वारा भी रूपांतरण संभव है; गलत विधि द्वारा भी तुम रूपांतरित हो जाओगे। यदि तुम सच में ही बदलना चाहते हो तो गलत गुरु के पीछे चलकर भी बदल जाओगे। यदि तुम्हारी आत्मा और तुम्हारा हृदय तुम्हारे प्रयास में है तो तुम्हारे सिवाय तुम्हें और कोई भी नहीं भटका सकता। और तुम्हारी अपनी प्रवंचनाओं के सिवाय और कुछ भी तुम्हारे विकास में बाधा नहीं है।

जब मैं कहता हूं कि कोई गलत गुरु, कोई गलत विधि, कोई गलत सिद्धांत भी तुम्हें रूपांतरण की ओर ले जा सकता है तो मेरा अर्थ है कि रूपांतरण किसी विधि द्वारा नहीं घटता, तुम्हारे समग्र प्रयास से घटता है। विधि तो बस एक बहाना है, विधि तो बस एक सहारा है, वह गौण है—बुनियादी बात है तुम्हारा उसमें समग्र होना। लेकिन तुम अधूरे-अधूरे करते हो—करते भी नहीं, करने की

बात ही किए चले जाते हो। और शब्द एक भ्रम खड़ा कर देते हैं : क्योंकि तुम इस विषय में इतना सोचते हो, इस विषय में इतना पढ़ते हो, इस विषय में इतना सुनते हो कि तुम्हें लगने लगता है जैसे तुम कुछ कर रहे हो। तथाकथित धार्मिक लोगों ने धोखा देने की बहुत सी तरकीबें गढ़ ली हैं।

मैंने सुना है कि एक कार वाले को सड़क पर कार चलाते हुए दिखाई पड़ा कि स्कूल की बिल्डिंग में आग लग गई है। उस छोटे से गांव के उस छोटे से स्कूल का शिक्षक था मुल्ला नसरुद्दीन। वह एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ था। कार वाले ने उसे आवाज दी, 'तुम वहां बैठे क्या कर रहे हो ? स्कूल की बिल्डिंग में आग लगी हुई है।' मुल्ला नसरुद्दीन बोला, 'मुझे पता है।' कार वाला बड़ा हैरान हुआ। वह बोला, 'तो तुम कुछ कर क्यों नहीं रहे?' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'जब से आग शुरू हुई है मैं बारिश के लिए प्रार्थना कर रहा हूं। कुछ तो मैं कर ही रहा हूं।'

प्रार्थना ध्यान से बचने की एक तरकीब है, और तथाकथित धार्मिक चित्त ने बहुत प्रकार की प्रार्थनाएं ईजाद कर ली हैं। प्रार्थना भी ध्यान बन सकती है—जब वह केवल प्रार्थना भर ही न हो, बल्कि एक गहन प्रयास हो, एक गहन आकांक्षा हो। प्रार्थना भी ध्यान बन सकती है, लेकिन साधारणतया प्रार्थना तो बस एक पलायन है। ध्यान से बचने के लिए लोग प्रार्थना किए चले जाते हैं। कुछ करने से बचने के लिए वे प्रार्थना करते रहते हैं। प्रार्थना का अर्थ है कि परमात्मा कुछ करे। कोई और कुछ करे।

प्रार्थना का अर्थ है कि हम कुछ न करेंगे—हमारे लिए कुछ किया जाए।

ध्यान उन अर्थों में प्रार्थना नहीं है; ध्यान वह प्रयास है जो तुम स्वयं अपने साथ करते हो। और जब तुम रूपांतरित हो जाते हो तो पूरा अस्तित्व तुम्हारे साथ भिन्न ढंग से व्यवहार करता है, क्योंकि अस्तित्व और कुछ नहीं बस तुम जो हो उसके प्रति एक संवेदन है। यदि तुम शांत हो तो पूरा अस्तित्व हजारों-हजारों ढंगों से तुम्हारी शांति को प्रतिसंवेदित करता है। वह तुम्हें प्रतिबिंबित करता है। तुम्हारी शांति अनंत गुना बढ़ जाती है। यदि तुम आनंदित हो तो पूरा अस्तित्व तुम्हारे आनंद को प्रतिबिंबित करता है। यदि तुम दुःख में हो तो भी वही होता है। गणित वही रहता है, नियम वही रहता है—अस्तित्व तुम्हारे दुःख को बढ़ाकर तुम पर लौटा देता है। तो प्रार्थना से कुछ नहीं होगा। केवल ध्यान ही उपयोगी हो सकता है, क्योंकि ध्यान कुछ ऐसा है जो मौलिक रूप से तुम्हें करना है, वह तुम्हारी ओर से किया गया कर्म है।

तो पहली बात तो मैं तुमसे यह कहना चाहूंगा कि इस बात के प्रति सतत

सावधान रहो कि कहीं तुम स्वयं को धोखा तो नहीं दे रहे हो। हो सकता है तुम कुछ करते हुए भी स्वयं को धोखा दे रहे होओ।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक बार दौड़ता हुआ पोस्ट आफिस में आया और पोस्ट मास्टर की कालर पकड़कर बोला, 'मैं पागल हो गया हूं। मेरी पत्नी गुम हो गई है।' पोस्ट मास्टर को दुःख हुआ, वह बोला, 'अच्छा, तुम्हारी पत्नी गुम हो गई है ? लेकिन यह तो पोस्टल डिपार्टमेंट है--तुम्हें उसके गुम होने की खबर पुलिस स्टेशन में लिखवानी पड़ेगी।'

मुल्ला नसरुद्दीन अपना सिर हिलाते हुए बोला, 'मैं दोबारा इस धोखे में आने वाला नहीं हूं। पहले भी मेरी पत्नी खोई थी और जब पुलिस में मैंने उसकी रपट लिखवाई तो वे उसे ढूंढ़कर ले आए। मैं फिर से धोखा खाने वाला नहीं हूं। अगर तुम रपट लिख सको तो लिख लो, वरना मैं चला।'

वह अपने को सांत्वना देने के लिए रिपोर्ट लिखाना चाहता है, ताकि उसे लगे कि जो भी किया जा सकता था उसने किया। लेकिन वह पुलिस में खबर नहीं देना चाहता, क्योंकि उसे डर है।

तुम भी बहुत सी चीजें किए चले जाते हो ताकि तुम्हें सांत्वना रहे, ताकि तुम्हें लगे कि तुम कुछ कर रहे हो। लेकिन वास्तव में तुम रूपांतरित होने के लिए तैयार नहीं हो। तो जो कुछ भी तुम करते हो वह व्यर्थ की ऊहापोह हो जाती है—व्यर्थ ही नहीं, हानिकारक भी, क्योंकि यह समय, ऊर्जा और अवसर की बरबादी है।

शिव की ये विधियां केवल उनके लिए हैं जो कुछ करने को तैयार हैं। तुम इनके ऊपर दार्शनिक चिंतन-मनन कर सकते हो, उसका कोई अर्थ नहीं है। लेकिन यदि तुम सच में ही करने को तैयार हो, तो तुम्हें कुछ घटना शुरू होगा। ये जीवंत विधियां हैं, कोई मुर्दा सिद्धांत नहीं हैं। तुम्हारी बुद्धि की जरूरत नहीं है; तुम्हारे प्राणों की समग्रता चाहिए। और कोई भी विधि काम देगी। तुम यदि प्रयोग करने को तैयार हो तो कोई भी विधि काम देगी। तुम एक नए मनुष्य हो जाओगे।

विधियां तो मात्र उपाय हैं, मैं फिर से दोहराता हूं। तुम यदि तैयार हो तो कोई भी विधि काम दे जाएगी। वे तो बस तरकीबें हैं कि छलांग लेने में तुम्हारी मदद की जा सके—बस ऐसे ही जैसे जंपिंग बोर्ड। किसी भी जंपिंग बोर्ड से तुम सागर में छलांग लगा सकते हो। जंपिंग बोर्डों का कोई महत्त्व नहीं है—वे किस रंग के हैं, किस लकड़ी के बने हैं, इस सबसे कोई फर्क नहीं पड़ता। वे तो बस जंपिंग बोर्ड हैं और उनसे तुम छलांग लगा सकते हो। ये सारी विधियां

जंपिंग बोर्ड हैं। जो भी विधि तुम्हें जंचती है, उसके बारे में सोचते मत रहो, उसे करो।

और जब तुम कुछ करते हो तो कठिनाइयां आनी शुरू होंगी–अगर कुछ न करो तो कोई कठिनाई आने वाली नहीं है। सोचना तो बहुत आसान है, क्योंकि तुम सच में यात्रा नहीं कर रहे, लेकिन जब तुम कुछ करते हो तो कठिनाइयां आती हैं। तो अगर तुम पाओ कि कठिनाइयां आ रही हैं तो समझना कि तुम ठीक रास्ते पर हो–कुछ हो रहा है तुम्हें। फिर पुरानी सीमाएं टूटेंगी, पुरानी आदतें विदा होंगी, परिवर्तन आएगा, उथल-पुथल और अराजकता होगी। सारा सृजन अराजकता से ही निकलता है। तुम्हारा नया सृजन तभी होगा जब वह सब अस्तव्यस्त हो जाए जो तुम अभी हो।

तो ये विधियां पहले तुम्हें तोड़ेंगी; स्वयं को सौभाग्यशाली अनुभव करो–इससे विकास का पता चलता है। कोई भी विकास बिना कठिनाई के नहीं होता। और आध्यात्मिक विकास तो बिना कठिनाई के हो ही नहीं सकता, वह उसका स्वभाव नहीं है। क्योंकि आध्यात्मिक विकास का अर्थ है ऊपर की ओर विकसित होना, आध्यात्मिक विकास का अर्थ है अज्ञात में पहुंचना, अज्ञात में प्रवेश करना। कठिनाइयां तो आएंगी। लेकिन याद रखो कि हर कठिनाई के साथ-साथ तुम मजबूत होते हो। तुम और ज्यादा ठोस हो जाते हो, और ज्यादा प्राणवान हो जाते हो। पहली बार तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे भीतर कुछ केन्द्रित हो रहा है, कुछ ठोस हो रहा है।

अभी की अपनी स्थिति में तो तुम एक लहर की तरह हो, हर क्षण बदल रहे हो, कुछ भी स्थिर नहीं है। वास्तव में तुम किसी 'मैं' का दावा नहीं कर सकते–वह तुम्हारे पास है ही नहीं। तुम बहते हुए बहुत सारे 'मैं' हो, जैसे कोई नदी बह रही हो। अभी तुम एक भीड़ हो, व्यक्ति नहीं। लेकिन ध्यान तुम्हें व्यक्ति बना सकता है, इंडिविजुअल बना सकता है।

यह 'इंडिविजुअल' शब्द प्यारा है—इसका अर्थ है इंडिविज़िबल, अविभक्त। अभी तो जैसे तुम हो, बंटे-बंटे हो। तुम बहुत सारे खंड हो जो बिना किसी केन्द्र के एक साथ चिपके हुए हैं, तुम एक ऐसा घर हो जिसमें कोई मालिक नहीं है सिर्फ नौकर ही नौकर हैं। और एक क्षण के लिए कोई भी नौकर मालिक बन सकता है। हर क्षण तुम भिन्न हो, क्योंकि तुम हो ही नहीं–और जब तक तुम नहीं हो, दिव्य तुम्हें घटित नहीं हो सकता। घटित होगा किसे? तुम तो हो ही नहीं।

मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं, 'हम परमात्मा को देखना चाहेंगे।'

मैं उनसे कहता हूं, 'देखेगा कौन ? तुम तो हो ही नहीं। परमात्मा तो हमेशा मौजूद है, लेकिन देखने के लिए तुम वहां नहीं हो। यह केवल एक उड़ता-उड़ता विचार है कि तुम परमात्मा को देखना चाहते हो।' अगले ही क्षण वे बिल्कुल भी उत्सुक नहीं रह जाते; अगले ही क्षण वे सब भूल चुके होते हैं।

एक सतत, सघन प्रयास और अभीप्सा चाहिए। फिर कोई भी विधि काम दे जाएगी।

अब हम विधियों में प्रवेश करें।

अनासक्त रहो

पहली विधि :

100. वस्तुओं और विषयों का गुणधर्म ज्ञानी व अज्ञानी के लिए समान ही होता है। ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में बना रहता है, वस्तुओं में नहीं खोता।

यह बड़ी प्यारी विधि है। तुम इसे वैसे ही शुरू कर सकते हो जैसे तुम हो; पहले कोई शर्त पूरी नहीं करनी है। बहुत सरल विधि है—तुम व्यक्तियों से, वस्तुओं से, घटनाओं से घिरे हो—हर क्षण तुम्हारे चारों ओर कुछ न कुछ है। वस्तुएं हैं, घटनाएं हैं, व्यक्ति हैं—लेकिन क्योंकि तुम सचेत नहीं हो, इसलिए तुम भर नहीं हो। सब कुछ मौजूद है लेकिन तुम गहरी नींद में सोए हो। वस्तुएं तुम्हारे चारों तरफ मौजूद हैं, लोग तुम्हारे चारों तरफ घूम रहे हैं, घटनाएं तुम्हारे चारों तरफ घट रही हैं, लेकिन तुम वहां नहीं हो। या, तुम सोए हुए हो।

तो तुम्हारे आस-पास जो कुछ भी होता है वही मालिक बन जाता है, तुम्हारे ऊपर हावी हो जाता है; तुम उसके द्वारा खींच लिए जाते हो। तुम केवल उससे प्रभावित ही नहीं होते, संस्कारित भी हो जाते हो, खींच लिए जाते हो। कुछ भी चीज तुम्हें पकड़ ले सकती है, और तुम उसके पीछे चलने लगोगे। कोई पास से गुजरा, तुमने देखा चेहरा सुंदर है—और तुम प्रभावित हो गए। कोई सुंदर पोशाक देखी, उसका रंग, उसका कपड़ा सुंदर है—तुम प्रभावित हो गए। कोई कार गुजरी—तुम प्रभावित हो गए तुम्हारे आस-पास जो कुछ भी चलता है, तुम्हें पकड़ लेता है। तुम बलशाली नहीं हो। बाकी सब कुछ तुमसे ज्यादा बलशाली है। कुछ भी तुम्हें बदल देता है। तुम्हारी भाव-दशा, तुम्हारा चित्त, तुम्हारा मन, सब दूसरी चीजों पर निर्भर है। विषय तुम्हें प्रभावित कर देते हैं।

यह सूत्र कहता है कि ज्ञानी और अज्ञानी एक ही जगत में जीते हैं। एक

बुद्ध पुरुष और तुम एक ही जगत में जीते हो—जगत वही रहता है। अंतर जगत में नहीं पड़ता, अंतर बुद्ध पुरुष के भीतर घटित होता है—वह अलग ढंग से जीता है। वह उन्हीं वस्तुओं के बीच जीता है लेकिन अलग ढंग से। वह अपना मालिक है। उसकी आत्मा असंग और अस्पर्शित बनी रहती है। वही राज है। उसको कुछ भी प्रभावित नहीं कर सकता; बाहर से कुछ भी उसको संस्कारित नहीं कर सकता; कुछ भी उस पर हावी नहीं हो सकता। वह निर्लिप्त बना रहता है, स्वयं बना रहता है। यदि वह कहीं जाना चाहेगा तो जाएगा, लेकिन मालिक बना रहेगा। यदि वह किसी छाया के पीछे जाना चाहेगा तो जाएगा, लेकिन यह उसका अपना निर्णय होगा।

इस भेद को समझ लेना बहुत जरूरी है। निर्लिप्त से मेरा अर्थ उस व्यक्ति से नहीं है जिसने संसार का त्याग कर दिया—फिर तो निर्लिप्त होने में कोई सार न रहा, कोई अर्थ न रहा। निर्लिप्त वह व्यक्ति है जो उसी जगत में जी रहा है जिसमें कि तुम—जगत में कोई भेद नहीं है। जो व्यक्ति संसार का त्याग करता है वह केवल परिस्थिति को बदल रहा है, स्वयं को नहीं। और यदि तुम स्वयं को नहीं बदल सकते तो परिस्थिति को बदलने पर ही जोर दोगे। यह कमजोर व्यक्तित्व का लक्षण है।

एक शक्तिशाली व्यक्ति, जो सतर्क और सचेत है, स्वयं को बदलना शुरू करेगा, उस परिस्थिति को नहीं जिसमें वह है। क्योंकि वास्तव में परिस्थिति को तो बदला ही नहीं जा सकता; अगर तुम एक परिस्थिति को बदल भी दो तो फिर दूसरी परिस्थितियां होंगी। हर क्षण परिस्थिति बदलती रहती है, तो हर क्षण समस्या तो बनी ही रहने वाली है।

धार्मिक और अधार्मिक दृष्टिकोण के बीच यही अंतर है। अधार्मिक दृष्टिकोण है परिस्थिति को, परिवेश को बदलने का। वह दृष्टिकोण तुममें भरोसा नहीं करता, परिस्थितियों में भरोसा करता है—जब परिस्थिति ठीक हो जाएगी तो तुम भी ठीक हो जाओगे। तुम परिस्थिति पर निर्भर हो—अगर परिस्थिति ठीक न हुई तो तुम भी ठीक नहीं होगे। तो तुम कोई स्वतंत्र इकाई नहीं हो। कम्युनिस्टों, मार्क्सवादियों, समाजवादियों, और उन सबके लिए जो परिस्थिति के बदलने में भरोसा करते हैं, तुम महत्त्वपूर्ण नहीं हो। असल में तुम्हारा अस्तित्व ही नहीं, केवल परिस्थिति है और तुम बस एक दर्पण हो जो परिस्थिति को प्रतिबिंबित करता है। धार्मिक दृष्टिकोण कहता है कि अभी भले ही तुम एक दर्पण ही हो, लेकिन यह तुम्हारी नियति नहीं है—तुम कुछ और हो सकते हो, वह हो सकते हो जो किसी पर निर्भर नहीं है।

विकास के तीन चरण हैं। पहला—परिस्थिति मालिक है और तुम बस पीछे-पीछे घिसटते हो। तुम मानते हो कि तुम हो, लेकिन तुम हो नहीं। दूसरा—तुम होते हो, और परिस्थिति तुम्हें घसीट नहीं सकती, परिस्थिति तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकती, क्योंकि तुम एक संकल्प बन गए हो, तुम केंद्रित और क्रिस्टलाइज हो गए हो। तीसरा—तुम परिस्थिति को प्रभावित करने लगते हो—तुम्हारे होने मात्र से ही परिस्थिति बदलने लगती है।

पहली अवस्था अज्ञानी की है; दूसरी अवस्था उस व्यक्ति की है जो सतत सजग है लेकिन अभी है अज्ञानी ही—उसे सजग रहना पड़ता है, सजग रहने के लिए कुछ करना पड़ता है। उसका जागरण अभी स्वाभाविक नहीं हुआ है, इसलिए उसे संघर्ष करना पड़ता है। यदि वह एक क्षण के लिए भी होश या जागरण खोता है तो वह वस्तु के प्रभाव में आ जाएगा। तो उसे सतत होश रखना पड़ता है। वह साधक है, जो साधना कर रहा है।

तीसरी अवस्था है सिद्ध की, ज्ञानी की। वह जागने की कोशिश नहीं कर रहा है, बस जागा ही हुआ है—उसमें कोई प्रयास नहीं है। जागरण उसके श्वास-प्रश्वास की तरह हो गया है—वह अपने आप सम्हला रहता है, उसे सम्हालना नहीं पड़ता। जब जागरण श्वास-प्रश्वास जैसी घटना हो जाता है—स्वाभाविक, सहज—तब इस प्रकार का व्यक्ति, इस प्रकार का केंद्रित व्यक्ति स्वतः ही परिस्थितियों को प्रभावित करने लगता है। उसके आस-पास परिस्थितियां बदलने लगती हैं; ऐसा नहीं कि वह उन्हें बदलना चाहता है, लेकिन वह शक्तिशाली है।

शक्ति स्मरण रखने जैसी चीज है। तुम कमजोर हो इसलिए कोई भी चीज तुम पर हावी हो सकती है। और शक्ति आती है सजगता से, होश से। जितने ज्यादा सजग, उतने ही शक्तिशाली; जितने कम सजग, उतने कम शक्तिशाली।

देखो—जब तुम सोए होते हो तो एक सपना भी शक्तिशाली हो जाता है, क्योंकि तुम गहरी नींद में खोए हो, तुमने सारा होश खो दिया है। एक सपना भी शक्तिशाली हो गया है और तुम इतने कमजोर हो कि तुम उस पर संदेह भी नहीं कर सकते।

बेतुके से बेतुके स्वप्न में भी तुम संदेह नहीं कर सकते, तुम्हें उसे मानना ही होगा। और जब तक वह चलता है, तब तक वास्तविक लगता है। सपने में भले ही तुम बेतुकी चीजें देखो, लेकिन सपना देखते समय तुम उस पर संदेह नहीं कर सकते। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि यह वास्तविक नहीं है; तुम ऐसा नहीं कह सकते कि यह बस एक सपना है, कि यह असंभव है। तुम ऐसा कह

ही नहीं सकते, क्योंकि तुम गहरी नींद में हो।

जब होश नहीं होता तो एक सपना भी तुम्हें प्रभावित करता है। जागकर तुम हंसोगे और कहोगे, 'वह सपना बेतुका था, असंभव था, ऐसा हो ही नहीं सकता। वह केवल भ्रम था।' लेकिन जब वह चल रहा था तो यह बात तुम्हारे ख्याल में नहीं आई थी और तुम उससे प्रभावित थे, पूरी तरह उसमें खो गए थे। सपना इतना शक्तिशाली क्यों था ? सपना शक्तिशाली नहीं था, तुम शक्तिहीन थे।

इसे स्मरण रखो—जब तुम शक्तिहीन होते तो एक सपना भी शक्तिशाली हो जाता है। जब तुम जागे होते हो तो कोई सपना तुम पर प्रभावी नहीं हो सकता, लेकिन यथार्थ, तथाकथित यथार्थ प्रभावी हो जाता है। जागा हुआ व्यक्ति, बुद्ध पुरुष इतना सजग हो जाता है कि तुम्हारा यथार्थ भी उसे प्रभावित नहीं कर सकता। यदि कोई स्त्री, कोई सुंदर स्त्री पास से गुजर जाए तो तुम्हारा मन उसके पीछे हो लेता है। एक कामना उठ गई, उसे पाने की कामना। तुम अगर सजग हो तो स्त्री गुजर जाएगी लेकिन कोई कामना नहीं उठेगी—तुम प्रभावित नहीं हुए, तुम आविष्ट नहीं हुए। जब ऐसा पहली बार होगा, जब चीजें तुम्हारे आस-पास होंगी और तुम प्रभावित नहीं होओगे, तो तुम प्राणों में एक सूक्ष्म आनंद का अनुभव करोगे। पहली बार तुम्हें लगेगा कि तुम हो; कुछ भी तुम्हें तुमसे बाहर नहीं घसीट सकता। तुम यदि पीछे जाना चाहो तो वह दूसरी बात है, वह तुम्हारा निर्णय है।

लेकिन स्वयं को धोखा मत दो। तुम धोखा दे सकते हो। तुम कह सकते हो, 'हां, स्त्री शक्तिशाली नहीं है, लेकिन मैं उसके पीछे जाना चाहता हूं, मैं उसे पाना चाहता हूं।' तुम धोखा दे सकते हो। बहुत से लोग धोखा दिए चले जाते हैं। लेकिन तुम किसी और को नहीं स्वयं को ही धोखा दे रहे हो। फिर यह व्यर्थ है। जरा गौर से देखो—तुम कामना को वहां पाओगे। कामना पहले आती है, फिर तुम उसकी व्याख्या करनी शुरू कर देते हो।

ज्ञानी व्यक्ति के लिए, चीजें भी हैं और वह भी है, लेकिन उसके और चीजों के बीच कोई सेतु नहीं है। सेतु टूट गया है। वह अकेला चलता है, अकेला जीता है। वह अपना ही अनुसरण करता है। कुछ और उसे आविष्ट नहीं कर सकता। इस अनुभव के कारण ही हमने इस उपलब्धि को मोक्ष कहा है, मुक्ति कहा है। वह परम मुक्त है।

संसार में हर जगह मनुष्य ने मुक्ति की खोज की है; तुम ऐसा एक भी मनुष्य नहीं खोज सकते जो अपने ढंग से मुक्ति न खोज रहा हो। अलग-अलग

रास्तों से मनुष्य वह अवस्था खोजने की कोशिश करता है जहां वह मुक्त हो सके, और ऐसी किसी भी चीज को वह घृणा करता है जो उसे बंधन का भाव दे। कोई भी चीज जो उसे रोकती है, बांधती है, उससे वह लड़ता है। उससे संघर्ष करता है।

इसीलिए तो इतने राजनीतिक संघर्ष हैं, इतने युद्ध हैं, इतनी क्रांतियां हैं; इसीलिए तो इतने पारिवारिक संघर्ष हैं–पति और पत्नी, बाप और बेटा, सभी एक-दूसरे से लड़ रहे हैं। लड़ाई बुनियादी है। लड़ाई है मुक्ति के लिए। पति बंधन अनुभव करता है, पत्नी ने उसे बांध लिया है–अब उसकी स्वतंत्रता कट गई। और पत्नी को भी ऐसा ही लगता है। दोनों एक-दूसरे से खिन्न हैं, दोनों लड़ते हैं, दोनों बंधन को तोड़ने की कोशिश करते हैं। बाप बेटे से लड़ता है, क्योंकि बेटे के विकास के हर कदम का अर्थ है उसके लिए और स्वतंत्रता। और बाप को लगता है कि वह कुछ खो रहा है—अपनी शक्ति, अपना अधिकार। तो परिवारों में, देशों में, सभ्यताओं में मनुष्य केवल एक-ही चीज के पीछे भाग रहा है–मुक्ति।

लेकिन राजनीतिक लड़ाइयों से, क्रांतियों से, युद्धों से कुछ भी नहीं मिलता, कुछ भी हाथ नहीं आता। क्योंकि अगर तुम स्वतंत्रता पा भी लो, तो वह ऊपर-ऊपर है–भीतर गहरे में तुम बंधन में ही रहते हो। तो हर स्वतंत्रता एक मोह-भंग सिद्ध होती है।

मनुष्य धन की इतनी कामना करता है, लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, यह धन की कामना नहीं है, मुक्ति की कामना है। धन तुम्हें स्वतंत्रता का एक भाव देता है। अगर तुम गरीब हो तो तुम सीमित हो, तुम्हारे साधन सीमित हैं–तुम यह नहीं कर सकते, वह नहीं कर सकते। वह सब करने के लिए तुम्हारे पास धन ही नहीं है। जितना धन तुम्हारे पास हो, उतना ही तुम्हें लगता है कि तुम्हारे पास स्वतंत्रता है; तुम जो करना चाहो कर सकते हो।

लेकिन जब खूब धन तुम्हारे पास इकट्ठा हो जाता है और तुम वह सब कर सकते हो जो तुम करना चाहते हो, जिसकी कल्पना करते हो या जिसका सपना लेते हो–तो अचानक तुम पाते हो कि यह स्वतंत्रता ऊपर-ऊपर है, क्योंकि भीतर से तुम्हारे प्राण अच्छी तरह जानते हैं कि तुम शक्तिहीन हो और कुछ भी तुम्हें प्रभावित कर सकता है। तुम वस्तुओं और व्यक्तियों द्वारा प्रभावित हो जाते हो, सम्मोहित हो जाते हो।

यह सूत्र कहता है कि तुम्हें चेतना की ऐसी अवस्था पर आना है जहां कुछ भी तुम्हें प्रभावित न करे, तुम निर्लिप्त बने रह सको। यह कैसे हो ? दिन भर

इसके लिए अवसर हैं। इसीलिए मैं कहता हूं कि यह विधि तुम्हारे लिए अच्छी है। किसी भी क्षण तुम सजग हो सकते हो कि कुछ तुम्हें आविष्ट कर रहा है। तब एक गहरी श्वास लो, गहरी श्वास भीतर खींचो, गहरी श्वास बाहर छोड़ो, और उस चीज को फिर से देखो। जब तुम श्वास को बाहर छोड़ रहे हो तो उस चीज को फिर से देखो, लेकिन देखो एक साक्षी की तरह, एक द्रष्टा की तरह।

यदि तुम एक क्षण के लिए भी मन की साक्षी-दशा को पा सको तो अचानक तुम पाओगे कि तुम अकेले हो, कुछ भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकता; कम से कम उस क्षण में तो कुछ भी तुममें कामना पैदा नहीं कर सकता। जब भी तुम्हें लगे कि कोई चीज तुम्हें प्रभावित कर रही है, तुम पर हावी हो रही है, तुम्हें तुमसे दूर ले जा रही है, तुमसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो रही है—तो गहरी श्वास लो और छोड़ो। और श्वास बाहर छोड़ने से पैदा हुए उस छोटे से अंतराल में उस चीज की ओर देखो—कोई सुंदर चेहरा, कोई सुंदर शरीर, कोई सुंदर मकान, या कुछ भी। यदि तुम्हें यह कठिन लगे, अगर श्वास बाहर छोड़ने भर से ही तुम अंतराल पैदा न कर पाओ, तो एक काम और करो—श्वास बाहर छोड़ो, और एक क्षण को श्वास का भीतर लेना रोक लो ताकि पूरी वायु बाहर निकल जाए। रुक जाओ, श्वास भीतर मत लो। फिर उस चीज की ओर देखो। जब पूरी वायु बाहर है, या भीतर है, जब तुमने श्वास लेना बंद कर दिया है तो कुछ भी तुम्हें प्रभावित नहीं कर सकता। उस क्षण में तुम सेतुहीन हो जाते हो—सेतु टूट जाता है। श्वास ही सेतु है।

इसे करके देखो। केवल एक क्षण के लिए ऐसा होगा कि तुम साक्षी को महसूस करोगे, लेकिन उससे तुम्हें स्वाद मिल जाएगा, उससे तुम्हें यह अनुभव हो जाएगा कि साक्षीत्व क्या है। फिर तुम उसकी खोज में बढ़ सकते हो। दिन भर में जब भी कभी कोई चीज तुम्हें प्रभावित करती है और कोई कामना उठती है, श्वास बाहर छोड़ो, उस अंतराल में रुको, और फिर उस चीज की ओर देखो। चीज वहां होगी, तुम वहां होओगे, लेकिन बीच में कोई सेतु नहीं होगा। श्वास ही सेतु है। अचानक तुम्हें लगेगा कि तुम शक्तिशाली हो, प्राणवान हो। और जितने शक्तिशाली तुम अनुभव करोगे उतने ही तुम केंद्रित होओगे। जितनी चीजें गिरती जाएंगी, जितनी चीजों की शक्ति तुम पर से हटती जाएगी, उतने ही अधिक केंद्रित तुम होते जाओगे। अब तुम्हारा व्यक्तित्व शुरू हुआ। अब तुम्हारे पास एक केंद्र है, और किसी भी क्षण तुम केंद्र पर सरक जा सकते हो और वहां संसार मिट जाता है। किसी भी क्षण तुम अपने केंद्र में स्थिर हो सकते हो, और

तब संसार शक्तिहीन हो जाता है।

यह सूत्र कहता है, 'वस्तुओं और विषयों का गुणधर्म ज्ञानी व अज्ञानी के लिए समान ही होता है। ज्ञानी की महानता यह है कि वह आत्मगत भाव में बना रहता है, वस्तुओं में नहीं खोता।'

वह आत्मगत भाव में बना रहता है, वह स्वयं में बना रहता है, वह चेतना में केंद्रित रहता है। इस आत्मगत भाव में रहने को साधना पड़ेगा। जितने भी अवसर तुम्हें मिल सकें, इसे करके देखो। और हर क्षण अवसर है, एक-एक क्षण अवसर है। कुछ न कुछ तुम्हें प्रभावित कर रहा है, बुला रहा है, बाहर खींच रहा है, भीतर धकेल रहा है।

मुझे एक पुरानी कहानी याद आती है। एक महान राजा, भर्तृहरि ने संसार का त्याग कर दिया। उसने संसार का त्याग कर दिया, क्योंकि उसने पूरी तरह उसे जीया था और पाया था कि वह व्यर्थ है। यह उसके लिए कोई सिद्धान्त नहीं था, यह उसका जीया हुआ सत्य था। अपने स्वयं के जीवन से वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था। वह शक्तिशाली आदमी था, जीवन में जितना हो सकता था गहरे गया था, फिर अचानक उसने पाया कि यह व्यर्थ है, बेकार है। तो उसने संसार छोड़ दिया, सब त्याग दिया और जंगल चला गया।

एक दिन वह एक वृक्ष के नीचे बैठा ध्यान कर रहा था। सूर्य उग रहा था। अचानक उसने देखा कि वृक्ष के पास से जो छोटी सी पगडंडी गुजरती थी उस पर एक बहुत बड़ा हीरा पड़ा है। उगते हुए सूरज की किरणें उससे टकराकर वापस लौट रही हैं। भर्तृहरि ने भी ऐसा हीरा पहले कभी नहीं देखा था। अचानक, बेहोशी के एक क्षण में, उसे उठा लेने की एक कामना जगी। शरीर तो अचल बना रहा, लेकिन मन चल पड़ा। शरीर ध्यान में मुद्रा में, सिद्धासन में था, लेकिन ध्यान अब वहां नहीं था। केवल मृत शरीर ही वहां था, मन जा चुका था—वह हीरे की ओर चला गया था।

लेकिन इससे पहले कि राजा हिल भी पाता, दो आदमी अपने-अपने घोड़ों पर सवार अलग-अलग दिशाओं से आए और एक साथ ही दोनों की नजर राह पर पड़े हीरे पर पड़ी। दोनों ने हीरे को पहले देखने का दावा करते हुए तलवारें खींच लीं। निर्णय का और तो कोई उपाय न था तो दोनों को लड़ना पड़ा। वे दोनों जूझ पड़े और एक-दूसरे को समाप्त कर डाला। कुछ ही क्षणों मे हीरे के निकट ही दो लाशें पड़ी हुई थीं। भर्तृहरि हंसा, अपनी आंखें बंद कीं, और फिर से ध्यान में डूब गया।

क्या हुआ ? उसे फिर से व्यर्थता का बोध हुआ। और उन दो आदमियों

को क्या हुआ ? हीरा उनके जीवन से भी ज्यादा मूल्यवान हो गया। मालकियत का यही अर्थ है—एक पत्थर को पाने के लिए उन्होंने अपनी जान गंवा दी। जब कामना होती है तो तुम नहीं होते—कामना तुम्हें आत्मघात तक ले जा सकती है। असल में हर कामना तुम्हें आत्मघात की ओर ले जा रही है। जब तुम किसी कामना के वश में होते हो तो अपनी सुध-बुध खो देते हो, पागल हो जाते हो।

मालकियत की कामना भर्तृहरि के मन में भी उठी; एक क्षणांश के लिए कामना उठी। और वह उसे लेने के लिए उठ भी गया होता, लेकिन इससे पहले कि वह हिलता भी, दो दूसरे व्यक्ति वहां आए, आपस में लड़े और अगले ही क्षण सड़क पर दो लाशें उस पत्थर के पास पड़ी थीं जो अपनी जगह पर वैसा का वैसा पड़ा था। भर्तृहरि हंसा, अपनी आंखें बंद कीं, और फिर से ध्यान में चला गया। एक क्षण के लिए उसका केंद्र खो गया। एक पत्थर, एक हीरा, एक वस्तु ज्यादा शक्तिशाली हो गई। लेकिन केंद्र फिर लौट आया। हीरे के खोते ही पूरा संसार मिट गया, और उसने अपनी आंखें बंद कर लीं।

सदियों से ध्यानी अपनी आंखें बंद करते रहे हैं। क्यों ? यह केवल प्रतीकात्मक है कि संसार मिट गया, कि देखने को कुछ न रहा, कि किसी चीज का कोई मूल्य नहीं है—देखने योग्य भी नहीं। तुम्हें यह सतत स्मरण रखना पड़ेगा कि जब भी कामना उठती है, तुम अपने केंद्र से बाहर निकल जाते हो। यह बाहर जाना ही संसार है। फिर वापस लौट आओ फिर से केंद्रित हो जाओ।

यह तुम कर पाओगे, इसकी क्षमता हर किसी के पास है। आंतरिक संभावना तो कोई भी कभी नहीं खोता, वह हमेशा रहती है। तुम वापस लौट सकते हो। अगर तुम बाहर जा सकते हो तो भीतर भी जा सकते हो। अगर मैं अपने घर से बाहर जा सकता हूं तो वापस भीतर क्यों नहीं लौट सकता ? वही रास्ता तय करना है; वही पैर काम में लाने हैं। अगर मैं बाहर जा सकता हूं तो भीतर भी लौट सकता हूं।

हर क्षण तुम बाहर जा रहे हो, लेकिन जब भी तुम बाहर जाओ, स्मरण करो—और अचानक वापस लौट आओ, केंद्रित हो जाओ। अगर शुरू में थोड़ा कठिन लगे तो एक गहरी श्वास लो, श्वास बाहर छोड़ो, और रुक जाओ। इस क्षण में उस चीज की ओर देखो जो तुम्हें आकर्षित कर रही थी।

असल में तुम्हें कुछ आकर्षित नहीं कर रहा था, तुम आकर्षित हो रहे थे। उस निर्जन वन में राह पर पड़ा वह हीरा किसी को आकर्षित नहीं कर रहा था, वह तो बस वहां पड़ा हुआ था। हीरे को पता भी नहीं था कि भर्तृहरि आकर्षित हो गया, कि कोई अपने ध्यान से, अपने केंद्र से विचलित हो गया। हीरे को

पता भी नहीं था कि दो लोग उसके लिए लड़े और अपनी जान गंवा बैठे।

तो कुछ भी तुम्हें आकर्षित नहीं कर रहा—तुम आकर्षित हो रहे हो। जाग जाओ और सेतु टूट जाएगा, और तुम भीतर का संतुलन वापस पा लोगे। इसे जब भी ख्याल आ जाए करते रहो, जितना करो उतना अच्छा। और एक क्षण आएगा जब तुम्हें इसे करने की जरूरत नहीं पड़ेगी, क्योंकि तुम्हारी आंतरिक शक्ति तुम्हें इतना बल देगी कि चीजों का आकर्षण खो जाएगा। यह तुम्हारी कमजोरी ही है जो आकर्षित होती है। अधिक शक्तिशाली बनो, और कुछ भी तुम्हें आकर्षित नहीं करेगा। केवल तभी तुम पहली बार अपने प्राणों के मालिक होते हो।

और उससे तुम्हें वास्तविक मुक्ति मिलेगी। कोई राजनैतिक स्वतंत्रता, कोई आर्थिक स्वतंत्रता, कोई सामाजिक स्वतंत्रता बहुत सहयोगी नहीं होगी। ऐसा नहीं कि उनमें कुछ खराबी है, वे अच्छी हैं, अपने आप में अच्छी हैं, लेकिन वे स्वतंत्रताएं तुम्हें वह सब न दे पाएंगी जिसके लिए तुम्हारा अंतरतम अभीप्सा कर रहा है—चीजों से, वस्तुओं से स्वतंत्रता, किसी वस्तु या व्यक्ति से मोहित होने की किसी भी संभावना से मुक्त स्वयं होने की स्वतंत्रता।

अपने को सर्वशक्तिमान मानो

दूसरी विधि भी वैसी ही है, लेकिन एक भिन्न आयाम से है।

101. सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानो।

यह भी आंतरिक शक्ति पर, आंतरिक बल पर आधारित है। बड़ी बीज-रूप विधि है। मानो कि तुम सर्वज्ञ हो, मानो कि तुम सर्वशक्तिमान हो, मानो कि तुम सर्वव्यापी हो।

यह तुम कैसे मान सकते हो ? यह असंभव है। तुम जानते हो कि तुम सर्वज्ञ नहीं हो, तुम अज्ञानी हो। तुम जानते हो कि तुम सर्वशक्तिमान नहीं हो, तुम बिल्कुल अशक्त और असहाय हो। तुम जानते हो कि तुम सर्वव्यापी नहीं हो, तुम छोटी सी देह में सीमित हो। तो इस पर तुम कैसे विश्वास कर सकते हो ?

और यदि भलीभांति जानते हुए कि ऐसा नहीं है तुम इस पर विश्वास करोगे तो वह विश्वास निरर्थक होगा। अपने ही विपरीत तुम विश्वास नहीं कर सकते। किसी विश्वास को तुम जबरदस्ती थोप तो सकते हो, लेकिन वह व्यर्थ होगा, निरर्थक होगा। तुम जानते हो कि ऐसा नहीं है। कोई विश्वास तभी उपयोगी

हो सकता है जब तुम जानते हो कि ऐसा ही है।

यह समझना जरूरी है। कोई विश्वास तभी शक्तिशाली होता है जब तुम जानते हो कि ऐसा ही है। सच या झूठ का सवाल नहीं है। अगर तुम जानते हो कि ऐसा ही है तो विश्वास सत्य हो जाता है। अगर तुम जानते हो कि ऐसा नहीं है तो सत्य भी विश्वास नहीं बन सकता। क्यों ? कई चीजें समझनी पड़ेंगी।

पहली तो बात, तुम जो भी हो वह तुम्हारा विश्वास है—तुम उस ढंग में विश्वास करते हो, उस ढंग में तुम्हारा पालन-पोषण हुआ है, उस ढंग में तुम्हें संस्कारित किया गया है, तो उसी में तुम विश्वास करते हो। और तुम्हारा विश्वास तुम्हें प्रभावित करता है। यह एक दुष्चक्र बन जाता है।

उदाहरण के लिए, ऐसी जातियां हैं जहां पुरुष स्त्री से कमजोर है, क्योंकि उन जातियों का विश्वास है कि स्त्री पुरुष से अधिक मजबूत है, अधिक शक्तिशाली है। उनका विश्वास एक तथ्य बन गया है। उन जातियों में पुरुष कमजोर है और स्त्री ताकतवर है। स्त्रियां वे सब काम करती हैं जो साधारणतया दूसरे देशों में पुरुष करते हैं, और पुरुष वे सब काम करते हैं जो दूसरे देशों में स्त्रियां करती हैं। इतना ही नहीं, उनके शरीर भी कमजोर हैं, उनकी बनावट कमजोर है। वे यह मानने लगे हैं कि ऐसा ही है।

तो विश्वास ही स्थिति का सृजन करता है। विश्वास सृजनात्मक है।

ऐसा क्यों होता है ? क्योंकि मन पदार्थ से ज्यादा शक्तिशाली है। यदि मन सच में ही कुछ मान लेता है तो पदार्थ को उसका अनुसरण करना पड़ेगा। पदार्थ मन के विपरीत कुछ भी नहीं कर सकता, क्योंकि पदार्थ तो जड़ है। तो असंभव भी घटता है।

जीसस कहते हैं, 'श्रद्धा पहाड़ों को भी हिला सकती है।'

श्रद्धा पहाड़ों को हिला सकती है। और यदि न हिला पाए तो उसका अर्थ है कि तुम्हें श्रद्धा नहीं है-ऐसा नहीं कि श्रद्धा पहाड़ों को नहीं हिला सकती। तुम्हारी श्रद्धा पहाड़ों को नहीं हिला सकती, क्योंकि तुम्हें श्रद्धा ही नहीं है।

विश्वास की घटना पर बड़ी शोध चलती है, और विज्ञान बहुत से अविश्वसनीय निष्कर्षों पर पहुंच रहा है। धर्म ने तो सदा से ही उन्हें माना है, लेकिन विज्ञान भी अंततः उन्हीं निष्कर्षों पर पहुंच रहा है। और उन निष्कर्षों पर उसे पहुंचना ही होगा, क्योंकि बहुत सी घटनाओं पर पहली बार खोज हो रही है।

जैसे, तुमने प्लैसिबो दवाइयों के बारे में सुना होगा। सैकड़ों 'पैथियां' संसार में चलती हैं-एलोपैथी, आयुर्वेदिक, यूनानी, होम्योपैथी, नेचरोपैथी-सैकड़ों। और

सभी का दावा है कि वे रोग को ठीक कर सकते हैं। और वे ठीक करते भी हैं। उनके दावे गलत नहीं हैं। यह बड़ी अद्‌भुत बात है—उनके निदान अलग-अलग हैं, उनके उपचार अलग-अलग हैं। एक ही रोग है और उसके सैकड़ों निदान हैं और सैकड़ों उपचार हैं, और हर उपचार काम देता है। तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि वास्तव में उपचार काम करता है या फिर रोगी का विश्वास काम करता है। और यह संभव है।

कई देशों में, कई विश्वविद्यालयों में, कई अस्पतालों में बहुत ढंगों से वे काम कर रहे हैं। वे रोगी को पानी या कुछ और दे देते हैं। और रोगी यह मानता है कि उसे दवा दी गई है। और केवल रोगी ही नहीं डाक्टर भी यही मानता है, क्योंकि उसे भी पता नहीं है। अगर डाक्टर को पता हो कि यह दवा है या नहीं है तो उसका प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि दवा से ज्यादा वह रोगी को विश्वास देता है।

तो जब तुम बड़े डाक्टर के पास जाते हो और ज्यादा पैसे देते हो तो जल्दी ठीक हो जाते हो। यह प्रश्न विश्वास का है। डाक्टर अगर तुम्हें चार पैसे की, सिर्फ चार पैसे की दवाई दे दे तो तुम्हें पूरा विश्वास होता है कि उससे कुछ होने वाला नहीं है। इतनी बड़ी बीमारी वाला इतना बड़ा रोगी चार पैसे से कैसे ठीक हो सकता है ? असंभव ! इसके लिए विश्वास पैदा नहीं किया जा सकता। तो हर डाक्टर को अपने आस-पास विश्वास का एक वातावरण बनाना पड़ता है। वह वातावरण सहयोगी होता है।

तो अगर डाक्टर को पता हो कि वह जो दे रहा है वह सिर्फ पानी ही है तो वह भरोसे के साथ आश्वासन नहीं दे पाएगा। उसके चेहरे से पता चलेगा, उसके हाथों से पता चलेगा, उसके पूरे आचार-व्यवहार से पता चलेगा कि वह सिर्फ पानी दे रहा है, और रोगी का अचेतन उससे प्रभावित होगा। डाक्टर का विश्वास जरूरी है। वह जितना आश्वस्त होगा उतना ही अच्छा है, क्योंकि उसका विश्वास संक्रामक होता है।

रोगी डाक्टर की ओर देखता है। अगर डाक्टर आश्वस्त है—'बिल्कुल चिंता मत करो, यह नई दवाई है और इससे तुम्हें आराम मिलेगा। यह सौ प्रतिशत निश्चित है। इसमें कोई संदेह ही नहीं है'—अगर डाक्टर का पूरा व्यक्तित्व सौ प्रतिशत आशा दर्शाता हो तो दवा लेने से पहले ही रोगी ठीक हो गया।

अब वे कहते हैं कि तुम कुछ भी दवा उपयोग करो तीस प्रतिशत रोगी तो करीब-करीब तत्क्षण ठीक हो जाएंगे; कुछ भी उपयोग करो—एलोपैथी, नेचरोपैथी, होम्योपैथी, या कोई भी पैथी—कुछ भी उपयोग करो, तीस प्रतिशत

रोगी तत्क्षण ठीक हो जाएंगे।

वे तीस प्रतिशत विश्वास करने वाले लोग हैं। यही अनुपात हर जगह है। अगर मैं तुम्हारी ओर देखूं तो तुममें से तीस प्रतिशत लोग होंगे जो तत्क्षण रूपांतरित हो जाएंगे। एक बार विश्वास उनमें बैठ जाए तो वह उसी समय काम करना शुरू कर देता है। तीस प्रतिशत मनुष्यता को बिना किसी कठिनाई के तत्क्षण चेतना के नए तलों पर रूपांतरित किया जा सकता है, बदला जा सकता है। सवाल सिर्फ इतना है कि उनमें विश्वास कैसे जगाया जाए। एक बार विश्वास जग जाए तो कुछ भी उन्हें नहीं रोक सकता। हो सकता है कि तुम भी उन सौभाग्यशालियों में से, उन तीस प्रतिशत में से ही होओ। लेकिन मनुष्यता के साथ एक बड़ा दुर्भाग्य घटा है, और वह यह कि वे तीस प्रतिशत लोग निंदित हो गए हैं। समाज, शिक्षा, संस्कृति, सब उनकी निंदा करते हैं। उनको मूर्ख समझा जाता है।

नहीं, वे बड़ी संभावना वाले लोग हैं। उनके पास एक बड़ी ताकत है, लेकिन वे निंदित हैं। और थोथे बुद्धिजीवियों की प्रशंसा की जाती है; क्योंकि वे भाषा, शब्दों और तर्क के साथ खेल सकते हैं इसलिए उनकी प्रशंसा होती है। वास्तव में वे नपुंसक हैं। अंतस के वास्तविक जगत में वे कुछ नहीं कर सकते, वे बस अपना दिमाग चला सकते हैं। लेकिन यूनिवर्सिटियां उनके पास हैं, न्यूज मीडिया उनके पास है, एक तरह से वे लोग मालिक हैं। और निंदा करने में वे कुशल हैं। वे किसी भी चीज की निंदा कर सकते हैं। और मनुष्यता का यह तीस प्रतिशत हिस्सा जिसमें संभावना है, वे लोग जो विश्वास कर सकते हैं और रूपांतरित हो सकते हैं, वे शब्दों में इतने कुशल नहीं होते—वे हो भी नहीं सकते। वे तर्क नहीं कर सकते, विवाद नहीं कर सकते, इसी कारण तो वे विश्वास कर सकते हैं।

लेकिन क्योंकि वे स्वयं के लिए तर्क नहीं दे सकते इसलिए वे खुद ही आत्म-निंदक बन गए हैं। वे सोचते हैं कि उनमें कुछ गलत है। अगर तुम विश्वास कर सको तो तुम्हें लगता है कि तुम्हारे साथ कुछ गलत है; अगर तुम संदेह कर सको तो तुम सोचते हो कि तुम महान हो। लेकिन संदेह की कोई ताकत नहीं है। संदेह के द्वारा कभी भी कोई अंतरतम तक, परम आनंद तक नहीं पहुंच सका है।

अगर तुम विश्वास कर सकते हो तो यह सूत्र तुम्हारे लिए उपयोगी होगा।

'सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानो।'

तुम वह हो ही, इसलिए तुम्हारे मान लेने मात्र से वह सब जो तुम्हें छिपाए

हुए है, वह सब जो तुम्हें ढंके हुए है, तत्क्षण गिर जाएगा।

लेकिन उन तीस प्रतिशत के लिए भी यह कठिन होगा, क्योंकि वे भी वही सब मानने के लिए संस्कारित हैं जो कि सच में नहीं है। उन्हें भी संदेह के लिए संस्कारित किया गया है; उनका भी शिक्षण संदेह का है; और वे अपनी सीमाएं जानते हैं, तो वे कैसे विश्वास कर सकते हैं ? या, फिर अगर वे यह मान लेते हैं तो लोग उन्हें पागल समझेंगे। अगर तुम कहो कि तुम मानते हो कि तुम्हारे भीतर सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, दिव्य है, तो लोग तुम्हारी ओर आश्चर्य से देखेंगे और सोचेंगे कि तुम पागल हो गए हो। जब तक तुम पागल ही न होओ यह सब कैसे मान सकते हो ?

लेकिन कुछ करके देखो। प्रारंभ से शुरू करो। इस घटना का थोड़ा स्वाद लो, फिर विश्वास पीछे-पीछे चला आएगा। अगर यह विधि तुम करना चाहो तो फिर पहले यह करो। अपनी आंखें बंद कर लो और भाव करो कि तुम्हारा कोई शरीर नहीं है, भाव करो कि शरीर जैसे मिट गया है, खो गया है। तब तुम अपनी सर्वव्यापकता का अनुभव कर सकते हो।

शरीर के साथ तो यह भाव कठिन है। इस कारण कई परंपराएं कहती हैं कि तुम शरीर नहीं हो, क्योंकि शरीर के साथ सीमा आ जाती है। तुम शरीर नहीं हो यह अनुभव करना बहुत कठिन नहीं है, क्योंकि सच में तुम शरीर नहीं हो। यह केवल एक संस्कार है, यह केवल एक विचार है जो तुम्हारे मन पर थोप दिया गया है। तुम्हारे मन में यह विचार डाल दिया गया है कि तुम शरीर हो।

बहुत सी घटनाएं हैं जो इस बात को स्पष्ट करती हैं। सिलोन में बौद्ध भिक्षु आग पर चलते हैं। भारत में भी चलते हैं, लेकिन सिलोन की घटना अद्‌भुत है–वे घंटों आग पर चलते हैं और जलते नहीं।

कुछ वर्ष पहले ऐसा हुआ कि एक ईसाई मिशनरी यह फायर-वॉक देखने गया। यह वे पूर्णिमा की उस रात करते हैं जब बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए। क्योंकि उनका कहना है कि उस रात जगत को पता चला कि शरीर कुछ भी नहीं है, पदार्थ कुछ भी नहीं है; कि अंतरात्मा सर्वव्यापक है और आग उसे जला नहीं सकती।

लेकिन जिन भिक्षुओं को आग पर चलना होता है वे उससे पहले एक वर्ष तक प्राणायाम और उपवास द्वारा अपने शरीर को शुद्ध करते हैं। और अपने मन को शुद्ध करने के लिए, खाली करने के लिए वे ध्यान करते हैं। एक वर्ष तक लगातार वे तैयारी करते हैं। वे अपनी एकांत झोंपड़ियों में यह भाव करते

हुए रहते हैं कि वे शरीर में नहीं हैं। एक वर्ष तक लगातार पचास-साठ भिक्षुओं का समूह यह भाव करता रहता है कि वे अपने शरीरों में नहीं हैं।

एक वर्ष लंबा समय है। हर क्षण केवल एक ही बात सोचते हुए कि वे अपने शरीरों में नहीं हैं, लगातार एक ही बात दोहराते हुए कि शरीर एक भ्रम है, वे ऐसा ही मानने लगते हैं। तब भी उन्हें आग पर चलने के लिए बाध्य नहीं किया जाता। उन्हें आग के पास लाया जाता है और जो भी सोचता है कि वह नहीं जलेगा, वह आग में कूद पड़ता है। कुछ संदेह करते रह जाते हैं, झिझकते हैं—उन्हें आग में नहीं कूदने दिया जाता; क्योंकि यह सवाल आग के जलाने या न जलाने का नहीं है, यह उनके संदेह का सवाल है। अगर वे जरा सा भी झिझकते हैं तो उन्हें रोक दिया जाता है। तो साठ लोग तैयार किए जाते हैं और कभी बीस, कभी तीस लोग आग में कूदते हैं और बिना जले घंटों-घंटों उसमें नाचते रहते हैं।

उन्नीस सौ पचास में एक ईसाई मिशनरी यह देखने के लिए आया। वह बड़ा चकित हुआ। लेकिन उसने सोचा कि यदि बुद्ध में भरोसा करने से यह चमत्कार हो सकता है तो जीसस में भरोसा करने से क्यों नहीं हो सकता ? तो कुछ देर उसने सोचा, थोड़ा झिझका, लेकिन फिर इस विचार के साथ कि यदि बुद्ध मदद कर सकते हैं तो जीसस भी करेंगे, वह आग में कूद गया। वह जल गया, बुरी तरह जल गया; छः महीने के लिए उसे अस्पताल में भरती करवाना पड़ा। और वह इस घटना को समझ ही नहीं पाया।

यह जीसस या बुद्ध में विश्वास का सवाल नहीं था, यह किसी में विश्वास का सवाल नहीं था, यह विश्वास मात्र का सवाल था। और वह विश्वास गहन होना चाहिए। जब तक वह तुम्हारे प्राणों के केंद्र पर पहुंच जाएं, वह काम नहीं करेगा।

वह ईसाई मिशनरी, सम्मोहन व उससे जुड़ी घटनाओं का अध्ययन करने के लिए और यह जानने के लिए कि फायर-वॉकिंग के समय क्या होता है, वापस इंग्लैंड गया। फिर उन्होंने दो भिक्षुओं को प्रदर्शन के लिए आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी बुलवाया। दो भिक्षु गए। वे आग पर भी चले। इस प्रयोग को कई बार दोहराया गया। फिर उन दो भिक्षुओं ने देखा कि एक प्रोफेसर उनकी ओर देख रहा था और वह इतना गहरा डूबकर देख रहा था कि उसकी आंखों में और उसके चेहरे पर एक मस्ती थी। वे दोनों भिक्षु उस प्रोफेसर के पास गए और उससे बोले, 'तुम भी हमारे साथ आ सकते हो।' तत्क्षण वह दौड़ता हुआ उनके साथ गया, आग में कूदा, और उसे कुछ भी नहीं हुआ—वह

बिल्कुल नहीं जला।

वह ईसाई मिशनरी भी मौजूद था और भलीभांति जानता था कि वह प्रोफेसर तर्क का प्रोफेसर था, जिसका काम ही संदेह करना है, जिसका व्यवसाय ही संदेह पर टिका है। तो वह उस आदमी से बोला, 'यह क्या! तुमने तो चमत्कार कर दिया। मैं यह नहीं कर सका जब कि मैं श्रद्धालु व्यक्ति हूं, प्रोफेसर बोला, उस क्षण में मैं श्रद्धालु था। वह घटना इतनी वास्तविक थी, इतने आश्चर्यजनक रूप से वास्तविक थी कि उसने मुझे वशीभूत कर लिया। यह इतना स्पष्ट था कि शरीर कुछ भी नहीं है और मन सब कुछ है, और उन भिक्षुओं के साथ मेरी ऐसी तारतम्यता बैठ गई कि जिस क्षण उन्होंने मुझे आमंत्रित किया तो मुझे जरा भी झिझक नहीं हुई। आग पर चलना इतना आसान था जैसे आग हो ही नहीं।'

उसमें उस क्षण कोई झिझक नहीं थी, कोई संदेह नहीं था—यही कुंजी है।

तो पहले इस प्रयोग को करके देखो। कुछ दिन के लिए आंखें बंद करके बैठो और बस यही सोचो कि तुम शरीर नहीं हो—केवल सोचो ही नहीं बल्कि भाव भी करो कि तुम शरीर नहीं हो। और अगर तुम आंखें बंद करके बैठो तो एक दूरी निर्मित हो जाती है। तुम्हारा शरीर दूर हो जाता है। तुम भीतर की ओर सरक जाते हो। एक दूरी बन गई। जल्दी ही तुम यह महसूस कर सकते हो कि तुम शरीर नहीं हो।

अगर तुम्हें स्पष्ट अनुभव हो कि तुम शरीर नहीं हो तो तुम मान सकते हो कि तुम सर्वव्यापक हो, सर्वशक्तिमान हो, सर्वज्ञ हो। इस सर्वशक्तिमत्ता का या सर्वज्ञता का तथाकथित जानकारी से कोई लेना-देना नहीं है। यह एक अनुभव है, एक अनुभव का विस्फोट है—कि तुम जानते हो।

यह समझ लेने जैसा है, खासकर पश्चिम में, क्योंकि जब भी तुम कहते हो कि तुम जानते हो, वे कहेंगे, 'क्या ? तुम क्या जानते हो।' जानकारी किसी चीज की होनी चाहिए। कुछ होना चाहिए जिसे तुम जानते हो। और अगर सवाल कुछ जानने का है तो तुम सर्वज्ञ नहीं हो सकते, क्योंकि जानने के लिए फिर अनंत तथ्य हैं। उन अर्थों में तो कोई भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

यही कारण है कि जब जैन कहते हैं कि महावीर सर्वज्ञ थे, तो पश्चिम में वे हंसते हैं। वे हंसते हैं, क्योंकि यदि महावीर सर्वज्ञ थे तो उन्हें जरूर वह सब पता होगा जो विज्ञान अब खोज रहा है और भविष्य में खोजेगा। लेकिन ऐसा लगता नहीं। वह ऐसी कई चीजें कहते हैं जो विज्ञान के विपरीत हैं, जो सत्य नहीं हो सकतीं, जो तथ्यगत नहीं हैं। उनकी जानकारी यदि सर्वव्यापक

है तो उसमें कोई गलती नहीं होनी चाहिए। लेकिन उसमें गलतियां हैं।

ईसाई मानते हैं कि जीसस सर्वज्ञ थे। लेकिन आधुनिक मन हंसेगा, क्योंकि वह सर्वज्ञ नहीं थे—संसार के तथ्यों को जानने के अर्थ में वह सर्वज्ञ नहीं थे। वह नहीं जानते थे। वह नहीं जानते थे कि पृथ्वी गोल है—वह नहीं जानते थे। वह तो यही मानते थे कि पृथ्वी चपटी है। वह नहीं जानते थे कि पृथ्वी लाखों वर्षों से अस्तित्व में है, वह तो यही मानते थे कि परमात्मा ने पृथ्वी को उनसे केवल चार हजार वर्ष पहले ही निर्मित किया। जहां तक तथ्यों का, विषयगत तथ्यों का संबंध है, वह सर्वज्ञ नहीं थे।

लेकिन यह शब्द 'सर्वज्ञ' बिल्कुल भिन्न है। जब पूरब के ऋषि 'सर्वज्ञ' कहते हैं तो उनका अर्थ तथ्यों को जानने से नहीं है—उनका अर्थ है परिपूर्ण चेतन, परिपूर्ण जाग्रत, पूर्णतः अंतरस्थ, पूर्णतः चेतन, संबुद्ध। तथ्यात्मक जानकारी से उनका कुछ लेना-देना नहीं है, उनका रस जानने की विशुद्ध घटना में है—जानकारी में नहीं, जानने की गुणवत्ता में।

जब हम कहते हैं कि बुद्ध ज्ञानी हैं तो हमारा अर्थ यह नहीं होता कि वे वह सब भी जानते हैं जो आइंस्टीन जानता है। वह तो वे नहीं जानते। लेकिन फिर भी वे ज्ञानी हैं। वे अपनी अंतस चेतना को जानते हैं। और अंतस चेतना सर्वव्यापी है। तथाता का वह भाव सर्वव्यापी है। और उस जानने में फिर कुछ भी जानने को नहीं बचता—असली बात यह है। अब कुछ जानने की उत्सुकता नहीं रहती। सब प्रश्न गिर जाते हैं। ऐसा नहीं कि सब उत्तर मिल गए—सब प्रश्न गिर जाते हैं। अब पूछने के लिए कोई प्रश्न न रहा। सारी उत्सुकता जाती रही। सुलझाने को कोई समस्या न रही। यह शांति, भीतरी प्रकाश से भरा हुआ यह परिपूर्ण मौन ही सर्वज्ञता है। सर्वज्ञ का यही अर्थ है। यह आत्मगत जागरण है।

यह तुम कर सकते हो। लेकिन अगर तुम अपनी खोपड़ी में और जानकारी इकट्ठी करते चले जाओ तो फिर यह नहीं होगा। तुम जन्मों-जन्मों तक जानकारी इकट्ठी करते चले जा सकते हो—तुम बहुत कुछ जान लोगे, लेकिन सर्व को नहीं जानोगे। सर्व तो अनंत है; वह इस प्रकार नहीं जाना जा सकता। विज्ञान हमेशा अधूरा रहेगा, वह कभी पूरा नहीं हो सकता—यह असंभव है। यह अकल्पनीय है कि विज्ञान कभी पूरा हो जाएगा। वास्तव में, जितना अधिक विज्ञान जानता जाता है उतना ही पाता है कि जानने को अभी बहुत शेष है।

तो यह सर्वज्ञता जागरण का एक आंतरिक गुण है। ध्यान करो, और अपने विचारों को गिरा दो। जब तुममें कोई विचार नहीं होंगे तब तुम महसूस करोगे

कि यह सर्वज्ञता क्या है, यह सब जान लेना क्या है। जब कोई विचार नहीं होते तो चेतना शुद्ध हो जाती है, विशुद्ध हो जाती है; उस विशुद्ध चेतना में तुम्हें कोई समस्या नहीं रहती। सब प्रश्न गिर गए। तुम स्वयं को जानते हो, अपनी आत्मा को जानते हो। और जब तुमने अपनी आत्मा को जान लिया तो सब जान लिया, क्योंकि तुम्हारी आत्मा हर किसी की आत्मा का केन्द्र है। वास्तव में तुम्हारी आत्मा ही सबकी आत्मा है, तुम्हारा केंद्र पूरे जगत का केन्द्र है। इन्हीं अर्थों में उपनिषदों ने अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा की है कि 'मैं ब्रह्म हूं, मैं पूर्ण हूं।' एक बार तुमने अपनी आत्मा की यह छोटी सी घटना जान ली तो तुमने अनंत को जान लिया। तुम बिलकुल सागर की बूंद जैसे हो—अगर एक बूंद को भी जान लिया तो पूरे सागर के राज खुल गए।

'सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी मानो।'

लेकिन यह मानना भरोसे से ही आएगा, यह तुम अपने साथ विवाद करके नहीं मान सकते। तुम किसी तर्क से अपने आप को नहीं समझा सकते। ऐसे भावों के लिए, ऐसे भावों के स्रोत के लिए तुम्हें अपने भीतर गहरी खुदाई करनी होगी।

यह 'मानना' शब्द बड़ा अर्थपूर्ण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुमने कुछ स्वीकार कर लिया है, क्योंकि स्वीकार कर लेना तो बड़ी तर्कसंगत बात है। तुमने सोच-विचार किया, तुमने उसके लिए तर्क किए, तुम्हारे पास प्रमाण हैं उसके लिए। मानने का अर्थ है कि तुम्हें उस चीज के प्रति कोई संदेह नहीं है—ऐसा नहीं कि कोई प्रमाण है तुम्हारे पास। स्वीकार करने का अर्थ है कि तुम्हारे पास प्रमाण है : तुम सिद्ध कर सकते हो, तर्क दे सकते हो। तुम कह सकते हो कि 'यह ऐसा ही है।' तुम उसके लिए तर्कसंगत प्रमाण दे सकते हो। मानने का अर्थ है कि तुम्हें कोई संदेह ही नहीं है। तुम उसके लिए विवाद नहीं कर सकते, तर्क नहीं दे सकते, तुम से अगर पूछा जाए तो तुम हार जाओगे। लेकिन तुम्हारे पास एक भीतरी आधार है—तुम जानते हो कि ऐसा ही है। यह एक अनुभव है, कोई बौद्धिक तर्क नहीं।

लेकिन याद रखो कि ऐसी विधियां तभी काम दे सकती हैं जब तुम अपने भावों के साथ काम करो, बुद्धि के साथ नहीं। तो ऐसा कई बार हुआ है कि बड़े अज्ञानी लोग—अनपढ़ और असंस्कृत—मानवीय चेतना की ऊंचाइयों पर पहुंच जाते हैं और जो बड़े सुसंस्कृत हैं, शिक्षित हैं, बौद्धिक हैं और तर्क में कुशल हैं, वे चूक जाते हैं।

जीसस केवल एक बढ़ई थे। फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहीं लिखा है कि पूरे नए

टेस्टामेंट में केवल एक आदमी था जिसकी सच में कोई कीमत थी, जो सुसंस्कृत था, शिक्षित था, दर्शनशास्त्र का जानकार था, बुद्धिमान था—वह आदमी था पाइलेट, रोमन गवर्नर, जिसने जीसस को सूली पर चढ़ाने की आज्ञा जारी की। वास्तव में वह सबसे ज्यादा सुसंस्कृत आदमी था—गवर्नर जनरल, वाइसरॉय। और वह जानता था कि दर्शनशास्त्र क्या है। अंतिम क्षण में, जब जीसस सूली पर चढ़ाए जाने को थे तो उसने पूछा, 'सत्य क्या है ?' यह बड़ा दार्शनिक प्रश्न था। जीसस चुप रहे—इसलिए नहीं कि यह प्रश्न जवाब देने जैसा नहीं था, पाइलेट अकेला व्यक्ति था जो गहरे दर्शन को समझ सकता था—जीसस चुप रहे, क्योंकि वे सिर्फ ऐसे लोगों से बोल सकते थे जो अनुभव कर सकें। सोच-विचार किसी काम का न था। वह एक दार्शनिक प्रश्न पूछ रहा था। अच्छा होता यदि यह प्रश्न उसने किसी यूनिवर्सिटी, किसी अकादमी में पूछा होता, लेकिन जीसस से कोई दार्शनिक प्रश्न पूछना अर्थहीन था। वे चुप रहे क्योंकि उत्तर देना व्यर्थ था। कोई संवाद संभव नहीं था।

लेकिन नीत्शे, जो स्वयं एक तार्किक व्यक्ति था, जीसस की आलोचना करता है। उसने कहा है कि वे अशिक्षित थे, असंस्कृत थे, दर्शनशास्त्र में कुशल नहीं थे—और वे उत्तर नहीं दे पाए इसलिए चुप रह गए।

पाइलेट ने बड़ा प्यारा प्रश्न पूछा। यदि उसने यह प्रश्न नीत्शे से पूछा होता, तो नीत्शे वर्षों तक इस पर बोलता चला जाता। 'सत्य क्या है ?' यह एक प्रश्न ही वर्षों तक बोलने और चर्चा करने के लिए पर्याप्त है। पूरा दर्शनशास्त्र इसी बात का विस्तार है—'सत्य क्या है ?' एक प्रश्न और सारे दार्शनिक इसी में जुटे हुए हैं।

नीत्शे की आलोचना तर्क द्वारा की गई आलोचना है, तर्क द्वारा की गई निंदा है। तर्क ने सदा ही भाव के आयाम की आलोचना की है, क्योंकि भाव बड़ा अस्पष्ट है, रहस्यमय है। वह है और फिर भी तुम उसके बारे में कुछ नहीं कह सकते। भाव या तो तुम्हारे पास है, या नहीं है—उसके संबंध में तुम कुछ भी नहीं कर सकते, न ही कोई चर्चा कर सकते हो।

तुम्हारे भी कई विश्वास हैं, लेकिन वे विश्वास स्वीकार कर ली गई धारणाएं भर हैं; वे विश्वास नहीं हैं, क्योंकि तुम्हें उनके प्रति संदेह है। तुमने उन संदेहों को अपने तर्कों से कुचल डाला है, लेकिन वे अभी भी जिंदा हैं। तुम उनके ऊपर बैठे हुए हो, लेकिन वे वहीं के वहीं हैं। तुम उनसे लड़ते रहते हो, लेकिन वे अभी मरे नहीं हैं। वे मर नहीं सकते। यही कारण है कि तुम्हारा जीवन भले ही एक हिंदू का जीवन हो, या मुसलमान का, या ईसाई का, या जैन का, लेकिन

वह एक धारणा ही है। श्रद्धा तुम्हें नहीं है।

मैं तुम्हें एक कहानी कहता हूं। जीसस ने अपने शिष्यों को कहा कि वे नाव से उस झील के दूसरे किनारे चले जाएं जहां वे सब ठहरे हुए थे। और वे बोले, 'मैं बाद में आऊंगा।' वे लोग चले गए। जब वे बीच मझधार में थे तो बड़ा तेज तूफान आया, उथल-पुथल मच गई और वे बड़े भयभीत हो गए। नाव थपेड़े खा रही थी और वे सब रोने व चीखने-पुकारने लगे, चिल्लाने लगे कि 'जीसस हमें बचाओ।'

वह किनारा जहां जीसस खड़े थे काफी दूर था, लेकिन जीसस आए। कहते हैं कि वे पानी पर दौड़ते हुए आ गए। और पहली बात उन्होंने शिष्यों को यह कही कि 'कम भरोसे के लोगो, क्यों रोते हो ? क्या तुम्हें भरोसा नहीं है ?' वे तो भयभीत थे। जीसस बोले, 'अगर तुम्हें भरोसा है तो नाव से उतरो और चलकर मेरी ओर आओ।' वे पानी पर खड़े हुए थे। शिष्यों ने अपनी आंखों से देखा कि वे पानी पर खड़े हुए थे, लेकिन फिर भी यह मानना कठिन था। जरूर अपने मन में उन्होंने सोचा होगा कि यह कोई चाल है, या हो सकता है कि यह कोई भ्रम हो, या यह जीसस ही न हों। शायद यह शैतान है जो उन्हें कोई प्रलोभन दे रहा है। तो वे एक-दूसरे का मुंह देखने लगे कि कौन चलकर जाएगा।

फिर एक शिष्य नाव से उतरकर चला। और सच में वह चल पाया। वह तो अपनी आंखों पर विश्वास न कर सका। वह पानी पर चल रहा था। जब वह जीसस के करीब आया तो बोला, 'कैसे ? यह कैसे हो रहा है ?' तत्क्षण पूरा चमत्कार खो गया। 'कैसे ?'—और वह डूबने लगा। जीसस ने उसे बाहर निकाला और बोले, 'कम भरोसे के आदमी, तू यह कैसे का सवाल क्यों पूछता है ?'

लेकिन बुद्धि 'क्यों ?' और 'कैसे ?' पूछती है। बुद्धि पूछती है, बुद्धि प्रश्न उठाती है। भरोसा है सब प्रश्नों को गिरा देना। अगर तुम सब प्रश्नों को गिरा सको और भरोसा कर सको तो यह विधि तुम्हारे लिए चमत्कार कर सकती है।

आज इतना ही।

74

संवेदनशीलता और आसक्ति

प्रश्न-सार

1. *संवेदनशील होते हुए भी विरक्त कैसे हुआ जाए ?*
2. *आप अपने ही शरीर को ठीक क्यों नहीं कर सकते ?*
3. *स्वयं श्रम करें या आप पर सब छोड़ दें ?*
4. *क्या सच में जीसस को पता नहीं था कि पृथ्वी गोल है ?*

पहला प्रश्न :

ध्यान की गहराई के साथ-साथ, व्यक्ति वस्तुओं तथा व्यक्तियों के प्रति अधिकाधिक संवेदनशील होता जाता है। लेकिन इस गहन संवेदनशीलता के कारण व्यक्ति स्वयं को हर चीज के साथ जुड़ा हुआ और एक गहन अंतरंगता में पाता है, और यह अक्सर एक सूक्ष्म आसक्ति का कारण बन जाता है। तो संवेदनशील होते हुए भी विरक्त कैसे हुआ जाए ?

संवेदनशील होते हुए भी विरक्त कैसे हुआ जाए ?

ये दोनों बातें विरोधी नहीं हैं, विपरीत नहीं हैं। यदि तुम अधिक संवेदनशील हो तो तुम विरक्त होओगे; या तुम यदि विरक्त हो तो अधिकाधिक संवेदनशील होते जाओगे। संवेदनशीलता आसक्ति नहीं है, संवेदनशीलता सजगता है। केवल एक सजग व्यक्ति ही संवेदनशील हो सकता है। यदि तुम सजग नहीं हो तो असंवेदनशील होओगे। जब तुम बेहोश होते हो तो बिलकुल असंवेदनशील होते हो; जितनी अधिक सजगता, उतनी ही अधिक संवेदनशीलता।

बुद्ध पुरुष पूर्णतया संवेदनशील होता है, उसकी संवेदनशीलता परम होती है, क्योंकि वह अपनी परिपूर्ण क्षमता से अनुभव करेगा और सजग होगा। लेकिन जब तुम संवेदनशील होते हो और सजग होते हो तो तुम आसक्त नहीं होओगे,

तुम विरक्त रहोगे। क्योंकि सजगता की यह घटना ही तुम्हारे और वस्तुओं के बीच, तुम्हारे और व्यक्तियों के बीच, तुम्हारे और संसार के बीच सेतु को तोड़ डालती है, सेतु को नष्ट कर देती है। बेहोशी और नींद ही आसक्ति के कारण हैं।

यदि तुम सजग हो तो सेतु अचानक टूट जाता है। जब तुम सजग होते हो तो संसार से जुड़ने के लिए कुछ भी नहीं बचता। संसार भी है, तुम भी हो, लेकिन दोनों के बीच का सेतु टूट गया है। वह सेतु तुम्हारी बेहोशी से बना है।

तो ऐसा मत सोचो कि तुम आसक्त हो रहे हो क्योंकि तुम अधिक संवेदनशील हो गए हो। नहीं, यदि तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी तो तुम आसक्त नहीं होओगे। आसक्ति तो बड़ा स्थूल गुण है, सूक्ष्म नहीं है। आसक्ति के लिए तुम्हें सजग और जागरूक होने की जरूरत नहीं है। कोई जरूरत नहीं है। जानवर भी बड़ी सरलता से, बल्कि अधिक सरलता से आसक्त हो सकते हैं। किसी मनुष्य से ज्यादा एक कुत्ता अपने मालिक से आसक्त होता है। कुत्ता पूरी तरह बेहोश है इसलिए आसक्ति हो जाती है।

इसीलिए जिन देशों में मानवीय संबंध निर्बल पड़ गए हैं, जैसे कि पश्चिम में, वहां मनुष्य जानवरों से, कुत्तों से या अन्य जानवरों से संबंध स्थापित करता जा रहा है। क्योंकि मानवीय संबंध तो अब रहे ही नहीं। मानव समाज समाप्त होता जा रहा है और हर मनुष्य एकाकी, अजनबी, अकेला महसूस करता है। भीड़ है, लेकिन तुम्हारा उससे कोई संबंध नहीं है। तुम अकेले हो भीड़ में। और यह अकेलापन तुम्हें खलता है। तो आदमी भयभीत हो जाता है और डरने लगता है।

जब तुम किसी से जुड़े होते हो, आसक्त होते हो और दूसरा तुम्हारे साथ आसक्त होता है, तो तुम्हें लगता है कि इस संसार में, इस अजनबी संसार में तुम अकेले नहीं हो। कोई तुम्हारे साथ है। किसी से संबंधित होने का यह भाव तुम्हें एक तरह की सुरक्षा देता है। जब मानवीय संबंध असंभव हो जाते हैं तो पुरुष और स्त्रियां जानवरों से संबंध बनाने की कोशिश करते हैं। पश्चिम में वे कुत्तों और दूसरे जानवरों से बहुत जुड़े हुए हैं, लेकिन यहां पूर्व में चाहे तुम गौओं की पूजा करते हो लेकिन उनसे जुड़े हुए नहीं हो। तुम चाहे कहे चले जाओ कि गाय की तुम दिव्य-पशु की तरह पूजा करते हो, लेकिन तुम्हारी क्रूरता का भी कोई अंत नहीं है।

पूर्व में तुम पशुओं के साथ इतने क्रूर हो कि पश्चिम समझ ही नहीं पाता

कि तुम कैसे स्वयं को अहिंसक मानते हो। संसार भर में, विशेषतः पश्चिम में, जानवरों को मनुष्यों की क्रूरता से बचाने के लिए बहुत-सी समितियां हैं। पश्चिम में तुम किसी कुत्ते की पिटाई नहीं कर सकते। यदि तुम उसकी पिटाई करो तो यह एक अपराध होगा और तुम्हें उसकी सजा मिलेगी।

असल में क्या हो रहा है कि मानवीय संबंध समाप्त हो रहे हैं, लेकिन मनुष्य अकेला नहीं जी सकता। उसे कोई संबंध चाहिए, कोई नाता चाहिए, एक भाव कि उसके साथ कोई है। जानवर बहुत अच्छे मित्र हो सकते हैं, क्योंकि वे बहुत आसक्त हो जाते हैं; कोई भी मनुष्य इतना आसक्त नहीं हो सकता।

आसक्ति के लिए होश आवश्यक नहीं है; बल्कि होश उसमें बाधा है। जितने तुम होशपूर्ण होओगे उतने ही कम तुम आसक्त होओगे, क्योंकि आसक्ति की आवश्यकता नहीं रहती। तुम किसी से जुड़ना क्यों चाहते हो ? क्योंकि अकेले तुम्हें लगता है कि तुम पर्याप्त नहीं हो। तुममें कुछ कमी है। तुममें कुछ अधूरा है। तुम पूर्ण नहीं हो। तुम्हें किसी की जरूरत है जो तुम्हें पूरा करे। इसीलिए आसक्ति है। यदि तुम होशपूर्ण हो तो तुम पूरे हो, तुम पूर्ण हो; वर्तुल पूरा हो गया, तुममें कुछ कमी नहीं रही, तुम्हें किसी की आवश्यकता नहीं रही। अकेले ही तुम पूरी तरह स्वतंत्र अनुभव करते हो, पूर्णता का अनुभव करते हो।

इसका यह अर्थ नहीं कि तुम लोगों से प्रेम नहीं करोगे, बल्कि केवल तुम्हीं प्रेम कर सकते हो। जो व्यक्ति तुम पर निर्भर है वह तुम्हें प्रेम नहीं कर सकता; वह तुम्हें घृणा करेगा। जिस व्यक्ति को तुम्हारी जरूरत है वह तुम्हें प्रेम नहीं कर सकता। वह तुमसे घृणा करेगा, क्योंकि तुम बंधन हो गए हो। उसे लगता है कि तुम्हारे बिना वह जी नहीं सकता, तुम्हारे बिना वह सुखी नहीं हो सकता, तो तुम ही उसके सुख और दुख के कारण हो। वह तुम्हें खो नहीं सकता। इससे वह बंदी अनुभव करेगा, वह तुम्हारा बंदी है; और वह विरोध प्रकट करेगा, इसके विरुद्ध संघर्ष करेगा। लोग घृणा और प्रेम दोनों साथ-साथ करते हैं, लेकिन यह प्रेम बहुत गहरा नहीं हो सकता।

केवल एक जाग्रत व्यक्ति ही प्रेम कर सकता है, क्योंकि उसे तुम्हारी जरूरत नहीं है। लेकिन तब प्रेम का अलग ही आयाम होता है—प्रेम आसक्ति नहीं रहता, परतंत्रता नहीं रहता। प्रेम न तो तुम पर आश्रित है न तुमको स्वयं पर आश्रित करेगा; वह स्वतंत्र रहेगा और तुमको भी स्वतंत्र रहने देगा। वह दो स्वतंत्र व्यक्तियों का, दो संपूर्णताओं का, दो पूर्ण आत्माओं का मिलन होगा। वह मिलन एक उत्सव, एक मंगल पर्व होगा, परतंत्रता नहीं। वह मिलन एक मस्ती होगा, खेल होगा।

इसीलिए तो हमने कृष्ण के जीवन को कृष्णलीला, कृष्ण का खेल कहा है। वह इतने लोगों को प्रेम करते हैं पर उनमें कोई आसक्ति नहीं है। कृष्ण की गोपियों और गोपालों की ओर से ऐसा नहीं है। कृष्ण के मित्रों की ओर से ऐसा नहीं है—वे आसक्त हो गए हैं। इसलिए तो जब कृष्ण वृंदावन से द्वारिका चले जाते हैं तो वे लोग रोते और चिल्लाते हैं और दुखी होते हैं। उन्हें बड़ा विषाद होता है, क्योंकि वे सोचते हैं कि कृष्ण उन्हें भूल गए हैं। वह भूले नहीं हैं, लेकिन वह दुखी नहीं हैं, क्योंकि उनके लिए कोई परतंत्रता न थी; वह द्वारिका में भी उतने ही आनंदित हैं जितने वृंदावन में थे, और उनका प्रेम द्वारिका में भी उतना ही बह रहा है जितना वृंदावन में बहता था। प्रेम के पात्र बदल गए हैं लेकिन प्रेम का स्रोत वही है। तो जो भी उनके निकट आता है, उसे प्रेम का उपहार मिलता है। और यह उपहार बेशर्त है—बदले में कुछ आकांक्षा नहीं है, बदले में कुछ मांग नहीं है।

जब प्रेम एक जाग्रत चेतना से बहता है तो बेशर्त उपहार होता है। और जो व्यक्ति प्रेम बांट रहा होता है वह आनंदित होता है क्योंकि वह दे रहा है। देना मात्र ही उसका आनंद है, उसका उल्लास है।

तो याद रखो, जितना तुम महसूस करो कि ध्यान से तुम अधिक संवेदनशील हो गए हो, उसी अनुपात में तुम उतने ही कम आसक्त और अधिक विरक्त हो जाओगे। क्योंकि तुम स्वयं में अधिक थिर हो जाओगे, स्वयं में अधिक केंद्रित हो जाओगे, तुम किसी दूसरे का अपने केंद्र की तरह उपयोग नहीं करोगे।

आसक्ति का अर्थ क्या है ? आसक्ति का अर्थ है कि तुम किसी दूसरे का अपने प्राणों के केंद्र की तरह प्रयोग कर रहे हो। मजनू लैला से आसक्त है; वह कहता है कि वह लैला के बिना जी नहीं सकता। इसका अर्थ है कि प्राणों का केंद्र कहीं और हो गया है। जब तुम कहते हो कि तुम इसके बिना या उसके बिना जी नहीं पाओगे तो तुम्हारी आत्मा तुम्हारे भीतर नहीं है। तब तुम स्वतंत्र इकाई की तरह नहीं जी रहे, तुम्हारा केंद्र कहीं और खिसक गया है।

तुम्हारे केंद्र का किसी दूसरे में चले जाना ही आसक्ति है। यदि तुम संवेदनशील हो तो तुम दूसरे को महसूस करोगे, लेकिन वह तुम्हारे जीवन का केंद्र नहीं बन जाएगा। तुम अपने केंद्र पर रहोगे और इस केंद्रस्थता के कारण दूसरे को तुमसे कई आशीष मिलेंगे। लेकिन वे आशीष ही होंगे, कोई सौदा नहीं। तुम बस इसलिए दोगे कि तुम्हारे पास बहुत अधिक है, तुम अतिरेक में बह रहे हो। और तुम धन्यभागी होओगे कि दूसरे ने स्वीकार कर लिया। इतना ही पर्याप्त होगा और यही अंत होगा।

इसीलिए मैं कहे चला जाता हूं कि मन बड़ा धोखेबाज है। तुम सोचते हो कि तुम ध्यान कर रहे हो, और उसके कारण तुम संवेदनशील हो गए हो। फिर प्रश्न उठता है कि तुम आसक्त क्यों हो जाते हो ? यदि तुम आसक्त हो जाते हो तो यह इस बात का स्पष्ट सूचक है कि यह संवेदनशीलता सजगता के कारण नहीं है। वास्तव में, यह संवेदनशीलता ही नहीं है। हां, भावुकता हो सकती है; जो कि बिलकुल अलग बात है। तुम भावुक हो सकते हो; छोटी-छोटी बातों पर रो-चीख सकते हो, उद्वेलित हो सकते हो, और बड़ी आसानी से तुम्हारे भीतर एक तूफान खड़ा किया जा सकता है। लेकिन वह भावुकता है, संवेदनशीलता नहीं।

मैं एक कहानी तुम्हें कहूं। बुद्ध एक गांव में ठहरे हुए थे। एक स्त्री उनके पास रोती और चीखती-चिल्लाती आई। उसका बच्चा, इकलौता बच्चा अचानक मर गया था। बुद्ध गांव में थे, तो लोगों ने कहा, 'रो मत। इस आदमी के पास जा। लोग कहते हैं वे महा-करुणावान हैं। यदि वे चाहें, बच्चा पुनरुज्जीवित हो सकता है तो रो मत। इस बुद्ध के पास जा।'

वह स्त्री अपने मरे हुए बच्चे को लेकर रोती-चिल्लाती आई, और पूरा गांव उसके पीछे आया। पूरा गांव चिंतित था। बुद्ध के शिष्य भी चिंतित थे; उन्होंने मन ही मन प्रार्थना करनी शुरू कर दी कि बुद्ध करुणा कर दें। इस बच्चे को आशीर्वाद दे दें कि वह जी उठे, पुनरुज्जीवित हो जाए।

बुद्ध के कई शिष्यों ने रोना शुरू कर दिया। वह दृश्य बड़ा करुण था, हृदय-विदारक था। सब लोग मौन थे। बुद्ध भी मौन रहे। उन्होंने मरे हुए बच्चे को देखा, फिर रोती-बिलखती मां की ओर देखा और बोले, 'रो मत, बस एक काम कर और तेरा बच्चा फिर से जी उठेगा। इस मृत बालक को इधर ही छोड़ दे, वापस नगर में जा, हर घर में जा और हर परिवार से पूछ कि कभी उनके घर में, उनके परिवार में कोई मरा है या नहीं। और यदि तू वह घर ढूंढ़ सके जिसमें कभी कोई भी न मरा हो, उनसे तू कुछ खाने को मांग—कुछ रोटी, कुछ चावल, या कुछ भी—लेकिन उसी घर से जिसमें कभी कोई न मरा हो। और उस रोटी या चावल से बच्चा तत्क्षण जी उठेगा। तू जा। समय व्यर्थ मत गंवा।'

वह स्त्री तो प्रसन्न हो गई। उसे लगा कि अब चमत्कार घटने ही वाला है। उसने बुद्ध के पांव छुए और गांव की ओर दौड़ी, जो कि बहुत बड़ा नहीं था, कुछ ही झोंपड़ियां थीं, थोड़े से परिवार थे। वह एक घर से दूसरे घर पूछती फिरी। लेकिन हर घर ने यही कहा, 'यह असंभव है। ऐसा एक भी घर नहीं

है—इस गांव में ही नहीं बल्कि सारी पृथ्वी पर—ऐसा एक भी घर नहीं है जहां कोई भी न मरा हो, जहां लोगों ने मृत्यु को और उससे पैदा होने वाले दुख, पीड़ा और विषाद को न झेला हो।'

धीरे-धीरे स्त्री ने महसूस किया कि बुद्ध एक चाल चल रहे थे। यह असंभव था। लेकिन फिर भी आशा थी। वह तब तक पूछती रही जब तक पूरे गांव में न घूम ली। उसके आंसू सूख गए, उसकी आशा मर गई, लेकिन अचानक उसने महसूस किया कि एक नई शांति, एक नई सौम्यता उस पर उतर रही है। अब उसने महसूस किया कि जो भी पैदा हुआ है वह मरेगा ही। केवल कुछ वर्षों का सवाल है। कोई जल्दी मरेगा, कोई देर से मरेगा, लेकिन मृत्यु अपरिहार्य है।

वह वापस लौटी, दोबारा बुद्ध के पांव छुए और बोली, 'लोग जैसा कहते हैं, सच में ही लोगों के प्रति आपके मन में महाकरुणा है।' कोई भी समझ नहीं सका कि क्या हुआ। बुद्ध ने उसको संन्यास में दीक्षित किया, वह भिक्षुणी, संन्यासिनी बन गई। वह दीक्षित हो गई।

आनंद ने बुद्ध से पूछा, 'आप उस बच्चे को जिला सकते थे। इतना प्यारा बच्चा था और उसकी मां इतनी संतप्त थी।' लेकिन बुद्ध ने कहा, 'यदि बच्चा पुनरुज्जीवित भी हो उठता तो भी उसे मरना तो पड़ता ही। मृत्यु अपरिहार्य है।' आनंद ने कहा, 'लेकिन ऐसा लगता नहीं है कि आप लोगों के प्रति और उनके दुख, संतापों के प्रति संवेदनशील हैं।' बुद्ध ने उत्तर दिया, 'मैं संवेदनशील हूं, तुम भावुक हो। बस इसलिए क्योंकि तुम रोने लग गए, क्या तुम सोचते हो कि तुम संवेदनशील हो ? तुम बचकाने हो। तुम जीवन को नहीं समझते। तुम्हें वास्तविकता का पता नहीं है।'

ईसाइयत और बौद्ध धर्म में यही अंतर है। कहते हैं क्राइस्ट ने लोगों को जिलाने के कई चमत्कार किए। लज़ारस जब मरा तो जीसस ने उसे छुआ और वह दोबारा जी उठा। पूर्व में हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि बुद्ध किसी को छूकर जिला दें। साधारण लोगों को, साधारण मन को, जीसस बुद्ध से अधिक प्रेमपूर्ण और अधिक करुणावान लगेंगे। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि बुद्ध अधिक संवेदनशील हैं, अधिक करुणावान हैं। क्योंकि यदि लज़ारस जी भी उठा तो कोई अंतर न पड़ा। फिर भी उसे मरना पड़ा। अंततः लज़ारस को मरना पड़ा। तो यह चमत्कार किसी काम का न था, किसी परम मूल्य का न था। कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि बुद्ध ऐसा करेंगे।

जीसस को करना पड़ा क्योंकि वह कुछ नया कह रहे थे, इजरायल के लिए

एक नया संदेश लाए थे। और संदेश इतना गहरा था कि लोग उसे समझ न पाते, इसलिए उसके आस-पास उन्हें चमत्कार खड़े करने पड़े। क्योंकि लोग चमत्कारों को समझ सकते हैं, लेकिन गहन संदेश को, रहस्यपूर्ण संदेश को नहीं समझ सकते। वे चमत्कारों को समझ सकते हैं, चमत्कारों के द्वारा वे संदेश के प्रति खुल सकते हैं और ग्रहणशील हो सकते हैं। जीसस उस धरती पर बौद्ध संदेश ले जा रहे थे जिसके पास बुद्धत्व की, बुद्ध पुरुषों की कोई परंपरा नहीं थी।

हम समझ सकते हैं कि बुद्ध अपने उन शिष्यों से अधिक संवेदनशील थे जो रो-धो रहे थे। वे लोग भावुक थे। तो अपनी भावुकता को संवेदनशीलता मत समझो। भावुकता तो सामान्य है, संवेदनशीलता असामान्य है। वह प्रयास से घटती है। वह एक उपलब्धि है। तुम्हें उसे अर्जित करना होता है। भावुकता को अर्जित नहीं करना पड़ता; उसके साथ तुम पैदा होते हो। यह तो एक पाशविक परंपरागत गुण है जो तुम्हारे शरीर और मन की हर कोशिका में है।

संवेदनशीलता एक संभावना है। अभी तुम्हारे पास संवेदनशीलता नहीं है। उसे तुम पैदा कर सकते हो, उसके लिए कुछ कर सकते हो, फिर वह तुम्हें घटित होगी। और जब भी घटित होगी, तुम विरक्त हो जाओगे।

बुद्ध पूर्णतया विरक्त थे। मृत बच्चा सामने था, लेकिन वह बिलकुल उद्विग्न नहीं दिखाई पड़े। वह स्त्री, वह मां दुखी थी, और वह उसके साथ चाल चल रहे थे। यह आदमी क्रूर दिखाई पड़ता है, और यह चाल उस मां पर जरा ज्यादती है जिसका बच्चा मर गया है। उन्होंने उसे एक पहेली पकड़ा दी। और वे अच्छी तरह जानते थे कि वह खाली हाथ वापस लौटेगी। लेकिन मैं फिर कहता हूं कि उनमें सच्ची करुणा है, क्योंकि वह उस स्त्री के विकास में, परिपक्व होने में मदद कर रहे थे। जब तक तुम मृत्यु को न जान लो तब तक तुम परिपक्व नहीं हुए; और जब तक तुम मृत्यु को स्वीकार न कर लो, तुम्हारे प्राणों में कोई केंद्र नहीं है। जब तुम मृत्यु को एक यथार्थ की भांति स्वीकार कर लेते हो, तुम उसके पार चले जाते हो।

बुद्ध ने उस परिस्थिति का उपयोग किया। उन्हें मरे हुए बच्चे की परवाह कम थी, जीवित मां की परवाह अधिक थी; क्योंकि वह जानते थे कि मरा हुआ बच्चा तो दोबारा पैदा हो ही जाएगा, किसी चमत्कार की कोई जरूरत न थी। लेकिन यदि बच्चा जी उठता तो मां एक अवसर खो देती। हो सकता है जन्मों तक फिर किसी बुद्ध से उसका मिलन न होता।

तो पूर्व में केवल निम्न श्रेणी के साधु ही चमत्कार कर रहे हैं; श्रेष्ठ साधुओं

ने तो कभी कोई चमत्कार नहीं किया, वे उच्च तल पर कार्य करते हैं। बुद्ध भी चमत्कार कर रहे हैं, लेकिन चमत्कार उच्च तल पर हो रहा है—मां रूपांतरित हो रही है।

लेकिन इसे समझ पाना कठिन है, क्योंकि हमारे मन स्थूल हैं और हम केवल भावुकता को ही समझते हैं, संवेदनशीलता को नहीं समझ सकते। संवेदनशीलता का अर्थ है एक सजगता, जो अपने चारों ओर जो भी हो रहा है उसे महसूस करे। और यह तुम तभी महसूस कर सकते हो जब तुम आसक्त न होओ। इसे याद रखो—यदि तुम आसक्त हो तो महसूस करने के लिए मौजूद न रहे; अपने से बाहर निकल गए।

तो यदि तुम किसी के विषय में सच्चाई जानना चाहते हो तो उसके मित्रों से मत पूछो। वे आसक्त हैं। और उसके शत्रुओं से भी मत पूछो। वे भी आसक्त हैं, विपरीत छोर से आसक्त हैं। किसी ऐसे व्यक्ति से पूछो जो तटस्थ हो, न मित्र हो न शत्रु हो। केवल वही सच कह सकता है।

मित्रों का विश्वास नहीं किया जा सकता, शत्रुओं का भी विश्वास नहीं किया जा सकता; लेकिन हम मित्रों या शत्रुओं का ही विश्वास करते हैं। दोनों ही गलत होंगे, क्योंकि दोनों के ही पास तटस्थ दृष्टि नहीं है, दोनों के ही पास अनासक्त दृष्टिकोण नहीं है। वे अलग खड़े होकर नहीं देख सकते, क्योंकि उस व्यक्ति में उनका स्वार्थ निहित है। मित्रों का अपना स्वार्थ है और शत्रुओं का अपना स्वार्थ है। वे अपने-अपने दृष्टिकोणों से देखते हैं और उन दृष्टिकोणों से आसक्त होते हैं।

यदि तुम आसक्त हो तो जीवन को उसकी समग्रता में अनुभव नहीं कर सकते। जिस क्षण तुम आसक्त हुए, तुमने एक दृष्टिकोण अपना लिया। समग्रता खो गई; केवल अंश तुम्हारे हाथ में बचा। और अंश हमेशा झूठे होते हैं, क्योंकि सत्य पूर्ण ही होता है।

ध्यान करो, अधिक संवेदनशील होओ, और इसे कसौटी की तरह लो कि तुम अधिकाधिक अनासक्त होते जा रहे हो। यदि तुम्हें लगे कि आसक्ति बढ़ रही है तो तुम ध्यान में कहीं भूल कर रहे हो। यही कसौटी है। और मेरे देखे, न तो आसक्ति को हटाया जा सकता है और न अनासक्ति को साधा जा सकता है। तुम केवल ध्यान साध सकते हो—और अनासक्ति एक परिणाम की तरह, एक उप-उत्पाद की तरह चली जाएगी।

यदि ध्यान सच में ही तुम्हारे भीतर फलित होता है तो तुममें अनासक्ति का भाव जग जाएगा। फिर तुम कहीं भी जा सकते हो, तुम अछूते, अभय ही

रहोगे। फिर जब तुम अपना शरीर छोड़ोगे तो उसे निर्विकार छोड़ोगे। तुम्हारी चेतना बिलकुल परिशुद्ध होगी, उसमें कुछ भी विजातीय नहीं होगा। जब तुम आसक्त होते हो तो अशुद्धियां तुममे प्रवेश कर जाती हैं। यह मौलिक अशुद्धि है कि तुम अपना केंद्र खो रहे हो और कोई दूसरा तुम्हारे प्राणों का केंद्र हो रहा है।

दूसरा प्रश्न :

यदि श्रद्धा पर्वतों को भी हिला सकती है तो आप अपने ही शरीर को ठीक क्यों नहीं कर सकते ?

मेरा कोई शरीर नहीं है।

यदि भाव बिलकुल गलत है कि तुम्हारा कोई शरीर है। शरीर तो अस्तित्व का है; तुम्हारा नहीं है। तो यदि शरीर अस्वस्थ है अथवा शरीर स्वस्थ है तो अस्तित्व उसकी चिंता लेगा। और जो व्यक्ति ध्यान में है उसे साक्षी बने रहना चाहिए, चाहे शरीर स्वस्थ हो चाहे अस्वस्थ हो।

स्वस्थ होने की कामना भी अज्ञान का हिस्सा है। अस्वस्थ न होने की कामना भी अज्ञान का हिस्सा है। और यह कोई नया प्रश्न नहीं है, यह प्राचीनतम प्रश्नों में से एक है। यही बुद्ध से पूछा गया था; यही महावीर से पूछा गया था। अब तक जितने भी बुद्ध पुरुष हुए हैं, अज्ञानियों ने सदा उनसे यही प्रश्न पूछा है।

देखो, जीसस ने कहा कि श्रद्धा पर्वतों को भी हिला सकती है, लेकिन वह क्रास पर मरे। वह क्रास को नहीं हिला पाए। तुम या तुम्हारे जैसा कोई और वहां खड़ा प्रतीक्षा कर रहा होगा। शिष्य प्रतीक्षा कर रहे थे, क्योंकि वे जीसस को जानते थे और वह बार-बार दोहराते रहे थे कि श्रद्धा पर्वतों को भी हिला सकती है। तो वे किसी चमत्कार की प्रतीक्षा कर रहे थे, और जीसस चुपचाप क्रास पर मर गए। लेकिन यही चमत्कार था—वह अपनी ही मृत्यु के साक्षी हो सके। और अपनी ही मृत्यु का साक्षी होना जीवंतता का महानतम क्षण है।

बुद्ध विषाक्त भोजन से मरे। छः महीने लगातार उन्होंने पीड़ा झेली। और कई शिष्य थे जो प्रतीक्षा कर रहे थे कि वे कोई चमत्कार करेंगे। लेकिन चुपचाप उन्होंने पीड़ा झेली और चुपचाप मर गए। उन्होंने मृत्यु को स्वीकार कर लिया। ऐसे शिष्य थे जो उनको ठीक करने का प्रयास कर रहे थे, उन्हें कई दवाएं दी जा रही थीं।

उन दिनों एक बड़ा चिकित्सक, जीवक, बुद्ध का निजी चिकित्सक था।

जहां भी वह जाते, वह उनके साथ ही जाता था। कई बार लोगों ने पूछा होगा, 'यह जीवक आपके साथ क्यों चलता है ?' लेकिन यह जीवक की अपनी आसक्ति थी। जीवक अपनी आसक्ति के कारण बुद्ध के साथ चल रहा था। और जो शिष्य प्रयास कर रहे थे कि बुद्ध का शरीर संसार में कुछ और समय तक रह जाए, चाहे कुछ ही दिन और, वे भी आसक्त थे। स्वयं बुद्ध के लिए तो रोग और स्वास्थ्य समान थे।

इसका यह अर्थ नहीं है कि रोग पीड़ा नहीं देगा। वह तो देगा ही ! पीड़ा तो शारीरिक घटना है, होगी ही। लेकिन वह आंतरिक चैतन्य को विचलित नहीं करेगी। आंतरिक चैतन्य अविचलित रहेगा, सदा की तरह संतुलित रहेगा। शरीर पीड़ित होगा, लेकिन अंतरात्मा सारी पीड़ा की साक्षी मात्र रहेगी, कोई तादात्म्य नहीं होगा।

और इसको मैं चमत्कार कहता हूं। यह श्रद्धा से ही संभव है। और तादात्म्य से बड़ा कोई पर्वत नहीं है, याद रखो। हिमालय कुछ भी नहीं है; अपने शरीर के साथ तुम्हारा तादात्म्य उससे भी बड़ा पर्वत है। श्रद्धा से हिमालय तो चाहे हिले न हिले, यह बात असंगत है, लेकिन तुम्हारा तादात्म्य उससे नष्ट किया जा सकता है।

लेकिन जो हम नहीं जानते उसको समझ ही नहीं सकते, हम केवल अपने मन के अनुसार सोच सकते हैं। हम वहीं की सोचते हैं जहां हम हैं, हमारा ढर्रा वही रहता है।

कई बार मेरा शरीर रुग्ण होता है और लोग मेरे पास आकर कहते हैं, 'आप बीमार क्यों होते हैं ? आपको तो बीमार नहीं होना चाहिए; एक बुद्ध पुरुष को बीमार नहीं होना चाहिए।'

लेकिन तुम्हें किसने कहा कि ऐसा होता है ? मैंने तो कभी किसी बुद्ध पुरुष के बारे में नहीं सुना जो बीमार न रहा हो। बीमारी शरीर की होती है। उसका तुम्हारी चेतना से या तुम्हारे संबुद्ध होने या न होने से कोई लेना-देना नहीं है। और कई बार ऐसा होता है कि बुद्ध पुरुष अबुद्धों से अधिक रोगग्रस्त होते हैं। कई कारण हैं...अब क्योंकि वे शरीर से हट जाते हैं, इसलिए शरीर के साथ सहयोग नहीं रह जाता; गहरे में वे स्वयं को शरीर से पृथक कर लेते हैं। तो शरीर तो रहता है लेकिन आसक्ति और सेतु टूट जाता है।

उस दूरी के कारण कई बीमारियां होती हैं। अब वे शरीर में तो हैं लेकिन उसके साथ उनका सहयोग नहीं रहा। इसीलिए हम कहते हैं कि बुद्ध पुरुष कभी दोबारा पैदा नहीं होता, क्योंकि अब वह किसी शरीर के साथ सेतु नहीं

बना सकता। सेतु टूट गया है। जब वह शरीर में होता है, तब भी, वास्तव में, मर ही गया होता है।

बुद्ध जब करीब चालीस वर्ष के थे तो उन्हें बुद्धत्व की घटना घटी। जब वह अस्सी वर्ष के थे तब उनकी मृत्यु हुई, तो वह चालीस वर्ष और जीए। जिस दिन वह शरीर छोड़ रहे थे आनंद रोने लगा और बोला, 'हमारा क्या होगा ? आपके बिना हम अंधकार में गिर जाएंगे। आप जा रहे हैं और हम अभी संबुद्ध भी नहीं हुए। हमारी अपनी ज्योति अभी जली नहीं और आप जा रहे हैं। हमें छोड़कर न जाएं !'

कहते हैं कि बुद्ध ने कहा, 'क्या ? क्या कह रहे हो, आनंद ? मैं तो चालीस वर्ष पहले ही मर गया था। यह अस्तित्व तो केवल आभास-अस्तित्व था, छाया मात्र था। किसी तरह चल रहा था, लेकिन उसमें बल नहीं था। यह तो अतीत का ही आवेग था।'

यदि तुम एक साइकिल को पैडल मार रहे हो, फिर रुक जाओ और पैडल न मारो, तुम साइकिल को कोई सहयोग नहीं दे रहे, फिर भी आवेग के कारण, अतीत में तुमने जो ऊर्जा दी है उसके कारण वह कुछ समय तक चलती रहेगी।

जिस क्षण कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, उसका सहयोग समाप्त हो जाता है। अब शरीर अपने ढंग से चलेगा। उसके पास अपना आवेग है। कई जन्मों से उसे आवेग दिया गया है। उसका अपना जीवन-काल है जो पूरा होगा। लेकिन अब, क्योंकि शरीर के साथ कोई आंतरिक बल नहीं है तो वह साधारण लोगों से अधिक बीमार हो सकता है।

रामकृष्ण कैंसर से मरे। रमण कैंसर से मरे। शिष्यों को तो बड़ा धक्का लगा, लेकिन अपने अज्ञान के कारण वे समझ नहीं पाए।

एक बात और समझने जैसी है। जब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है तो यह उसका अंतिम जन्म होता है। तो सारे अतीत के कर्म और पूरा लेन-देन इसी जन्म में पूरा होना है। पीड़ा—यदि उसे कोई पीड़ा होनी है तो—बहुत सघन हो जाएगी। तुम्हारे लिए कोई जल्दी नहीं है, तुम्हारी पीड़ा तो कई जन्मों पर फैल जाएगी। लेकिन एक रमण के लिए तो यह अंतिम जन्म है। जो भी अतीत से आया है उसे पूरा होना है। हर चीज में, हर कर्म में एक सघनता होगी। यह जीवन एक प्रगाढ़ जीवन हो जाएगा।

कई बार ऐसा होता है—इसे समझना थोड़ा कठिन है—एक क्षण में कई जन्मों की पीड़ा झेल लेनी पड़ती है। एक क्षण में सघनता बहुत अधिक हो जाती है, क्योंकि समय को सिकोड़ा अथवा फैलाया जा सकता है।

तुम जानते हो कि कई बार तुम्हें झपकी लग जाती है और तुम कोई सपना देखते हो, और जब तुम जागते हो तो पता चलता है कि तुम कुछ ही सेकेंड सोए हो। लेकिन तुमने इतना लंबा सपना देखा ! यह संभव है कि एक छोटे से सपने में पूरा जीवन देखा हो। क्या हुआ ? इतने थोड़े से समय में तुम इतना लंबा सपना कैसे देख पाए ?

समय का केवल एक ही तल नहीं है जैसा कि हम साधारणतः समझते हैं, समय के कई तल हैं। स्वप्न-समय का अपना अस्तित्व है। जागते समय भी समय बदलता रहता है। घड़ी के हिसाब से चाहे न बदले, क्योंकि घड़ी तो यंत्र है, लेकिन मनोवैज्ञानिक हिसाब से समय बदलता रहता है। जब तुम सुखी होते हो, समय तेजी से बहता है। जब तुम उदास होते हो, समय धीमा हो जाता है। यदि तुम पीड़ा में हो तो रात लगता है कभी खतम नहीं होगी; और यदि तुम सुखी और आनंदित हो तो पूरी रात एक क्षण में बीत सकती है।

जब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है, सब लेन-देन पूरा करना होता है—दुकान बंद करने का समय आ गया। लाखों जन्मों की यात्रा है और सारे हिसाब-किताब साफ करने हैं, क्योंकि और कोई अवसर नहीं मिलेगा। बुद्धत्व के बाद बुद्ध पुरुष एक दूसरे ही समय में जीता है और उसे जो भी होता है वह गुणात्मक रूप से भिन्न होता है। लेकिन वह साक्षी रहता है।

महावीर पेट के दर्द से मरे, अल्सर जैसा कुछ था, कई वर्षों तक वह पीड़ित रहे। उनके शिष्य जरूर कठिनाई में पड़े होंगे, क्योंकि उन्होंने इसके आस-पास एक कहानी गढ़ ली। वे समझ ही नहीं पाए कि महावीर क्यों पीड़ा झेलें तो उन्होंने एक कहानी गढ़ ली जिससे शिष्यों के बारे में कुछ पता चलता है, महावीर के बारे में नहीं।

वे कहते हैं कि एक व्यक्ति जो बड़ी दुष्ट-आत्मा था, गोशालक, महावीर की पीड़ा का कारण था। उसने अपनी दुष्ट शक्ति महावीर पर फेंकी, और अपनी करुणा के कारण महावीर उसे पचा गए, और इसी कारण वह पीड़ित हुए। इससे महावीर के बारे में कुछ पता नहीं चलता लेकिन शिष्यों की कठिनाई के बारे में पता चलता है। वे महावीर को पीड़ित देखने की कल्पना भी नहीं कर सकते तो कारण उन्हें कहीं और खोजना पड़ा।

एक दिन मुझे जुकाम था—यह मेरा सदा का साक्षी है—तो कोई आया और बोला, 'आपने जरूर किसी और का जुकाम ले लिया होगा।' इससे मेरे बारे में कुछ पता नहीं चलता, उसके बारे में पता चलता है। उसके लिए यह समझ

पाना कठिन है कि मैं पीड़ित हूं। तो उसने कहा, 'आपने जरूर किसी और का जुकाम ले लिया होगा।' मैंने उसे समझाने की कोशिश की, लेकिन शिष्यों को समझाना असंभव है। जितना ही तुम उन्हें विश्वास दिलाने की कोशिश करो, उतना ही उन्हें विश्वास हो जाता है कि वे सही हैं। अंत में उसने मुझसे कहा, 'आप कुछ भी कहें, मैं नहीं सुनने वाला। मैं तो जानता हूं ! आपने किसी और की बीमारी ले ली है।'

अब क्या किया जाए ? शरीर का बीमार होना या स्वस्थ होना, उसके अपने मामले हैं। यदि तुम अभी भी उनके बाबत कुछ करना चाहते हो तो तुम अभी भी शरीर से आसक्त हो। वह अपने अनुसार चलेगा; तुम्हें उसके बारे में ज्यादा चिंता लेने की जरूरत नहीं है।

मैं केवल एक साक्षी हूं। शरीर पैदा हुआ है, शरीर मरेगा, केवल साक्षीत्व ही रह जाएगा। वह सदा रहेगा। केवल साक्षीत्व की पूर्णतया शाश्वत है, बाकी सब बदलता रहता है, बाकी सब एक बहाव है।

तीसरा प्रश्न :

कल रात आपने विस्तार से समझाया कि किस प्रकार साधक ध्यान के प्रति तीव्र तथा निष्ठापूर्ण प्रयास न करके स्वयं को धोखा देते हैं। लेकिन कई साधक जो निष्ठापूर्वक आपसे ध्यान की विधियों के विषय में पूछते हैं, आप उन्हें सब कुछ आप पर छोड़ देने को कहते हैं, कि आप ही उनके आध्यात्मिक विकास की फिक्र करेंगे। लेकिन कई साधक इस तरह अपने आध्यात्मिक रूपांतरण के प्रति असंतोष का अनुभव करते हैं। इसमें, कृपया समझाएं कि ये साधक किस प्रकार स्वयं को धोखा दे रहे हैं।

पहली बात, जब वे कोई विधि की मांग करते हैं तो मैं उन्हें विधि देता हूं। यह एक विधि है—सब कुछ मुझ पर छोड़ दो। यह तो सबसे शक्तिशाली विधियों में से एक है। और ऐसा मत समझो कि यह सरल है; यह बहुत कठिन है, कई बार तो असंभव होता है। किसी पर सब छोड़ देना बहुत कठिन होता है।

लेकिन यदि तुम छोड़ सको तो उस समर्पण में ही तुम्हारा अहंकार समाप्त हो जाएगा; उस समर्पण में ही तुम्हारा अतीत समाप्त हो जाएगा; उस समर्पण में ही एक नया सूत्र जन्म लेता है, तुम दूसरे ही हो जाते हो। अब तक तुम अपने अहंकार के साथ जी रहे थे; अब से तुम अहंकार के बिना जीओगे, समर्पण

के पथ पर चलोगे।

तो ऐसा मत सोचो कि यह कोई विधि नहीं है। यह एक विधि है, अति मौलिक विधियों में से एक है। और यह मैं हर किसी को नहीं दे देता। यह मैं उन्हीं को देता हूं जो बड़े अहंकारी होते हैं, क्योंकि उनके लिए कोई भी विधि कठिनाई खड़ी करेगी। उनका अहंकार उसका शोषण कर लेगा। वे उससे और अहंकारी हो जाएंगे। वे इस विधि को छोड़कर और कुछ भी साध सकते हैं। लेकिन उस साधने से उनका अहंकार नष्ट नहीं होगा, बल्कि और भी तृप्त हो जाएगा। वे महान 'ध्यानी' बन जाएंगे। वे संसार को त्याग सकते हैं, लेकिन वे कुछ भी करें, उनका अहंकार मजबूत होगा।

तो जब भी मुझे लगता है कि किसी साधक का अहंकार बड़ा सूक्ष्म है और कोई भी विधि उसके लिए विषाक्त होगी, तभी मैं कहता हूं, 'सब कुछ मुझ पर छोड़ दो।' ऐसा नहीं है कि यह अंत होगा, बल्कि यह तो शुरुआत होगी। और यह उन सब के लिए सही शुरुआत होगी जो अहंकार-केंद्रित हैं। यदि वे सब कुछ मुझ पर छोड़ सकें तो मैं उन्हें दूसरी विधियां देना शुरू करूंगा—लेकिन तभी। फिर दूसरी विधियां विषाक्त सिद्ध होंगी। एक बार अहंकार न रहे तो वे विधियां उन्हें रूपांतरित कर देंगी। और यदि उनका समर्पण इतना समग्र हो कि रूपांतरित होने के लिए कुछ बचे ही न तो दूसरी किन्हीं विधियों की जरूरत ही नहीं होगी। यह भी संभव है। और यह उन्हीं के लिए संभव है जो बड़े अहंकारी हैं; केवल वही पूर्णतया समर्पण कर सकते हैं।

यह बड़ा अटपटा, विरोधाभासी लगेगा। लेकिन याद रखो, तुम वही छोड़ सकते हो जो तुम्हारे पास हो। यदि तुम्हारे पास मजबूत अहंकार हो ही नहीं, तो तुम क्या छोड़ोगे ? तुम क्या समर्पण करोगे ? यह तो एक भिखारी से उसकी सारी संपदा छोड़ने के लिए कहने जैसा है। वह राजी हो जाएगा, वह कहेगा, 'ठीक है।' लेकिन इस 'ठीक है' का कोई अर्थ नहीं है। यह एकदम व्यर्थ है, क्योंकि उसके पास खोने के लिए कुछ नहीं है। और यदि तुम्हारे पास एक मजबूत अहंकार हो, अर्थात एक केंद्रित, सुगठित अहंकार हो तो तुम उसे पूर्णतया छोड़ सकते हो, क्योंकि उसको टुकड़ों में छोड़ना कठिन होगा। वह इतना ठोस और सुगठित होगा कि उसे हिस्सों में छोड़ना कठिन होगा। या तो तुम उसे पूरा ही छोड़ सकते हो या बिलकुल नहीं छोड़ सकते। यह जीवन के अनेक विरोधाभासों में से एक है कि समर्पण के लिए पहले बड़े मौलिक अहंकार का होना जरूरी है।

तो मेरे देखे, एक उचित शिक्षा अहंकारों को मजबूत बनाएगी, एकदम दूसरी

अति पर ले जाएगी, जहां उनसे बड़ी पीड़ा पैदा हो जाए; और फिर समर्पण। तभी समर्पण संभव है।

यह मेरा अनुभव रहा है, पश्चिम से आने वाले लोगों का अहंकार पूर्व के लोगों की अपेक्षा बहुत मजबूत होता है, क्योंकि पश्चिम में समर्पण की, निष्ठा की, गुरु और शिष्य की कोई धारणा नहीं है। असल में, पाश्चात्य मन समझ ही नहीं सकता कि गुरु क्या है। और वे इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते कि कोई किसी को समर्पण कर सकता है।

पूरी पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति, सभ्यता अहंकार पर, अहंकार-तृप्ति पर आधारित है। और पश्चिमी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मानसिक रूप से स्वस्थ होने के लिए तुम्हारे पास एक मजबूत अहंकार होना चाहिए। तो सारा पश्चिमी मनोविज्ञान अहंकार को मजबूत करने में सहयोग देता है—बच्चे का अहंकार हर तरह से पुष्ट होना चाहिए, वरना वह मानसिक रूप से रुग्ण हो जाएगा।

लेकिन पूर्वीय धर्म कहते हैं कि जब तक तुम अहंकार को छोड़ न दो, तुम परम सत्य को नहीं जान सकते, तुम नहीं जान सकते कि जीवन का रहस्य क्या है। दोनों विपरीत दिखाई पड़ते हैं, लेकिन हैं नहीं।

मेरे देखे, जो पाश्चात्य प्रशिक्षण है, शुरुआत में वह संसार भर में हर व्यक्ति को मिलना चाहिए। हर व्यक्ति को एक मजबूत अहंकार दिया जाना चाहिए। पैंतीस वर्ष की आयु तक तुम्हें अपने अहंकार के शिखर तक पहुंच जाना चाहिए; पैंतीस वर्ष की आयु में वह अपने शिखर पर होना चाहिए, जितना मजबूत हो सके उतना मजबूत होना चाहिए। केवल तभी समर्पण संभव है।

तो जब भी पश्चिमी साधक मेरे पास आते हैं और मैं उन्हें कहता हूं कि वे सब मुझ पर छोड़ दें तो वे बड़े हिचकते हैं, झिझकते हैं। और यह असंभव जैसा लगता है। लेकिन कभी-कभी जब समर्पण घटता है तो वे बहुत गहरी अनुभूति को उपलब्ध होते हैं।

पूर्वीय लोगों के साथ समर्पण बहुत कठिन नहीं है। वे तैयार रहते हैं। तुम कहो, 'समर्पण करो,' वे कहेंगे, 'हां।' उनकी ओर से जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती। उनके कोई बहुत मजबूत, बहुत विकसित अहंकार नहीं होते। वे समर्पण कर सकते हैं, लेकिन वह समर्पण नपुंसक है। वह काम नहीं देगा।

तो लगभग हमेशा ऐसा होता है कि पूर्वीय व्यक्ति को मैं तत्क्षण कोई विधि पकड़ा देता हूं कि इस पर काम करो, ताकि उसके अहंकार को सहयोग मिले। और पाश्चात्य व्यक्ति को मैं हमेशा कहता हूं, 'समर्पण करो।' वे अपने भीतर उस बिंदु तक पहुंच ही चुके हैं इसलिए वे समर्पण कर सकते हैं, उनकी

हिचकिचाहट ही बताती है कि वे समर्पण कर सकते हैं। लेकिन उनका समर्पण एक संघर्ष होने वाला है, और जब यह संघर्ष होता है तो साधना बन जाता है। जब संघर्ष होता है तो उसका कुछ अर्थ होता है; वह उन्हें रूपांतरित कर देगा।

तो पहली बात कि जब मैं कहता हूं, 'सब कुछ मुझ पर छोड़ दो,' तो यह एक विधि है; और यह मैं उन्हीं लोगों को कहता हूं जिनके पास बड़े विकसित अहंकार होते हैं।

दूसरी बात—'लेकिन कई साधक इस तरह से अपने आध्यात्मिक रूपांतरण के प्रति असंतोष का अनुभव करते हैं।'

ठीक है, यही तो लोग हैं जिन्हें मैं कहता हूं, 'समर्पण करो।' वे बहुत असंतुष्ट अनुभव करते हैं। वे कुछ करना चाहते हैं, समर्पण करना नहीं चाहते। मैं जानता हूं कि वे असंतुष्ट होंगे, क्योंकि उनका अहंकार प्रतिरोध करेगा; वह हर तरह से समर्पण न करने का प्रयास करेगा; लेकिन ऐसा होगा ही। उन्हें इस असंतोष से गुजरना पड़ेगा और उन्हें समझना पड़ेगा कि सब कुछ मुझ पर छोड़ देना तो बस एक शुरुआत है। यदि वे यह भी नहीं कर सकते तो अभी मैं उन्हें कोई विधि नहीं दूंगा। वे या तो मुझे छोड़ सकते हैं या सब कुछ मुझ पर छोड़ सकते हैं। कोई और विकल्प नहीं है। एक बार मैंने किसी से कह दिया कि 'सब कुछ मुझ पर छोड़ दो,' तो मैं उसे दूसरी कोई विधि नहीं दूंगा।

मैं जानता हूं कि यह कठिन और दुष्कर होगा, लेकिन इससे गुजरना ही है। जितना कठिन हो, जितना दुष्कर हो, उतना ही बेहतर है, क्योंकि इसका अर्थ है कि उसका अहंकार बहुत मजबूत है और वह संघर्ष कर रहा है। उसे एक-न-एक दिन आना पड़ेगा—मेरे पास या किसी और के पास, इसका सवाल नहीं है—और उसे समर्पण करना पड़ेगा।

गुरु का सवाल नहीं है; समर्पण का सवाल है। तुम कहां समर्पण करते हो इसका कोई महत्त्व नहीं है। तुम एक पत्थर के बुद्ध को समर्पण कर सकते हो। वह भी काम देगा। समर्पण तुम्हें रूपांतरित कर देता है। उसका अर्थ है अपने अहंकार को एक ओर रख देना, स्वयं को निर्भार कर लेना; पहली बार जीना; अतीत से नहीं बल्कि वर्तमान में जीना--ताजे, युवा और निर्भार होकर।

और तीसरी बात—'इसमें, कृपया समझाएं कि ये साधक किस प्रकार स्वयं को धोखा दे रहे हैं।'

वे स्वयं को धोखा दे सकते हैं। वे मुझसे कह सकते हैं, 'हां, हम सब आप पर छोड़ते हैं,' और सब बचाए रख सकते हैं। वे स्वयं को धोखा दे सकते हैं कि उन्होंने सब समर्पित कर दिया और अपने तरीके से चलते रह सकते हैं।

समर्पण कभी आंशिक नहीं हो सकता, केवल समग्र ही हो सकता है; और फिर तुम अपनी धारणाएं, अपनी पसंद और नापसंद नहीं बचा सकते।

ऐसा कुछ ही दिन पहले हुआ। एक आदमी मेरे पास आया और बोला, 'मैं सब आप पर छोड़ दूंगा। आप जो भी कहेंगे, मैं करूंगा।' मैंने उसे कहा, 'जरा धीरे-धीरे दोहराओ।' 'आप जो भी कहेंगे, मैं करूंगा,' उसने दोहरा दिया। मैंने उसे और भी धीरे-धीरे दोहराने को कहा। वह थोड़ा परेशान हो गया और बोला, 'क्यों ?' और तब उसे खयाल आया कि मैं धीरे-धीरे दोहराने को क्यों कह रहा था। वह बोला, 'शायद आप सही हैं। मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि सब आप पर छोड़ देना कठिन है और आप जो कहें उस सबको मानना भी कठिन है।' तो मैंने उसे कहा कि इसे सशर्त बना लो, इसे निश्चित कर लो ताकि तुम बदल न सको। उसने कहा, 'ठीक, जो भी मैं चाहूं, मुझे चुनने की स्वतंत्रता दें।'

इसी तरह तुम धोखा दे सकते हो। भीतर तुम मालिक बने रहते हो; तुम चुनते रहते हो कि क्या नहीं करना है। और जैसा अक्सर होता है, तुम भी चुनोगे गलत ही होगा। क्योंकि जो मन चुन रहा है वह गलत है, नहीं तो मेरे पास आने की कोई जरूरत ही न होती। जब मैं कहता हूं समर्पण करो तो इसका अर्थ है अब तुम नहीं चुनोगे, अब मैं चुनूंगा और तुम अनुसरण करोगे। और यदि तुम पूरी तरह अनुसरण कर सको तो वह दिन दूर नहीं है जब मैं कहूंगा, 'अब कोई जरूरत नहीं है। अब तुम चुन सकते हो।'

तुम्हें मिटना है—सतह को, झूठे अहंकार को मिटना है। फिर तुम्हारी अपनी सत्ता अस्तित्व में आती है। मैं हमेशा तुम्हें अपने पीछे नहीं चलाऊंगा। यह कोई बड़ा सुखदायी काम नहीं है। जब तुम्हारा अहंकार नहीं रहता तो तुम्हारा अपना गुरु, आंतरिक गुरु अस्तित्व में आता है। बाह्य गुरु और कुछ नहीं आंतरिक गुरु का प्रतिनिधि ही है। एक बार आंतरिक गुरु आ जाए तो बाह्य की आवश्यकता नहीं रहती। और तुम्हारा गुरु स्वयं ही तुम्हें कहेगा, 'अब अपना अनुसरण करो। अकेले चलो। अब तुम्हें किसी के मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है, आंतरिक मार्गदर्शन शुरू हो गया है। अब तुम्हारे पास अपना अंतर्प्रकाश है। तुम उसके द्वारा देख सकते हो। अब वह तुम्हारा पथ-प्रदर्शक होगा।'

लेकिन अभी, जैसे तुम हो, यह संभव नहीं है। तुम्हारे पास कोई प्रकाश नहीं है। तुम देख नहीं सकते। और तुम्हारा मन जहां भी ले जाएगा वह गलत ही होगा। जन्मों-जन्मों से यह मन तुम्हें चलाता रहा है और हमेशा तुम्हें बंधे-बंधाए ढर्रों में से ले जाता रहा है। इसकी पुरानी आदतें हैं और उन्हीं के अनुसार यह तुम्हें चलाता रहा है। मन एक यंत्र है। इस यंत्रवत्ता में अंतराल

पैदा करने के लिए समर्पण चाहिए। यदि तुम कुछ दिन के लिए भी किसी को समर्पण कर सको तो तुम्हारे वर्तमान और अतीत के बीच एक अंतराल आ जाएगा। एक नई शक्ति तुममें प्रवेश कर जाएगी। अब तुम अतीत से सातत्य नहीं रख सकते; जैसे तुम हमेशा से रहते आए हो, अब वैसे नहीं रह सकते। एक परिवर्तन होगा। इसी अंतराल का अर्थ है समर्पण।

लेकिन तुम धोखा दे सकते हो। तुम कह सकते हो, 'हां, मैं समर्पण करता हूं' और हो सकता है तुमने समर्पण न किया हो। या हो सकता है तुम सोचते हो कि तुमने समर्पण कर दिया है, पर अचेतन रूप से तुम संघर्ष कर रहे हो। केवल समर्पण में ही नहीं, बल्कि हर जगह जहां 'लेट गो' की, अपने को छोड़ने की जरूरत होती है, हम संघर्ष करते हैं।

पश्चिम में यौन के विषय पर बड़ी शोध चलती है, क्योंकि लोग गहन काम-शिखर में कम सक्षम होते जा रहे हैं। वे यौन में तो उतरते हैं लेकिन उससे कोई आनंद नहीं मिलता। यह बड़ा उबाने वाला कृत्य हो गया है। वे बस परेशान होते हैं, कमजोर अनुभव करते हैं। और फिर यह एक नित्यकर्म रह जाता है। उन्हें पता ही नहीं होता कि करना क्या है। काम-शिखर में जो महत्त्वपूर्ण है, वह है गहन आनंद। और यदि वही न मिले तो सब व्यर्थ है और निरर्थक है और हानिकारक भी है।

मनोविज्ञान की कई शाखाएं इस प्रश्न पर खोज कर रही हैं—'मनुष्य को क्या हो गया है ? वह यौन में काम-शिखर को उपलब्ध क्यों नहीं होता ? इतना असंतोष क्यों है ?'

सभी शोधकर्ता यही इंगित करते हैं कि इसका कारण है मनुष्य समर्पण नहीं कर पाता, इसीलिए वह काम-शिखर को उपलब्ध नहीं हो पाता। प्रेम करते समय, गहन संभोग के क्षण में भी तुम्हारा मन नियंत्रण करता रहता है। तुम नियंत्रण करते रहते हो। तुम अपने को छोड़ते नहीं। तुम छोड़ने से डरते हो, क्योंकि यदि तुम यौन-ऊर्जा को अनियंत्रित होने दो तो तुम्हें पता नहीं कि वह तुम्हें कहां ले जाएगी। तुम पागल हो सकते हो, तुम मर भी सकते हो। यही भय है। तो तुम नियंत्रण कर सकते हो। तुम अपने शरीर को नियंत्रित करते रहते हो।

मन का यह नियंत्रण पूरे शरीर को ऊर्जा का एक बहाव नहीं बनने देता। फिर यौन एक स्थानीय प्रक्रिया बन जाता है, पूरा शरीर उसमें संलग्न नहीं होता, पूरा शरीर एक अंतर्नृत्य में भाग नहीं लेता; और आनंद का क्षण चूक जाता है। तुम बस ऊर्जा खो देते हो और पाते कुछ भी नहीं, विक्षोभ ही होता है।

तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तुम तब तक काम-शिखर उपलब्ध नहीं कर पाओगे, जब तक गहन 'अनियंत्रण' में न होओ; जब तक मन न मिट जाए और अहंकार न मिट जाए; जब तक शरीर अपनी ऊर्जा, अपने वेग द्वारा नियंत्रण न ले ले और अपने अचेतन स्रोतों द्वारा प्रवाहित न होने लगे; जब तक 'तुम' न मिट जाओ। वह आनंद तुम्हें उस परम आनंद की झलक दे सकता है जो परमात्मा के प्रति, अस्तित्व के प्रति तुम्हारे अहंकार के संपूर्ण समर्पण से घटित होता है।

समाधि–समस्त योग और तंत्र का जो परम लक्ष्य है–एक गहन संभोग है प्रकृति के साथ, अस्तित्व के साथ। गुरु तो बस तुम्हें उस स्थिति में ले आने का प्रयास कर रहा है जहां तुम कम से कम अपने अहंकार का समर्पण कर सको। फिर तुम्हारे और तुम्हारे गुरु के बीच एक गहन आनंद घटित होगा। जहां भी 'अनियंत्रण' होता है, आनंद घटता है–यह नियम है।

तो यदि तुम किसी गुरु के प्रति समर्पण कर सकते हो तो किसी की मत सुनो। यदि सारा संसार भी कहे कि यह गुरु गलत है तो मत सुनो। यदि तुम समर्पण कर सकते हो तो यह गुरु सही है। उसके द्वारा तुम एक आनंदपूर्ण क्षण उपलब्ध कर पाओगे। और यदि सारा संसार भी कहे कि यह गुरु सही है और तुम उसको समर्पण न कर पाओ तो वह तुम्हारे लिए बेकार है। तो जहां भी तुम्हें समर्पण का भाव उठे, वहीं तुम्हारा गुरु है।

ऐसी जगह खोजो, ऐसे व्यक्ति को खोजो जिसकी उपस्थिति में तुम समर्पण कर सको, जिसकी उपस्थिति में तुम एक क्षण के लिए भी अपने मन को छोड़ सको। एक बार बाहर से यह बल तुममें प्रवेश कर जाए तो तुम्हारा मार्ग बदल जाएगा, तुम्हारा जीवन एक नयी दिशा ले लेगा।

तुम स्वयं को धोखा दे सकते हो—तुम सोचते रह सकते हो कि तुमने समर्पण कर दिया है, लेकिन भीतर से तुम अच्छी तरह जानते हो कि तुमने समर्पण नहीं किया है। और याद रखो—तुम गुरु को धोखा नहीं दे सकते; वह जानता है। और जब तक वास्तव में ही समर्पण नहीं हो जाता वह आग्रह करता रहेगा। तुम तरकीब कर सकते हो, कोई चाल चल सकते हो, लेकिन गुरु को धोखा नहीं दे सकते। तुम अपना सिर उसके चरणों में रख सकते हो, लेकिन उसका कोई अर्थ नहीं होगा। हो सकता है यह बस एक झूठा भाव हो, तुम बिलकुल भी न झुक रहे होओ। लेकिन यदि झुकना सच में ही हो जाए तो गुरु काम कर सकता है।

तो जब भी मैं कहता हूं, 'समर्पण करो,' या 'मुझ पर छोड़ दो और मैं देख

लूंगा,' तो मेरा यही तात्पर्य है। मैं जो भी कहता हूं मेरा बिलकुल वही तात्पर्य होता है। मैं तुम्हारे भीतर एक अंतराल पैदा करना चाहता हूं, अतीत से एक अलगाव पैदा करना चाहता हूं। एक बार अंतराल आ जाए तो देर-अबेर तुम अपने पैरों पर चल पाओगे। लेकिन उससे पहले, यदि तुम अपने आप चले तो वही अतीत की कहानी दोहराते रहोगे। कुछ नया संभव नहीं होगा। नए के लिए नए पथ पर चलाने के लिए कुछ बाहर से तुममें प्रवेश करना चाहिए।

अंतिम प्रश्न :

आपने कहा कि जीसस को पता नहीं था कि पृथ्वी गोल है। जो ईसाई यह मानते हैं कि जीसस परमात्मा थे, उनको यह बड़ा अजीब लगता है। क्या ऐसा संभव नहीं है कि जीसस जैसा बुद्ध पुरुष, जिसे गुह्य विज्ञान का ज्ञान हो उसे ग्रहों और ब्रह्मांड और आकाशीय तत्त्वों के अंतर्संबंध का खगोलीय और नक्षत्रीय ज्ञान भी हो ? कृपया समझाएं।

नहीं, जीसस का उसमें कोई रस नहीं था। जब जीसस ने कहा कि पृथ्वी चपटी है तो वह उसी जानकारी का उपयोग कर रहे थे जो उन दिनों प्रचलित थी। उन्हें इसमें कोई रस नहीं था कि पृथ्वी चपटी है या गोल है; यह उनके लिए निरर्थक था। उन्हें उन लोगों में ज्यादा रस था जो 'चपटी' या गोल' पृथ्वी पर रह रहे थे।

यह बात समझने जैसी है। जीसस के लिए इन बातों की चर्चा करना बिलकुल व्यर्थ है। इससे क्या अंतर पड़ता है ? उदाहरण के लिए भूगोल की पुस्तकों से तुम जानते हो कि पृथ्वी गोल है। यदि तुम्हारी भूगोल की पुस्तकें यह सिखातीं कि पृथ्वी चपटी है, जैसे वे पहले सिखाती थीं, तो उससे तुम्हें क्या फर्क पड़ जाएगा ? क्या तुम कोई बेहतर आदमी हो जाओगे ? क्या तुम 'चपटी' पृथ्वी पर 'गोल' पृथ्वी पर ज्यादा ध्यानी हो जाओगे ? इससे तुम्हारी आत्मा में और तुम्हारी चेतना की गुणवत्ता में क्या अंतर पड़ेगा ? यह असंभव है।

जीसस को तुम्हारी चेतना में रस था और वह व्यर्थ में उन चीजों पर विवाद नहीं करते जो असार हैं। केवल प्रज्ञाहीन लोग बेकार की चीजों में घिसटते रहते हैं। यदि तुम जीसस को बताते कि पृथ्वी गोल है तो वह हां कह देते। उन्हें इससे कोई फर्क न पड़ता, क्योंकि इसमें उनका रस ही नहीं है। यह प्रचलित धारणा थी कि पृथ्वी चपटी है। और वास्तव में, साधारण मन के लिए, पृथ्वी अभी भी चपटी है। चपटी दिखाई पड़ती है। गोलाई तो एक वैज्ञानिक तथ्य है,

लेकिन जीसस कोई वैज्ञानिक नहीं थे।

उदाहरण के लिए, मैं जानता हूं यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि सूर्य न कभी उगता है न अस्त होता है। पृथ्वी घूम रही है, सूर्य नहीं घूम रहा। लेकिन फिर भी मैं 'सूर्यास्त' और 'सूर्योदय' शब्दों का उपयोग करता हूं। सूर्योदय मूलतः गलत है। शब्द ही गलत है, क्योंकि सूर्य कभी उदय ही नहीं होता। सूर्यास्त गलत है, सूर्य कभी 'अस्त' नहीं होता। तो दो हजार वर्ष बाद कोई कह सकता है कि यह व्यक्ति संबुद्ध नहीं था क्योंकि वह कहता था 'सूर्य उदय होता है'–'सूर्योदय', 'सूर्यास्त'। क्या उसे ये छोटी-छोटी बातें भी नहीं पता थीं ?

लेकिन यदि मुझे हर शब्द बदलना पड़े तो मैं व्यर्थ संघर्ष करूंगा और उससे किसी की सहायता नहीं होगी। जीसस ने तो बस प्रचलित जानकारी का उपयोग किया, और प्रचलित धारणा यह थी कि पृथ्वी चपटी है। उन्हें इससे कोई मतलब न था। यदि आज वे यहां होते तो कहते कि पृथ्वी गोल है।

लेकिन यह भी एकदम वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि पृथ्वी बिलकुल गोल नहीं है। अब वे कहते हैं कि यह बिलकुल गोल नहीं है, अंडे जैसी है। अंडे जैसा आकार है। लेकिन कौन जानता है ? कल हो सकता है वे बदल जाएं और कहें कि ऐसा नहीं है। विज्ञान तो बदलता जाता है, क्योंकि जैसे-जैसे यह ज्यादा सही होता है, ज्यादा जानकारी उपलब्ध करता है, ज्यादा तथ्य चलते हैं, ज्यादा प्रयोग होते हैं, तो चीजें बदल जाती हैं। लेकिन जीसस या बुद्ध जैसे व्यक्ति को इन बातों से कोई प्रयोजन नहीं है।

एक बात याद रखो—विज्ञान की तथ्यों में रुचि है, धर्म का सत्य में रस है। तथ्यों में उसका रस नहीं है, सत्य में रस है। तथ्य तो विषयों के संबंध में होते हैं, सत्य तुम्हारे संबंध में तुम्हारी चेतना के संबंध में है। तो हर बुद्ध पुरुष को तथ्यों के बारे में प्रचलित जानकारी का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन जीसस या बुद्ध के बारे में तुम्हें उससे निर्णय नहीं लेना चाहिए। तुम गलत ढंग से निर्णय ले रहे हो। उनके बारे में निर्णय उसी से लिया जा सकता है जो उन्होंने सत्य के संबंध में, मानव चेतना के आंतरिक सत्य के संबंध में कहा है। उस संबंध में वे हमेशा बिलकुल सही होते हैं, चाहे उनकी भाषाएं अलग हों।

बुद्ध एक भाषा में बोलते हैं, जीसस अलग भाषा में बोलते हैं, कृष्ण किसी और भाषा में बोलते हैं। वे अलग-अलग जानकारी का उपयोग करते हैं, अलग-अलग विधियों, उपायों का प्रयोग करते हैं, लेकिन उनकी देशना का केंद्र बिंदु एक ही है। और वह है–यदि तुम मुझे कहने दो तो–कि पूर्ण बोध को कैसे उपलब्ध हुआ जाए।

बोध सभी बुद्ध पुरुषों की मौलिक देशना है। वे कई गाथाओं, विधियों, उपायों प्रतीकों, पुराण-कथाओं का उपयोग करते हैं, पर वे सब असंगत हैं। तुम चाहो तो उन्हें बाहर छोड़ दो, उन्हें एक ओर रख दो, लेकिन मूल केन्द्र को बचा लो। सभी जाग्रत पुरुषों का मूल केंद्र बोध ही है।

तो जीसस अपने शिष्यों को बताते हैं कि कैसे और सजग हुआ जाए, मूर्च्छित नहीं हुआ जाए, सपनों में न खोएं, बल्कि कैसे होशपूर्ण, बोधपूर्ण हुआ जाए।

वह एक गाथा कहा करते थे। वह कहते थे एक बार ऐसा हुआ, एक बड़ा भूपति, एक बड़ा जमींदार, एक बड़ा धनी व्यक्ति दूर की यात्रा पर गया। उसने अपने नौकरों से कहा कि वे सदैव सजग रहें, क्योंकि वह किसी भी दिन, किसी भी क्षण वापस आ जाएगा। और जब वह वापस आए, घर उसके स्वागत के लिए तैयार रहे। वह किसी भी क्षण वापस आ सकता था। नौकरों को सजग रहना पड़ता, वे सो भी नहीं सकते थे। रात को भी उन्हें सजग रहना पड़ता, क्योंकि वह किसी भी क्षण आ सकता था।

जीसस कहा करते थे कि तुम्हें हर क्षण सजग रहना है, क्योंकि परमात्मा किसी भी क्षण तुममें उतर सकता है। हो सकता है तुम चूक जाओ। यदि परमात्मा तुम्हारे द्वार खटखटाए और तुम गहरी नींद में सोए हुए हो तो तुम चूक सकते हो। तुम्हें सजग रहना है। अतिथि किसी भी क्षण आ सकता है। और अतिथि तुम्हें पहले से नहीं बताएगा कि वह आ रहा है।

जीसस कहते थे कि उस गृहपति के नौकरों की भांति सतत सजग रहो, जागरूक, प्रतीक्षारत, साक्षी रहो; क्योंकि परमात्मा किसी भी क्षण तुममें प्रवेश कर सकता है। और यदि तुम सजग नहीं हो, वह आएगा, द्वार खटखटाएगा और वापस चला जाएगा। और हो सकता है फिर वह क्षण जल्दी न आए; कोई नहीं जानता कि कितने जन्म लग जाएं जब परमात्मा दोबारा तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे। और यदि तुम सोने के आदी हो गए हो तो हो सकता है कि वह दस्तक तुम कई बार पहले भी चूके हो और बार-बार चूकते रहो।

सजग रहो। यही मूल केंद्र है। बाकी सब तो बस केंद्र तक पहुंचने के लिए उपयोगी होता है। तो बस यह कहने से कि पृथ्वी चपटी है, जीसस प्रज्ञाहीन नहीं हो जाते। और बस यह जानने से कि पृथ्वी गोल है, तुम प्रज्ञावान नहीं हो जाते। यह इतना आसान नहीं है।

आज इतना ही।

75

विपरीत ध्रुवों में लय की खोज

सूत्र

102. अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए।

103. अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के, जानने के आरंभ में ही, जानो।

104. हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।

105. सत्य में रूप अविभक्त हैं। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा अपना रूप अविभक्त हैं। दोनों को इसी चेतना से निर्मित जानो।

महाकवि वाल्ट व्हिटमैन ने कहा है, 'मैं अपना ही विरोध करता हूं क्योंकि मैं विशााल हूं। मैं अपना ही विरोध करता हूं क्योंकि मैं सब विरोधों को समाहित करता हूं, क्योंकि मैं सब कुछ हूं।'

शिव के संबंध में, तंत्र के संबंध में भी यही कहा जा सकता है। तंत्र है विरोधों के बीच, विरोधाभासों के बीच लय की खोज। विरोधाभासी, विरोधी दृष्टिकोण तंत्र में एक हो जाते हैं। इसे गहराई से समझना पड़ेगा, तभी तुम समझ पाओगे कि इसमें इतनी विरोधाभासी, इतनी भिन्न विधियां क्यों हैं।

जीवन है विरोधों के बीच एक लयबद्धता—पुरुष और स्त्री, विधायक और निषेधात्मक, दिन और रात, जन्म और मृत्यु। इन दो विरोधों के बीच जीवन की धारा बहती है। किनारे विरोधी ध्रुव हैं। वे विरोधाभासी दिखाई पड़ते हैं, पर वे हैं सहयोगी। विरोध का वह आभास झूठ है। जीवन, विरोधी ध्रुवों के बीच लय के बिना नहीं रह सकता। और जीवन में सब समाहित है।

तंत्र न इसका है, न उसका है; तंत्र सबका है। असल में तंत्र का अपना

कोई दृष्टिकोण ही नहीं है। जितने भी दृष्टिकोण हो सकते हैं सब इसमें समाहित हैं। यह विशाल है। तंत्र अपना ही विरोध कर सकता है क्योंकि इसमें सब समाहित है; यह आंशिक नहीं है, पूर्ण है। इसीलिए सुंदर है।

सभी आंशिक दृष्टिकोण असुंदर होंगे ही; वे सुंदर नहीं हो सकते, क्योंकि विरोधी ध्रुवों को समाहित नहीं करते। हो सकता है वे तर्कयुक्त और तर्कसंगत हों, लेकिन जीवंत नहीं हो सकते। जहां भी जीवन है, अपने विरोधी ध्रुव के कारण है। जीवन अकेला नहीं हो सकता, विरोधी ध्रुव अनिवार्य है।

ग्रीक पुराणों में दो देवता एकदम विपरीत हैं : अपोलो और डायोनीशियस। अपोलो व्यवस्था का, अनुशासन का, पुण्य का, आदर्श का, सभ्यता का देवता है; और डायोनीशियस अव्यवस्था, अराजकता, स्वतंत्रता और प्रकृति का देवता है। दोनों एकदम विपरीत हैं। लगभग सभी धर्म अपोलोनियन दृष्टिकोण पर आधारित हैं। वे तर्क में विश्वास करते हैं, व्यवस्था में विश्वास करते हैं, पुण्य में विश्वास करते हैं, साधना में, नियंत्रण में विश्वास करते हैं। असल में वे अहंकार में विश्वास करते हैं।

लेकिन तंत्र बुनियादी रूप से भिन्न है—इसमें दोनों समाहित हैं। इसमें डायोनीशियन दृष्टिकोण भी सम्मिलित है। यह प्रकृति में विश्वास करता है, अराजकता में विश्वास करता है, हंसने और नाचने और गाने में विश्वास करता है; यह केवल गंभीर ही नहीं है, यह दोनों है। यह गंभीर और गैर-गंभीर दोनों है।

नीत्शे अपने एक पत्र में लिखता है, 'मैं केवल एक नाचते हुए परमात्मा में विश्वास कर सकता हूं।'

वह कोई नाचता हुआ परमात्मा नहीं खोज पाया। यदि वह शिव के विषय में कुछ जानता होता तो उसके जीवन की पूरी कहानी ही बिलकुल दूसरी होती। शिव नाचते हुए परमात्मा हैं। नीत्शे केवल ईसाई परमात्मा के विषय में जानता था। वही एकमात्र धारणा उसे पता थी, जो बहुत गंभीर है।

कई बार तो ईसाई परमात्मा की गंभीरता बड़ी अटपटी, बड़ी बचकानी लगती है, क्योंकि उसमें विरोधी ध्रुव का इनकार है। तुम ईसाई परमात्मा की नाचते हुए कल्पना नहीं कर सकते। असंभव ! नाचना तो बड़ा लौकिक मालूम होता है। और तुम ईसाई परमात्मा की हंसते हुए कल्पना कर सकते—या कि कर सकते हो ? यह असंभव है। ईसाई परमात्मा हंस नहीं सकता। हंसना तो बड़ा लौकिक लगेगा। ईसाई परमात्मा गंभीरता की आत्मा है, और नीत्शे उसमें विश्वास नहीं

कर सका।

और मैं सोचता हूं कि ऐसे परमात्मा में कोई भी विश्वास नहीं कर सकता, क्योंकि वह आधा है, पूरा नहीं है। बिली ग्राहम जैसे लोग ही उसमें विश्वास कर सकते हैं। बिली ग्राहम ने बड़ी गंभीरता से कहीं कहा है कि जब तुम अश्लील पत्रिकाएं पढ़ रहे हो तो याद रखना परमात्मा तुम्हें देख रहा है। यह तो मूढ़ता लगती है। तुम अश्लील पत्रिका पढ़ रहे हो और परमात्मा तुम्हें अश्लील पत्रिका पढ़ते हुए देख रहा है ! यह धारणा मूढ़तापूर्ण है। यह मूढ़तापूर्ण है, क्योंकि इसमें विरोधी ध्रुव समाहित नहीं है।

यदि विरोधी ध्रुव का निषेध हो जाए तो तुम मूढ़ और मुर्दा हो जाओगे। लेकिन यदि तुम बिना किसी विरोधाभास के विरोधी ध्रुवों में गति कर सको, यदि तुम गंभीर हो सको और हंस भी सको, यदि तुम बुद्ध की तरह बैठ सको और कृष्ण की तरह नाच सको और इन दोनों के बीच कोई स्वाभाविक विरोध न हो—तुम आसानी से बुद्ध से कृष्ण होने की ओर गति कर सको—यदि तुम ऐसा कर सको तो तुम जीवंत रहोगे। और यदि तुम यह कर सको तो तुम तांत्रिक होओगे, क्योंकि तंत्र बुनियादी खोज है उस लयबद्धता की जो विरोधों के बीच होती है, उस धारा की जो विरोधों के बीच बहती है।

तो तंत्र हर संभव विधि पर कार्य किए चला जाता है। तंत्र किसी एक के लिए नहीं है, सबके लिए है। तंत्र से हर तरह का मन तरंगायित हो सकता है। हर तरह का मन ईसाई नहीं हो सकता, हर तरह का मन बौद्ध नहीं हो सकता। एक विशेष तरह का मन बुद्ध से आकर्षित होगा, एक विशेष तरह का मन जीसस से, एक विशेष तरह का मन मोहम्मद से। शिव में सब समाहित है। शिव हर तरह के मन को आकर्षित कर सकते हैं। इसमें समग्र को, संपूर्ण को समाहित किया गया है, यह कोई आंशिक दृष्टिकोण नहीं है।

यही कारण है कि तंत्र का कोई संप्रदाय नहीं है। तुम संपूर्ण के आस-पास कोई संप्रदाय खड़ा नहीं कर सकते, अंश के आस-पास ही संप्रदाय खड़ा कर सकते हो। संपूर्ण को तो तुम जी सकते हो, लेकिन कोई संप्रदाय नहीं बना सकते। संप्रदाय तो तभी बन सकता है जब तुम किसी चीज के पक्ष में होओ और किसी चीज के विपक्ष में। यदि दोनों ही विरोधी ध्रुव समाहित हों तो तुम सांप्रदायिक मन कैसे रख सकते हो ? तंत्र सारभूत धर्म है, कोई संप्रदाय नहीं। इसीलिए इतनी विधियां हैं।

लोग मेरे पास आकर पूछते रहते हैं, 'इतनी विधियां हैं और एक विधि दूसरी का विरोध करती है ?'

हां, एक विधि दूसरी विधि का विरोध करती है क्योंकि ये किसी विशेष मन के लिए नहीं हैं। इन एक सौ बारह विधियों में हर तरह के लोगों को, हर तरह के संभावित लोगों को समाहित कर लिया गया है। तो कृपया सारी विधियों की ओर ध्यान मत दो, नहीं तो तुम उलझन में पड़ोगे। तुम तो बस वही ढूंढ़ लो जो तुम्हें रास आए, जो तुम्हें आकर्षित करे। उसकी ओर तुम एक गहन समानुभूति, एक आकर्षण अनुभव करोगे; उसके तुम प्रेम में पड़ जाओगे। फिर बाकी एक सौ ग्यारह विधियों को भूल जाओ। उन्हें भूल ही जाओ। तुम तो बस उसी को पकड़े रहो जो तुम पर काम करे।

इन एक सौ बारह विधियों में केवल एक विधि तुम्हारे लिए है। यदि तुम कई विधियों का उपयोग करोगे तो उलझन में पड़ोगे, क्योंकि इतनी विधियों के उपयोग के लिए तुम्हें बड़े विशाल मन की जरूरत पड़ेगी जो विरोधाभासों को पचा सके। अभी तो ऐसा संभव नहीं है। शायद किसी दिन संभव हो जाए। तुम इतने समग्र, इतने संपूर्ण हो सकते हो कि कई विधियों के साथ एक साथ यात्रा कर सको। फिर कोई समस्या नहीं होगी। लेकिन फिर कोई जरूरत भी न रहेगी ! अभी जरूरत है। तो अपनी विधि खोज लो।

तुम्हें कौन सी विधि रास आएगी यह जानने में मैं तुम्हारा सहयोगी हो सकता हूं। और यदि तुम्हें लगे कि जो विधि तुम्हें रास आ रही है, दूसरी विधियां उसके विरोध में हैं, तो उनके बारे में मत सोचो। वे विरोधाभासी हैं। लेकिन वे तुम्हारे लिए नहीं हैं। कम से कम अभी तो वे तुम्हारे लिए नहीं हैं। किसी दिन यह संभव हो सकता है, जब तुम्हारे भीतर अहंकार न रहे, कि तुम बिना किसी समस्या के विरोधी ध्रुव पर जा सको। अहंकार समस्या खड़ी करता है। वह एक जगह रुक जाता है, किसी चीज को पकड़ लेता है; अहंकार तरल नहीं है, बह नहीं सकता। और शिव हर दिशा में बह रहे हैं।

तो याद रखो, इन विधियों के बारे में सोचने मत लगो कि यह विधि उसके विपरीत है। शिव कोई व्यवस्था खड़ी करने की कोशिश नहीं कर रहे हैं, वह कोई व्यवस्थापक नहीं हैं। शिव बिना किसी व्यवस्था के सब विधियां दे रहे हैं। उन्हें व्यवस्था में नहीं बांधा जा सकता, क्योंकि व्यवस्था का अर्थ है विरोधाभासों का, विरोधों का निषेध। और यहां सभी विरोधी ध्रुव समाहित हैं। यह अपोलो और डायोनीशियस दोनों है; गंभीर और हंसता हुआ दोनों है; अंतरस्थ और पार दोनों है; लौकिक और अलौकिक दोनों है; क्योंकि यह सब कुछ है।

अब हम विधियों में प्रवेश करें।

भीतर तथा बाहर आत्मा की कल्पना करो

पहली विधि :

अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए।

पहले तो तुम्हें समझना है कि कल्पना क्या है। आजकल बहुत ही निंदित शब्द है यह। जैसे ही 'कल्पना' शब्द सुनते हो, तुम कहते हो यह तो व्यर्थ है, हम कुछ वास्तविकता चाहते हैं, काल्पनिक नहीं। लेकिन कल्पना तुम्हारे भीतर की एक वास्तविकता है, एक क्षमता है, एक संभावना है। तुम कल्पना कर सकते हो, इससे पता चलता है कि तुम्हारे प्राण कल्पना करने में सक्षम हैं। यह क्षमता एक वास्तविकता है। इस कल्पना के द्वारा तुम स्वयं को नष्ट कर सकते हो और स्वयं को निर्मित भी कर सकते हो। यह तुम पर निर्भर करता है। कल्पना बहुत शक्तिशाली क्षमता है। यह छिपी हुई शक्ति है।

कल्पना क्या है ? यह किसी धारणा में इतना गहरे चले जाना है कि वह धारणा ही वास्तविकता बन जाए। उदाहरण के लिए, तुमने एक विधि के बारे में सुना होगा जो तिब्बत में प्रयोग होती है। वे उसे ऊष्मा-योग कहते हैं। सर्द रात है, बर्फ गिर रही है और तिब्बत लामा खुले आकाश के नीचे नग्न खड़ा हो जाएगा। तापमान शून्य से नीचे है। तुम तो मरने ही लगोगे, जम जाओगे। लेकिन लामा एक विधि का अभ्यास कर रहा है। विधि यह है कि वह कल्पना कर रहा है कि उसका शरीर एक लपट है और उसके शरीर से पसीना निकल रहा है। और सच ही उसका पसीना बहने लगता है जब कि तापमान शून्य से नीचे है और खून तक जम जाना चाहिए। उसका पसीना बहने लगता है। क्या हो रहा है ? यह पसीना वास्तविक है, उसका शरीर वास्तव में गर्म है, लेकिन यह वास्तविकता कल्पना से पैदा की गई है।

तुम कोई सरल सी विधि करके देखो, ताकि तुम महसूस कर सको कि कल्पना से वास्तविकता कैसे पैदा की जा सकती है। जब तक तुम यह महसूस न कर लो, तुम इस विधि का उपयोग नहीं कर सकते। जरा अपनी धड़कन को गिनो। बंद कमरे में बैठ जाओ और अपनी धड़कन को गिनो। और फिर पांच मिनट के लिए कल्पना करो कि तुम दौड़ रहे हो। कल्पना करो कि तुम दौड़ रहे हो, गर्मी लग रही है, तुम गहरी श्वास ले रहे हो, तुम्हारा पसीना निकल रहा है और तुम्हारी धड़कन बढ़ रही है। पांच मिनट यह कल्पना करने के बाद फिर अपनी धड़कन गिनो। तुम्हें अंतर पता चलेगा—तुम्हारी धड़कन

बढ़ जाएगी। यह तुमने कल्पना करके ही कर लिया, तुम वास्तव में दौड़ नहीं रहे थे।

प्राचीन तिब्बत में बौद्ध भिक्षु कल्पना द्वारा ही शारीरिक अभ्यास किया करते थे। और वे विधियां आधुनिक मनुष्य के लिए बड़ी सहयोगी हो सकती हैं, क्योंकि सड़कों पर दौड़ना अब कठिन है, दूर तक घूमने जाना कठिन है, कोई निर्जन जगह खोज पाना कठिन है। तुम बस अपने कमरे में फर्श पर लेट कर एक घंटे के लिए यह कल्पना कर सकते हो कि तुम तेजी से चल रहे हो। कल्पना में ही चलते रहो। और अब तो चिकित्सा विशेषज्ञ कहते हैं कि उसका प्रभाव सच में चलने के समान ही होगा। एक बार तुम अपनी कल्पना से लयबद्ध हो जाओ तो शरीर काम करने लगता है।

तुम पहले ही कितने ऐसे काम कर रहे हो जो तुम्हें पता नहीं तुम्हारी कल्पना कर रही है। कई बार तुम कल्पना से ही कई बीमारियां पैदा कर लेते हो! तुम कल्पना करते हो कि फलां बीमारी, जो संक्रामक है, सब ओर फैली हुई है। तुम ग्रहणशील हो गए, अब पूरी संभावना है कि तुम बीमार पड़ोगे। और वह बीमारी वास्तविक होगी। लेकिन वह कल्पना से निर्मित हुई है। कल्पना एक शक्ति है, एक ऊर्जा है और मन उससे चलता है। और जब मन उससे चलता है तो शरीर अनुसरण करता है।

अमेरिका के एक यूनिवर्सिटी होस्टल में एक बार ऐसा हुआ कि चार विद्यार्थी सम्मोहन का प्रयोग कर रहे थे। सम्मोहन और कुछ नहीं कल्पना-शक्ति ही है। जब तुम किसी व्यक्ति को सम्मोहित करते हो तो वास्तव में वह गहन कल्पना में चला जाता है और तुम जो भी सुझाव देते हो, वह होने लगता है। तो जिस लड़के को उन्होंने सम्मोहित किया हुआ था, उसे कई सुझाव दिए। चार लड़कों ने एक लड़के पर सम्मोहन का प्रयोग किया। उन्होंने कई बातें करके देखीं, वे जो भी कहते, लड़का तत्क्षण अनुसरण करता। जब वे कहते, 'कूदो', तो लड़का कूदने लगता। जब वे कहते, 'रोओ', तो लड़का रोने लगता। जब उन्होंने कहा, 'तुम्हारी आंखों से आंसू गिर रहे हैं,' तो उसके आंसू बहने लगे। फिर बस एक मजाक की तरह उन्होंने कहा, 'अब तुम लेट जाओ। तुम मर गए !' और लड़का लेट गया और मर गया।

यह उन्नीस सौ बावन में हुआ। इसके बाद अमेरिका में उन्होंने सम्मोहन के विरुद्ध कानून बना दिया। जब तक कोई शोध-कार्य न चलता हो कोई सम्मोहन का प्रयोग न करे; जब तक कि कोई मेडिकल इंस्टीट्यूट, या किसी यूनिवर्सिटी का मनोविज्ञान विभाग तुम्हें अधिकृत न करे, तुम कोई प्रयोग नहीं कर सकते। वरना तो यह बड़ा खतरनाक है, उस लड़के ने तो बस विश्वास किया, कल्पना की कि वह मर गया है और वह मर गया।

यदि कल्पना से मृत्यु हो सकती है तो जीवन, अधिक जीवन क्यों नहीं मिल सकता।

यह विधि कल्पना-शक्ति पर आधारित है—'अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए।'

बस किसी निर्जन स्थान पर बैठ जाओ जहां तुम्हें कोई परेशान न करे, किसी एकांत कमरे से काम चलेगा। और यदि तुम कहीं बाहर जा सको तो बेहतर होगा, क्योंकि जब तुम प्रकृति के समीप होते हो तो अधिक कल्पनाशील होते हो। जब तुम्हारे आस-पास बस मनुष्य निर्मित चीजें होती हैं तो तुम कम कल्पनाशील होते हो। प्रकृति स्वप्न देख रही है और तुम्हें स्वप्न देखने की शक्ति देती है। अकेले तुम अधिक कल्पनाशील हो सकते हो।

इसीलिए तो तुम जब अकेले होते हो तो डरते हो। ऐसा नहीं है कि कोई भूत तुम्हें परेशान करेंगे, लेकिन तुम्हारी कल्पना काम कर सकती है। और तुम्हारी कल्पना भूत या जो भी तुम चाहो, पैदा कर सकती है। जब तुम अकेले हो तो तुम्हारी कल्पना की संभावना अधिक होती है; जब कोई और साथ होता है तो तुम्हारी बुद्धि नियंत्रण में होती है, क्योंकि बुद्धि के बिना तुम दूसरों से नहीं जुड़ सकते। जब कोई दूसरा साथ होता है तो मन काम करता रहता है। जब और कोई भी नहीं होता तो मन विश्राम करता है और तुम प्राणों के गहरे कल्पनाशील तलों की ओर लौट जाते हो। जब तुम अकेले होते हो, कल्पना काम करने लगती है।

इंद्रियगत संवेदनाओं के अभाव पर बहुत से प्रयोग किए गए हैं। यदि किसी व्यक्ति को सभी संवेदनात्मक उत्तेजनाओं से वंचित कर दिया जाए—तुम्हें किसी साउंड-प्रूफ कमरे में बंद कर दिया जाए जिसमें कोई प्रकाश न आता हो, जिसमें दूसरे मनुष्यों से जुड़ने की कोई संभावना न हो, दीवारों पर कोई तस्वीर न हो, कुछ न हो जिससे तुम जुड़ सको—तो एक, दो या तीन घंटे बाद तुम स्वयं से जुड़ने लगोगे। तुम कल्पनाशील हो जाओगे। तुम स्वयं से बातें करने लगोगे। तुम्हीं प्रश्न पूछोगे और तुम्हीं उत्तर दोगे। एकल-संवाद शुरू हो जाएगा जिसमें तुम बंट जाओगे।

फिर तुम अचानक कई चीजें अनुभव करने लगोगे जो तुम समझ नहीं पाओगे। तुम्हें ध्वनियां सुनाई पड़ने लगेंगी, जब कि कमरा साउंड-प्रूफ है, कोई ध्वनि भीतर नहीं आ सकती। अब तुम कल्पना कर रहे हो। हो सकता है तुम्हें सुगंध आने लगे, जब कि वहां कोई सुगंध नहीं है। अब तुम कल्पना कर रहे हो।

संवेदनाओं के परिपूर्ण अभाव के छत्तीस घंटे बाद तुम वास्तविक और काल्पनिक में भेद भी नहीं कर पाओगे, असंभव है। छत्तीस घंटे बाद कल्पना वास्तविक बन जाती है और वास्तविकता कल्पना लगने लगती है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में साधक पर्वतों पर, निर्जन स्थानों पर चले जाते थे, जहां वे वास्तविक और अवास्तविक के बीच के भेद को गिरा सकते थे। एक बार भेद गिर जाए तो तुम्हारी कल्पना प्रबल हो जाती है। अब तुम इसका उपयोग कर सकते हो और इसके द्वारा कुछ भी निर्मित कर सकते हो।

इस विधि के लिए किसी एकांत स्थान पर बैठ जाओ; यदि आस-पास प्राकृतिक स्थान हो तो अच्छा है, नहीं तो कमरे से भी काम चलेगा। फिर आंखें बंद कर लो और कल्पना करो कि तुम्हारे भीतर और बाहर एक आत्मिक शक्ति का आभास हो रहा है। तुम्हारे भीतर चेतना की एक नदी बह रही है और वह सारे कमरे में भर रही है, फैल रही है। भीतर और बाहर, तुम्हारे आस-पास, सब जगह, शक्ति उपस्थित है, ऊर्जा उपस्थित है। और केवल न में ही इसकी कल्पना मत करो, शरीर में भी अनुभव करना शुरू करो।

तुम्हारा शरीर आंदोलित होने लगेगा। जब तुम्हें लगे कि शरीर आंदोलित होने लगा तो उससे पता चलता है कि कल्पना ने काम करना शुरू कर दिया। अनुभव करो कि पूरा जगत धीरे-धीरे आत्मवान होता जा रहा है। सब कुछ—कमरे की दीवारें, तुम्हारे आस-पास के वृक्ष—सब कुछ अभौतिक हो गया है, ऊर्जा हो गया है। पदार्थ नहीं बचा।

यही वास्तविकता भी है। भौतिकविद कहते हैं कि पदार्थ भ्रम है और ऊर्जा सत्य है। और जहां भी तुम ठोस पदार्थ देखो तो ठोसपन तो मात्र एक आभास है, वास्तव में नहीं है। जैसे-जैसे विज्ञान पदार्थ के जगत में गहरा उतरता है, पदार्थ मिटता जाता है। केवल ऊर्जा, अभौतिक ऊर्जा रह जाती है, जिसमें कोई सीमाएं नहीं होतीं।

कल्पना के द्वारा तुम इस बिंदु पर पहुंच रहे हो जहां अपने चेतन प्रयास से तुम बुद्धि के ढांचे, बुद्धि के ढर्रे को नष्ट कर रहे हो। तुम अनुभव कर रहे हो कि पदार्थ नहीं है, केवल ऊर्जा है, केवल आत्मा है—भीतर भी, बाहर भी। जल्दी ही तुम अनुभव करोगे कि भीतर तथा बाहर समाप्त हो गए हैं। जब तुम्हारा शरीर आत्ममय हो जाता है और तुम्हें लगता है कि यह ऊर्जा ही है, तो भीतर तथा बाहर में कोई भेद नहीं रहता। सीमाएं खो जाती हैं। केवल तरंगायित, आंदोलित ऊर्जा का एक महासागर बचता है। यही सत्य भी है, तुम कल्पना के द्वारा सत्य तक पहुंच रहे हो।

कल्पना क्या कर रही है ? कल्पना केवल पुरानी धारणाओं को, पदार्थ को, मन के पुराने ढंगों को नष्ट कर रही है जो चीजों को एक खास दृष्टिकोण से देखते हैं। कल्पना उनको नष्ट कर रही है। और तब सत्य प्रकट होगा।

'अपने भीतर तथा बाहर एक साथ आत्मा की कल्पना करो, जब तक कि संपूर्ण अस्तित्व आत्मवान न हो जाए।'

जब तक तुम्हें यह न लगने लगे कि सब भेद समाप्त हो गए, सब सीमाएं विलीन हो गईं और जगत केवल ऊर्जा का एक महासागर रह गया है। यही वास्तविक भी है। लेकिन विधि में तुम जितने गहरे उतरोगे, उतने ही भयभीत हो जाओगे। तुम्हें लगेगा कि तुम पागल हो रहे हो। क्योंकि तुम्हारी बुद्धि भेदों से बनी है; तुम्हारी बुद्धि इस तथाकथित वास्तविकता से बनी है, और जब यह वास्तविकता समाप्त होने लगती है तो साथ ही तुम्हें लगता है कि तुम्हारी बुद्धि भी नष्ट हो रही है।

संत और पागल दोनों ऐसे जगत में जीते हैं जो हमारी तथाकथित वास्तविकता के पार होता है। दोनों ही पार के जगत में जीते हैं, लेकिन पागल नीचे गिर जाते हैं और संत ऊपर उठ जाते हैं। भेद छोटा सा है, लेकिन बहुत बड़ा भी है। यदि बिना किसी प्रयास के तुम मन और वास्तविक तथा अवास्तविक के भेद खो दो तो तुम विक्षिप्त हो जाओगे। लेकिन यदि चेतन प्रयास से तुम धारणाओं को नष्ट कर दो तो तुम विमुक्त हो जाओगे, विक्षिप्त नहीं। यह विमुक्तता ही धर्म का आयाम है। यह बुद्धि के पार है। लेकिन चेतन प्रयास चाहिए। तुम शिकार न बनो, मालिक ही बने रहो। जब तुम्हारा प्रयास मन के सारे आकारों को नष्ट करता है तो तुम निराकार सत्य का साक्षात्कार करते हो।

निराकार सत्य ही एकमात्र यथार्थ है। आकार की वास्तविकता तो बस थोपी हुई है। इसीलिए तो अब एंथ्रोपोलोजिस्ट कहते हैं कि हर समाज, हर संस्कृति एक ही सत्य को देखती है लेकिन भिन्न-भिन्न सत्य पाती है, क्योंकि उनके दृष्टिकोण, उनकी धारणाएं भिन्न हैं। संसार में कई संस्कृतियां हैं, पुरातन संस्कृतियां हैं। वे एक ही शब्द को अलग-अलग ढंग से देखती हैं; उनकी व्याख्याएं बिलकुल भिन्न होती हैं। यथार्थ हमारे लिए और उनके लिए एक ही है, लेकिन उसको अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखा गया है।

उदाहरण के लिए, बौद्ध कहते हैं कि संसार में कोई पदार्थ नहीं है, संसार केवल एक प्रक्रिया है। कुछ भी वास्तविक नहीं है, सब कुछ गतिमान है। या गतिमान कहना भी ठीक नहीं है, मात्र गति ही है। जब हम कहते हैं कि सब कुछ गतिमान है तो वही पुरानी भूल हो जाती है, ऐसा लगता है जैसे कि कुछ

है जो गतिमान है। बुद्ध कहते हैं, कुछ भी गतिमान नहीं है, केवल गति ही है। केवल गति है, उसके अलावा कुछ नहीं है।

तो थाईलैंड या बर्मा जैसे बौद्ध देशों में, उनकी भाषा में 'है' के लिए कोई शब्द नहीं होता। जब बाइबिल पहली बार थाई में अनुवादित हुई तो उसे अनुवादित करना बड़ा कठिन हो गया, क्योंकि बाइबिल में तो कहा है 'परमात्मा है'। बर्मीज या थाई में तुम यह नहीं कह सकते कि 'परमात्मा है'। तुम ऐसा कह ही नहीं सकते। तुम जो भी कहोगे उसका अर्थ होगा, 'परमात्मा हो रहा है।' सब कुछ हो रहा है, कुछ भी है नहीं। जब एक बर्मा निवासी संसार की ओर देखता है तो गति की ओर देखता है। जब हम देखते हैं, विशेषतः जब ग्रीक-उन्मुख पाश्चात्य मन देखता है, तो कोई प्रक्रिया नहीं होती, केवल वस्तु होती है। केवल मृत वस्तुएं हैं, गति नहीं है।

जब तुम नदी की ओर भी देखते हो तो नदी को 'है' की तरह देखते हो। नदी है नहीं, नदी का अर्थ तो बस एक गति है, कुछ तो सतत हो रहा है। और कोई ऐसा बिंदु नहीं आता जहां तुम कहो कि यह होना पूरा हो गया, यह एक अंतहीन प्रक्रिया है। जब हम एक वृक्ष की ओर देखते हैं तो कहते हैं कि वृक्ष 'है'। बर्मी भाषा के पास यह कहने के लिए कुछ भी नहीं है। वे केवल यही कह सकते हैं कि वृक्ष हो रहा है, वृक्ष बह रहा है, वृक्ष बढ़ रहा है, वृक्ष प्रक्रिया में है। यदि बच्चा अपने मन में इस दृष्टिकोण को लेकर बड़ा हो—कि सब कुछ प्रक्रिया है—तो संसार और यथार्थ बिलकुल भिन्न होंगे। तुम्हारे लिए यह भिन्न है। और यथार्थ तो एक ही है। लेकिन इसकी व्याख्या किस तरह करते हो, उससे सब बदल जाता है।

एक मूल बात ध्यान रखो—जब तक तुम्हारे मन के ढांचे को मिटा न दिया जाए, जब तक तुम उस ढांचे से मुक्त न हो जाओ, जब तक तुम्हारे संस्कार न पोंछ दिए जाएं और तुम निर्संस्कार न हो जाओ, तब तक तुम्हें पता नहीं चलेगा कि वास्तविकता क्या है, तुम केवल व्याख्याएं ही जानोगे। वे व्याख्याएं तुम्हारे मन के ही खेल हैं। निराकार सत्य ही एकमात्र वास्तविकता है। और यह विधि तुम्हें निर्धारणा होने में, निर्संस्कार होने में, तुम्हारे मन पर इकट्ठे हो गए शब्दों को हटाने में मदद देने के लिए है। उनके कारण तुम देख नहीं पाते। जो भी तुम्हें सत्य जैसा लगता है उसे मिट जाने दो।

ऊर्जा की कल्पना करो—पदार्थ की नहीं, जड़ की नहीं, वरन प्रक्रिया की, गति की, लय की, नृत्य की। और कल्पना करते रहो जब तक कि पूरा जगत आत्मवान न हो जाए। यदि तुम धैर्यपूर्वक लगे रहो तो तीन महीने के एक घंटा

प्रतिदिन सघन प्रयास के बाद, तुम इस आभास को पा सकते हो। तीन महीने के भीतर अपने आस-पास के सारे अस्तित्व का तुम एक दूसरा ही अनुभव ले सकते हो। पदार्थ नहीं बचा, मात्र अभौतिक, महासागरीय अस्तित्व बचा—केवल लहरें, केवल कंपन।

जब यह अनुभव होता है तभी तुम जानते हो कि परमात्मा क्या है। ऊर्जा का वह महासागर ही परमात्मा है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा कहीं स्वर्ग में किसी सिंहासन पर नहीं बैठा है। वहां कोई भी नहीं बैठा है। परमात्मा, सब कुछ जो है, उसकी समग्रता है। अस्तित्व की सारी सृजनात्मक ऊर्जा ही परमात्मा है। लेकिन हमारे सोचने का एक ढंग है। हम कहते हैं परमात्मा स्रष्टा है। परमात्मा स्रष्टा नहीं है। बल्कि, परमात्मा सृजनात्मक शक्ति है, स्वयं सृजन ही है।

हमारे मन पर बार-बार थोपा गया है कि कहीं अतीत में परमात्मा ने संसार की रचना की, और फिर वहीं सृजन समाप्त हो गया। ईसाइयों की कहानी है कि परमात्मा ने छः दिन में संसार बनाया और सातवें दिन उसने विश्राम किया। इसीलिए तो सातवां दिन, रविवार, छुट्टी का दिन है। परमात्मा ने उस दिन छुट्टी ली। छः दिन में उसने संसार को बनाया, हमेशा-हमेशा के लिए, और तब से कोई सृजन नहीं हुआ। छठे दिन के बाद कोई सृजन ही नहीं हुआ।

यह बड़ी मुर्दा धारणा है। तंत्र कहता है परमात्मा सृजनात्मक ही है। सृष्टि कोई ऐतिहासिक घटना नहीं है जो कि अतीत में कभी घटी, यह हर क्षण घट रही है, परमात्मा हर क्षण सृजन कर रहा है। लेकिन फिर भाषा के कारण दिक्कत खड़ी हो जाती है। 'परमात्मा सृजन कर रहा है' इससे ऐसा लगता है कि परमात्मा कोई व्यक्ति है जो सृजन करता रहता है। नहीं, वह सृजनात्मकता जो हर क्षण घटती रहती है, वह सृजनात्मकता ही परमात्मा है। तो तुम हर क्षण सृजन में हो।

यह बड़ी जीवंत धारणा है। ऐसा नहीं है कि परमात्मा ने कहीं कुछ बनाया और तबसे परमात्मा और मनुष्य के बीच कोई संवाद नहीं रहा, कोई संपर्क, कोई संबंध नहीं रहा; उसने सृजन किया और बात समाप्त हो गई। तंत्र कहता है कि तुम हर क्षण निर्मित हो रहे हो, हर क्षण दिव्य के साथ, सृजनात्मकता के स्रोत के साथ गहन संबंध में हो। यह बहुत ही जीवंत धारणा है।

इस विधि के द्वारा तुम भीतर और बाहर सृजनात्मक शक्ति की झलक पाओगे। एक बार तुम सृजनात्मक शक्ति और उसके स्पर्श, उसके प्रभाव को महसूस कर लो तो तुम बिलकुल भिन्न हो जाओगे, तुम फिर वही नहीं रह जाओगे।

परमात्मा तुममें प्रवेश कर गया। तुम उसके निवास बन गए।

कामना से लड़ो मत

दूसरी विधि :

103. अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के, जानने के आरंभ में ही, जानो।

इस विधि के संबंध में मूल बात है 'संपूर्ण चेतना'। यदि तुम किसी भी चीज पर अपनी संपूर्ण चेतना लगा दो तो वह एक रूपांतरणकारी शक्ति बन जाएगी। जब भी तुम संपूर्ण होते हो, किसी चीज में भी, तभी रूपांतरण होता है। लेकिन यह कठिन है, क्योंकि हम जहां भी हैं, बस आंशिक ही हैं, समग्रता में नहीं हैं।

यहां तुम मुझे सुन रहे हो। यह सुनना ही रूपांतरण हो सकता है। यदि तुम समग्रता से सुनो, इस क्षण में अभी और यहीं, यदि सुनना तुम्हारी समग्रता हो, तो वह सुनना एक ध्यान बन जाएगा—तुम आनंद के अलग ही आयाम में, एक दूसरी ही वास्तविकता में प्रवेश कर जाओगे।

लेकिन तुम समग्र नहीं हो। मनुष्य के मन के साथ यही मुश्किल है, वह सदैव आंशिक ही होता है। एक हिस्सा सुन रहा है। बाकी हिस्से शायद कहीं और हों, या शायद सोए ही हुए हों, या सोच रहे हों कि क्या कहा जा रहा है, या भीतर विवाद कर रहे हों। उससे एक विभाजन पैदा होता है और विभाजन से ऊर्जा का अपव्यय होता है।

तो जब भी कुछ करो, उसमें अपने पूरे प्राण डाल दो। जब तुम कुछ भी नहीं बचाते, छोटा-सा हिस्सा भी अलग नहीं रहता, जब तुम एक समग्र, संपूर्ण छलांग ले लेते हो, तुम्हारे पूरे प्राण उसमें लग जाते हैं, तभी कोई कृत्य ध्यानपूर्ण होता है।

कहते हैं एक बार रिंझाई अपने बगीचे में काम कर रहा था—रिंझाई एक झेन गुरु था—और कोई आया। वह आदमी कुछ दार्शनिक प्रश्न पूछने आया था। वह एक दार्शनिक खोजी था। उसे नहीं पता था कि जो आदमी बगीचे में काम कर रहा है वही रिंझाई है। उसने सोचा कि यह कोई माली, कोई नौकर होगा, तो उसने पूछा, 'रिंझाई कहां है ?' रिंझाई ने कहा, 'रिंझाई तो हमेशा यहीं है।' स्वभावतः उस आदमी ने सोचा कि माली कुछ पागल लगता है, क्योंकि उसने कहा रिंझाई तो हमेशा यहीं है। तो उसने सोचा कि इस आदमी से और कुछ पूछना ठीक नहीं होगा, और वह किसी और से पूछने के लिए जाने लगा। रिंझाई

ने कहा, 'कहीं मत जाओ, क्योंकि तुम उसे कहीं भी न पाओगे। वह हमेशा यहीं है।' लेकिन वह तो उस पागल आदमी से बचकर भाग गया।

फिर उसने औरों से पूछा तो वे बोले, 'जिस पहले व्यक्ति से तुम मिले थे वही रिंझाई है।' तो वह वापस आया और बोला, 'मुझे क्षमा करें, बहुत खेद है मुझे, मैंने सोचा कि आप पागल हैं। मैं कुछ पूछने आया हूं। मैं जानना चाहता हूं कि सत्य क्या है। उसे जानने के लिए मैं क्या करूं ?' रिंझाई ने कहा, 'तुम जो करना चाहो करो, लेकिन समग्रता से करो।'

सवाल यह नहीं है कि तुम क्या करते हो, वह बात ही असंगत है। सवाल यह है कि तुम उसे समग्रता से करो।

'उदाहरण के लिए', रिंझाई बोला, 'जब मैं जमीन में यह गड्ढा खोद रहा हूं तो मेरी समग्रता गड्ढा खोदने में लगी हुई है। पीछे कोई रिंझाई नहीं बचा। पूरा का पूरा खोदने में लग गया है। असल में कोई खोदने वाला नहीं बचा, बस खोदने की क्रिया ही बची है। यदि खोदने वाला बचे तो तुम बंट गए।'

तुम मुझे सुन रहे हो। यदि सुनने वाला बचे तो तुम समग्र नहीं हुए। यदि केवल सुनना ही हो और पीछे कोई सुनने वाला न बचे तो तुम समग्र हो गए, अभी और यहीं। फिर यह क्षण ही ध्यान बन जाता है।

इस सूत्र में शिव कहते हैं, 'अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के, जानने के आरंभ में ही, जानो।'

यदि तुम्हारे भीतर कोई कामना उठे तो तंत्र उससे लड़ने को नहीं कहता। वह व्यर्थ है। कामना से कोई भी नहीं लड़ सकता। वह मूर्खता भी है, क्योंकि जब भी अपने भीतर तुम किसी चीज से लड़ने लगते हो तो तुम स्वयं से ही लड़ रहे हो। तुम विक्षिप्त हो जाओगे, तुम्हारा व्यक्तित्व खंडित हो जाएगा।

और इन सारे तथाकथित धर्मों ने मनुष्यता को धीरे-धीरे विक्षिप्त होने में सहयोग दिया है। हर कोई बंटा हुआ है, हर कोई खंडित है और स्वयं से लड़ रहा है। क्योंकि तथाकथित धर्मों ने तुम्हें बताया है कि 'यह बुरा है। यह मत करो।' लेकिन यदि कामना उठती है तो तुम क्या कर सकते हो ? तुम कामना से लड़ते हो। तंत्र कहता है कि कामना से मत लड़ो।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम उसके शिकार हो जाओ। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम उसमें लिप्त हो जाओ। तंत्र तुम्हें बड़ी सूक्ष्म विधि देता है। जब कामना उठे तो आरंभ में ही अपनी समग्रता से जागरूक हो जाओ। अपनी समग्रता से उसको देखो। बस दृष्टि बन जाओ। द्रष्टा को पीछे मत छोड़ो। अपनी पूरी चेतना को इस उठती हुई कामना पर लगा दो। यह बड़ा सूक्ष्म उपाय

है, लेकिन बहुत अद्भुत है। इसके प्रभाव चमत्कारिक हैं।

तीन बातें समझने जैसी हैं। पहली, जब कामना उठ ही गई तो तुम कुछ कर नहीं सकते। तब वह अपना रास्ता पूरा करेगी, अपना वर्तुल पूरा करेगी, और तुम कुछ भी नहीं कर सकते। आरंभ में ही कुछ किया जा सकता है, बीज को तभी और वहीं जला देना चाहिए। एक बार बीज अंकुरित हो जाए और वृक्ष विकसित होने लगे तो कुछ करना कठिन होगा, लगभग असंभव ही होगा। तुम जो भी करोगे उससे और संताप ही पैदा होगा, ऊर्जा ही नष्ट होगी, विक्षिप्तता, निर्बलता ही पैदा होगी। तो जब कामना उठे, आरंभ में ही, पहली झलक में ही, पहले आभास में ही कि कामना उठ रही है, अपनी संपूर्ण चेतना को, अपने प्राणों की समग्रता को उसे देखने में लगा दो। कुछ भी मत करो। और कुछ करने की जरूरत भी नहीं है। समग्र प्राणों से देखने पर दृष्टि इतनी आग्नेय हो जाती है कि बिना किसी संघर्ष के, बिना किसी विवाद के, बिना किसी विरोध के, बीज जल जाता है। समग्र प्राणों से गहरे देखने की बात है और उठती हुई कामना पूरी तरह दग्ध हो जाती है।

और जब कोई कामना बिना किसी संघर्ष के समाप्त हो जाती है तो वह तुम्हें इतना शक्तिशाली कर जाती है, इतनी ऊर्जा से, इतने गहन होश से भर देती है कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि तुम लड़ोगे तो हारोगे। यदि तुम न भी हारो और कामना ही हार जाए तब भी बात वही होगी। कोई ऊर्जा नहीं बचेगी। चाहे तुम जीतो चाहे हारो, तुम थके-हारे ही अनुभव करोगे। दोनों ही बातों में तुम अंत में कमजोर हो जाओगे, क्योंकि कामना तुम्हारी ऊर्जा से लड़ रही थी और तुम भी उसी ऊर्जा से लड़ रहे थे। ऊर्जा एक ही स्रोत से आ रही थी, तुम एक ही स्रोत से उलीच रहे थे। तो कुछ भी परिणाम हो, स्रोत निर्बल ही होगा।

लेकिन यदि कामना आरंभ में ही समाप्त हो जाए, बिना किसी विरोध के—याद रखो, यह मूल बात है—बिना किसी संघर्ष के, बस देखने भर से, विरोध भरी दृष्टि से नहीं, नष्ट करने वाले मन से नहीं, शत्रुता से नहीं, बस देखने भर से—उस समग्र दृष्टि की सघनता से ही बीज जल जाता है। और जब कामना, उठती हुई कामना, आकाश में धुएं की तरह विलीन हो जाती है तो तुम एक अद्भुत ऊर्जा से भर जाते हो। वह ऊर्जा ही आनंद है। वह तुम्हें एक सौंदर्य, एक गरिमा देगी।

तथाकथित संत जो अपनी कामनाओं से लड़ रहे हैं, कुरूप हैं। जब मैं कहता हूं कुरूप तो मेरा अर्थ है वे सदैव क्षुद्र से उलझे हैं, संघर्ष कर रहे हैं। उनका

पूरा व्यक्तित्व गरिमाहीन हो जाता है। और वे हमेशा कमजोर होते हैं, हमेशा ऊर्जा की कमी होती है, क्योंकि उनकी सारी ऊर्जा अंतर्युद्ध में नष्ट हो जाती है।

बुद्ध पुरुष बिलकुल भिन्न होता है। और बुद्ध के व्यक्तित्व में जो गरिमा प्रकट हुई है वह बिना किसी संघर्ष या युद्ध के, बिना किसी अंतर्हिंसा के नष्ट हो गई कामनाओं के कारण है।

'अपनी संपूर्ण चेतना से कामना के, जानने के आरंभ में ही, जानो।'

उसी क्षण में बस जानो, अवलोकन करो, देखो। कुछ भी मत करो। और कुछ भी नहीं चाहिए। बस इतना ही चाहिए कि तुम्हारे समग्र प्राण वहां उपस्थित हों। तुम्हारी पूर्ण उपस्थिति चाहिए। बिना किसी हिंसा के परम बुद्धत्व उपलब्ध करने का यह एक राज है।

और याद रखो, परमात्मा के राज्य में तुम हिंसा से प्रवेश नहीं कर सकते। नहीं, वे द्वार तुम्हारे लिए कभी नहीं खुलेंगे, भले तुम कितनी ही दस्तक दो। खटखटाओ और खटखटाते ही जाओ। तुम अपना सिर फोड़ ले सकते हो लेकिन वे द्वार कभी नहीं खुलेंगे। लेकिन जो भीतर गहरे में अहिंसक हैं और किसी चीज से नहीं लड़ रहे, उनके लिए वे द्वार सदा खुले हैं, कभी बंद ही नहीं थे।

जीसस कहते हैं, 'दस्तक दो और तुम्हारे लिए द्वार खुल जाएंगे।' मैं तुमसे कहता हूं कि दस्तक देने की भी जरूरत नहीं है। देखो, द्वार खुले ही हुए हैं। वे सदा से ही खुले हुए हैं। वे कभी बंद नहीं थे। बस एक गहन, समग्र, संपूर्ण, अखंड दृष्टि से देखो।

देखने की सीमाएं

तीसरी विधि :

104. हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।

जो कुछ भी हम देखते हैं सीमित है, जो कुछ भी हम अनुभव करते हैं सीमित है, सभी आभास सीमित हैं। लेकिन यदि तुम जाग जाओ तो हर सीमित चीज असीम में विलीन हो रही है। आकाश की ओर देखो। तुम केवल उसका सीमित भाग देख पाओगे, इसलिए नहीं कि आकाश सीमित है, बल्कि इसलिए कि तुम्हारी आंखें सीमित हैं, तुम्हारा अवधान सीमित है। लेकिन यदि तुम पहचान सको कि यह सीमा अवधान के कारण है, आंखों के कारण है, आकाश के सीमित

होने के कारण नहीं है, तो फिर तुम देखोगे कि सीमाएं असीम में विलीन हो रही हैं। जो कुछ भी हम देखते हैं, वह हमारी दृष्टि के कारण ही सीमित हो जाता है। वरना तो अस्तित्व असीम है, वरना तो सब चीजें एक-दूसरे में विलीन हो रही हैं। हर चीज अपनी सीमाएं खो रही है, हर क्षण लहरें महासागर में विलीन हो रही हैं। और न किसी का कोई अंत है, न आदि। सभी कुछ, शेष सब कुछ भी है।

सीमा हमारे द्वारा आरोपित की गई है। यह हमारे कारण है, क्योंकि हम अनंत को देख नहीं पाते, इसलिए उसको विभाजित कर देते हैं। ऐसा हमने हर चीज के साथ किया है। तुम अपने घर के आस-पास बाड़ लगा लेते हो और कहते हो, 'यह जमीन मेरी है और दूसरी तरफ किसी और की जमीन है।' लेकिन गहरे में तुम्हारी जमीन और तुम्हारे पड़ोसी की जमीन एक ही है। वह बाड़ केवल तुम्हारे ही कारण है। जमीन बंटी हुई नहीं है, पड़ोसी और तुम बंटे हुए हो अपने-अपने मन के कारण।

देश बंटे हुए हैं तुम्हारे मन के कारण। कहीं भारत समाप्त होता है और पाकिस्तान शुरू होता है। लेकिन जहां अब पाकिस्तान है कुछ वर्ष पहले वहां भारत था। उस समय भारत पाकिस्तान की आज की सीमाओं तक फैला हुआ था। लेकिन अब पाकिस्तान बंट गया, सीमा आ गई। लेकिन जमीन वही है।

मैंने एक कहानी सुनी है जो तब घटी जब भारत और पाकिस्तान में बंटवारा हुआ। भारत और पाकिस्तान की सीमा पर ही एक पागलखाना था। राजनीतिज्ञों को कोई बहुत चिंता नहीं थी कि पागलखाना कहां जाए, भारत में कि पाकिस्तान में, लेकिन सुपरिन्टेंडेंट को बड़ी चिंता थी। तो उसने पूछा कि पागलखाना कहां रहेगा, भारत में रहेगा कि पाकिस्तान में जाएगा। दिल्ली से किसी ने उसे सूचना भेजी कि वह वहां रहने वाले पागलों से ही पूछ ले और मतदान ले ले कि वे कहां जाना चाहते हैं।

सुपरिन्टेंडेंट अकेला आदमी था जो पागल नहीं था और उसने उनको समझाने की कोशिश की। उसने सब पागलों को इकट्ठा किया और उन्हें कहा, 'अब यह तुम्हारे ऊपर है, तुम जहां चाहो वहीं जा सकते हो। यदि तुम भारत में जाना चाहते हो तो भारत में जा सकते हो। यदि तुम पाकिस्तान में जाना चाहते हो तो पाकिस्तान में जा सकते हो।'

लेकिन पागलों ने कहा, 'हम यहीं रहना चाहते हैं। हम कहीं भी नहीं जाना चाहते।' उसने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की। उसने कहा, 'तुम यहीं रहोगे।

उसकी चिंता मत करो। तुम यहीं रहोगे, लेकिन तुम जाना कहां चाहते हो ?' वे पागल बोले, 'लोग कहते हैं कि हम पागल हैं, पर तुम तो और भी पागल लगते हो। तुम कहते हो कि तुम भी यहीं रहोगे और हम भी यहीं रहेंगे तो कहीं जाने की क्या चिंता करनी ?'

सुपरिन्टेंडेंट तो मुश्किल में पड़ गया कि इन्हें पूरी बात किस तरह समझाई जाए। एक ही उपाय था। उसने एक दीवार खड़ी कर दी और पागलखाने को दो बराबर हिस्सों में बांट दिया। एक हिस्सा भारत बन गया और दूसरा हिस्सा पाकिस्तान। और कहते हैं कि कई बार पाकिस्तान वाले पागलखाने के कुछ पागल दीवार पर चढ़ जाते हैं और भारत वाले पागल भी दीवार कूद जाते हैं और वे भी हैरान हैं कि क्या हो रहा है। 'हम हैं उसी जगह पर और तुम पाकिस्तान चले गए हो, हम भारत चले गए हैं, और गया कोई भी नहीं है !'

वे पागल समझ ही नहीं सकते, वे कभी भी नहीं समझ पाएंगे, क्योंकि दिल्ली और कराची में और भी बड़े पागल हैं।

हम बांटते चले जाते हैं। जीवन, अस्तित्व, बंटा हुआ नहीं है। सभी सीमाएं मनुष्य की बनाई हुई हैं। वे उपयोगी हैं यदि तुम उनके पीछे पागल न हो जाओ और यदि तुम्हें पता हो कि वे बस कामचलाऊ हैं, मनुष्य की बनाई हुई हैं, मात्र उपयोगिता के लिए हैं; असली नही हैं, यथार्थ नहीं हैं, बस मान्यता मात्र हैं, कि वे उपयोगी तो हैं, लेकिन उनमें कोई सच्चाई नहीं है।

'हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।'

तो तुम जब भी कुछ सीमित देखो तो हमेशा याद रखो कि सीमा के पार वह विलीन हो रहा है, सीमा तिरोहित हो रही है। हमेशा पार और पार देखो।

इसे तुम एक ध्यान बना सकते हो। किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाओ और देखो, और जो भी तुम्हारी दृष्टि में आए, उसके पार जाओ, पार जाओ, कहीं भी रुको मत। बस यह खोजो कि यह वृक्ष कहां समाप्त हो रहा है। यह वृक्ष, तुम्हारे बगीचे में यह छोटा-सा वृक्ष पूरा अस्तित्व अपने में समाहित किए हुए है। हर क्षण यह अस्तित्व में विलीन हो रहा है।

यदि कल सूर्य न निकले तो यह वृक्ष मर जाएगा, क्योंकि इस वृक्ष का जीवन सूर्य के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है। उनके बीच दूरी बड़ी है। सूर्य की किरणें पृथ्वी तक पहुंचने में समय लगता है, दस मिनट लगते हैं। दस मिनट बहुत लंबा समय है, क्योंकि प्रकाश बहुत तेज गति से चलता है। प्रकाश एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील चलता है और सूर्य से इस वृक्ष तक प्रकाश

के पहुंचने में दस मिनट लगते हैं। दूरी बड़ी है, विशाल है। लेकिन यदि सूर्य न रहे तो वृक्ष तत्क्षण मर जाएगा। वे दोनों एक साथ हैं। वृक्ष हर क्षण सूर्य में विलीन हो रहा है और सूर्य हर क्षण वृक्ष में विलीन हो रहा है। हर क्षण सूर्य वृक्ष में प्रवेश कर रहा है, उसे जीवंत कर रहा है।

दूसरी बात, जो अभी विज्ञान को ज्ञात नहीं है, लेकिन धर्म कहता है कि एक और घटना घट रही है, क्योंकि प्रतिसंवेदन के बिना जीवन में कुछ भी नहीं रह सकता। यदि सूर्य वृक्ष को जीवन दे रहा है तो वृक्ष भी सूर्य को जीवन लौटा रहा होगा, क्योंकि जीवन में सदा एक प्रतिसंवेदन होता है। और ऊर्जा बराबर हो जाती है। वृक्ष भी सूर्य को जीवन दे रहा होगा। वे एक ही हैं। फिर वृक्ष समाप्त हो जाता है, सीमा समाप्त हो जाती है।

जहां भी तुम देखो, उसके पार देखो, और कहीं भी रुको मत। देखते जाओ, देखते जाओ, जब तक कि तुम्हारा मन न खो जाए, जब तक तुम अपने सारे सीमित आकार न खो बैठो। अचानक तुम प्रकाशमान हो जाओगे।

पूरा अस्तित्व एक है। वह एकता ही लक्ष्य है। और अचानक मन आकार से, सीमा से, परिधि से थक जाता है। और जैसे-जैसे तुम पार जाने के प्रयत्न में लगे रहते हो, पार और पार जाते चले जाते हो, मन छूट जाता है, अचानक मन गिर जाता है और तुम अस्तित्व को विराट अद्वैत की तरह देखते हो, सब कुछ एक-दूसरे में समाहित हो रहा है, सब कुछ एक-दूसरे में परिवर्तित हो रहा है।

'हे शक्ति, प्रत्येक आभास सीमित है, सर्वशक्तिमान में विलीन हो रहा है।'

इसे तुम एक ध्यान बना ले सकते हो। एक घंटे के लिए बैठ जाओ और इसे करके देखो। कहीं कोई सीमा मत बनाओ। जो भी सीमा हो उसके पार खोजने का प्रयास करो और चलते चले जाओ। जल्दी ही मन थक जाता है, क्योंकि मन असीम के साथ नहीं चल सकता। मन केवल सीमित से ही जुड़ सकता है। असीम के साथ मन नहीं जुड़ सकता; मन ऊब जाता है, थक जाता है, कहता है, 'बहुत हुआ, अब बस करो !' लेकिन रुको मत, चलते जाओ। एक क्षण आएगा जब मन पीछे छूट जाता है और केवल चेतना ही बचती है। उस क्षण में तुम्हें अखंडता का, अद्वैत का ज्ञान होगा। यही लक्ष्य है। यह चेतना का सर्वोच्च शिखर है। और मनुष्य के मन के लिए यह परम आनंद है, गहनतम समाधि है।

अस्तित्व की अखंडता को अनुभव करो

चौथी विधि :

105. सत्य में रूप अविभक्त हैं। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा अपना रूप अविभक्त हैं। दोनों को इसी चेतना से निर्मित जानो।

'सत्य में रूप अविभक्त हैं।'

वे विभक्त दिखाई पड़ते हैं, लेकिन हर रूप दूसरे रूपों के साथ संबंधित है। वह दूसरों के साथ अस्तित्व में है—बल्कि यह कहना अधिक सही होगा कि वह दूसरे रूपों के साथ सह-अस्तित्व में है। हमारी वास्तविकता एक सह-अस्तित्व है। वास्तव में यह एक पारस्परिक वास्तविकता है, पारस्परिक आत्मीयता है। उदाहरण के लिए, जरा सोचो कि तुम इस पृथ्वी पर अकेले हो। तुम क्या होओगे ? पूरी मनुष्यता समाप्त हो गई हो, तीसरे विश्वयुद्ध के बाद तुम्हीं अकेले बचे हो—संसार में अकेले, इस विशाल पृथ्वी पर अकेले। तुम कौन होओगे ?

पहली बात तो यह है कि अपने अकेले होने की कल्पना करना ही असंभव है। मैं कहता हूं, अपने अकेले होने की कल्पना करना ही असंभव है। तुम बार-बार कोशिश करोगे और पाओगे कि कोई साथ ही खड़ा है—तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे मित्र—क्योंकि तुम कल्पना में भी अकेले नहीं रह सकते। तुम दूसरों के साथ ही हो। वे तुम्हें अस्तित्व देते हैं। वे तुम्हें सहयोग देते हैं। तुम उन्हें सहयोग देते हो और वे तुम्हें सहयोग देते हैं।

तुम कौन होओगे ? तुम अच्छे आदमी होओगे या बुरे आदमी होओगे ? कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अच्छाई और बुराई सापेक्ष होती हैं। तुम सुंदर होओगे कि कुरूप होओगे ? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। तुम पुरुष होओगे कि स्त्री होओगे ? कुछ भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि तुम जो भी हो, दूसरे के संबंध में हो। तुम बुद्धिमान होओगे कि मूढ़ ?

धीरे-धीरे तुम पाओगे कि सब रूप समाप्त हो गए। और उन रूपों के समाप्त होने के साथ तुम्हारे भीनर के भी सब रूप समाप्त हो गए हैं। न तुम मूर्ख हो न बुद्धिमान, न अच्छे न बुरे, न कुरूप न सुंदर, न पुरुष न स्त्री। फिर तुम क्या होओगे ? यदि तुम सब रूपों को हटाते चलो तो जल्दी ही तुम पाओगे कि कुछ भी नहीं बचा। हम रूपों को अलग-अलग देखते हैं। लेकिन वे अलग हैं नहीं। हर रूप दूसरों के साथ जुड़ा है। रूप एक शृंखला में होते हैं।

यह सूत्र कहता है, 'सत्य में रूप अविभक्त हैं। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा

अपना रूप अविभक्त हैं।'

तुम्हारा रूप और संपूर्ण अस्तित्व का रूप भी अविभक्त है। तुम उसके साथ एक हो। तुम उसके बिना नहीं हो सकते। और दूसरी बात भी सच है, लेकिन उसे समझना थोड़ा कठिन है—जगत भी तुम्हारे बिना नहीं हो सकता। जगत तुम्हारे बिना नहीं हो सकता, जैसे कि तुम जगत के बिना नहीं हो सकते। तुम अलग-अलग रूपों में सदैव रहे हो और अलग-अलग रूपों में सदैव रहोगे। लेकिन तुम रहोगे ही। तुम इस जगत के एक अभिन्न अंग हो। तुम बाहरी नहीं हो, कोई अजनबी नहीं हो, कोई परदेसी नहीं हो। तुम एक अंतरंग, अभिन्न अंग हो। और जगत तुम्हें खो नहीं सकता, क्योंकि यदि वह तुम्हें खोता है तो स्वयं को खो देगा। रूप विभक्त नहीं हैं, अविभक्त हैं। वे एक हैं। केवल आभास ही सीमाएं और परिधि खड़ी करते हैं।

यदि तुम इस पर मनन करो, इसमें प्रवेश करो, तो यह एक अनुभूति बन सकती है। यह एक अनुभूति बन जाती है, कोई सिद्धांत नहीं, कोई विचार नहीं, बल्कि एक अनुभूति कि 'हां, मैं जगत के साथ एक हूं और जगत मेरे साथ एक है।'

यही जीसस यहूदियों से कह रहे थे। लेकिन वे नाराज हुए, क्योंकि जीसस ने कहा, 'मैं और स्वर्ग में मेरे पिता एक ही हैं।' यहूदी नाराज हुए। जीसस क्या दावा कर रहे थे ? क्या वह यह दावा कर रहे थे कि वह और परमात्मा एक ही हैं ? यह तो ईश्वर-विरोधी बात हो गई। उन्हें दंड मिलना चाहिए। लेकिन वह तो मात्र एक विधि दे रहे थे और कुछ भी नहीं। वह मात्र यह विधि दे रहे थे कि रूप विभक्त नहीं हैं, कि तुम और पूर्ण एक ही हो-'मैं और स्वर्ग में मेरे पिता एक ही हैं।' लेकिन यह कोई दावा नहीं था, यह मात्र एक विधि थी।

और जब जीसस ने कहा कि 'मैं और मेरे पिता एक ही हैं', तो उनका यह अर्थ नहीं था कि तुम और पिता परमात्मा अलग-अलग हो। जब उन्होंने कहा 'मैं' तो उसमें हर 'मैं' आ गया। जहां भी 'मैं' है वह 'मैं' और परमात्मा एक ही है। लेकिन इसे गलत समझा जा सकता है। और यहूदी तथा ईसाइयों, दोनों ने इसे गलत समझा। ईसाइयों ने भी गलत समझा, क्योंकि वे कहते हैं कि जीसस परमात्मा के इकलौते बेटे थे-परमात्मा के इकलौते बेटे-ताकि कोई और यह दावा न कर सके कि वह भी परमात्मा का बेटा है।

मैं एक बड़ी मजेदार पुस्तक पढ़ रहा था। उसका शीर्षक है, 'तीन क्राइस्ट।' एक पागलखाने में तीन आदमी थे और तीनों ही यह दावा करते थे कि वे क्राइस्ट

हैं। यह एक सच्ची घटना है, कोई कहानी नहीं। तो एक मनोविश्लेषक ने तीनों का अध्ययन किया। फिर उसके मन में एक विचार आया कि यदि उन तीनों को आपस में मिलवाया जाए तो देखें क्या होता है, बड़ी दिल्लगी रहेगी। वे एक-दूसरे को कैसे परिचय देंगे और क्या उनकी प्रतिक्रिया होगी। तो उसने उन तीनों को इकट्ठा किया और आपस में परिचय करने के लिए एक कमरे में छोड़ दिया।

पहला बोला, 'मैं इकलौता बेटा हूं, जीसस क्राइस्ट।'

दूसरा हंसा और उसने अपने मन में सोचा कि यह जरूर कोई पागल होगा! वह बोला, 'तुम कैसे हो सकते हो ? जीसस क्राइस्ट तो मैं हूं। तुम भी उस समग्र के अंश हो। उस चेतना का एक अंश तुममें भी है। लेकिन जीसस क्राइस्ट, परमात्मा का इलकौता बेटा, वह तो मैं ही हूं।'

तीसरे ने सोचा कि दोनों मूर्ख हैं, कि दोनों पागल हो गए हैं। उसने कहा, 'तुम क्या बात करते हो ? मेरी ओर देखो। परमात्मा का बेटा यहां है।'

फिर उस मनोविश्लेषक ने उसे अलग-अलग पूछा, 'तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या है ?'

उन तीनों ने कहा, 'बाकी दोनों पागल हैं, दोनों ही पागल हो गए हैं।'

और ऐसा केवल पागलों के साथ ही नहीं है। यदि तुम ईसाइयों से पूछो कि वे कृष्ण के विषय में क्या सोचते हैं, क्योंकि वह तो दावा करते हैं कि वह परमात्मा हैं, तो वे कहेंगे कि उस पार से केवल एक ही आगमन हुआ है, वे हैं जीसस क्राइस्ट। इतिहास में केवल एक ही बार परमात्मा संसार में उतरा और वह जीसस क्राइस्ट के रूप में। कृष्ण भले हैं, महान हैं, लेकिन परमात्मा नहीं हैं।

यदि तुम हिंदुओं से पूछो, वे जीसस पर हंसेंगे। वही पागलपन चलता है, और वास्तविकता यह है कि सब परमात्मा के बेटे हैं—सब। इससे अन्यथा संभव ही नहीं है। तुम एक ही स्रोत से आते हो, चाहे तुम जीसस हो, कि कृष्ण हो, कि अ, ब, स कुछ भी हो, या कुछ भी नहीं हो, तुम एक ही स्रोत से आते हो। और हर 'मैं', हर चेतना, हर क्षण दिव्य से संबंधित है। जीसस केवल एक विधि दे रहे थे। वह गलत समझे गए।

यह विधि वही है—'सत्य में रूप अविभक्त हैं। सर्वव्यापी आत्मा तथा तुम्हारा अपना रूप अविभक्त हैं। दोनों को इसी चेतना से निर्मित जानो।'

न केवल यह अनुभव करो कि तुम इस चेतना से बने हो, बल्कि अपने आस-पास की हर चीज को इसी चेतना से निर्मित जानो। क्योंकि यह अनुभव

करना तो बड़ा सरल है कि तुम इस चेतना से बने हो, इससे तुम्हें बड़े अहंकार का भाव हो सकता है, अहंकार को इससे बड़ी तृप्ति मिल सकती है। लेकिन अनुभव करो कि दूसरा भी इसी चेतना से बना है, फिर यह एक विनम्रता बन जाती है।

जब सब कुछ दिव्य है तो तुम्हारा मन अहंकारी नहीं हो सकता। जब सब कुछ दिव्य है तो तुम विनम्र हो जाते हो। फिर तुम्हारे कुछ होने का, कुछ श्रेष्ठ होने का प्रश्न नहीं रह जाता, फिर पूरा अस्तित्व दिव्य हो जाता है और जहां भी तुम देखते हो, दिव्य को ही देखते हो। देखने वाला द्रष्टा और देखा गया दृश्य, दोनों दिव्य हैं, क्योंकि रूप विभक्त नहीं हैं। सब रूपों के पीछे अरूप छिपा हुआ है।

आज़ इतना ही।

76

काम-ऊर्जा ही जीवन-ऊर्जा है

प्रश्न-सार

1. *तंत्र की विधियां काम से ज्यादा संबंधित नहीं लगती हैं।*
2. *ज्ञान और अज्ञान आपस में किस प्रकार संबंधित हैं ?*
3. *कृष्णमूर्ति विधियों के विरोध में क्यों हैं ?*
4. *व्यवस्था के हानि-लाभ क्या हैं ?*

पहला प्रश्न :

हमने सदा यही सुना है कि तंत्र मूल रूप से काम-ऊर्जा तथा काम-केंद्र की विधियों से संबंधित है, लेकिन आप कहते हैं कि तंत्र में सब समाहित है। यदि पहले दृष्टिकोण में कोई सच्चाई है तो विज्ञान भैरव तंत्र में अधिकांश विधियां अतांत्रिक मालूम होती हैं। क्या यह सच है ?

पहली बात जो समझने की है, वह है काम-ऊर्जा। जैसा तुम इसे समझते हो, वह तो बस एक अंश है, जीवन-ऊर्जा का एक हिस्सा है, लेकिन तंत्र जानता है कि यह जीवन का ही पर्याय है। यह जीवन का कोई अंश, कोई हिस्सा नहीं है, स्वयं जीवन ही है। तो जब तंत्र कहता है काम-ऊर्जा तो उसका अर्थ होता है जीवन-ऊर्जा।

काम-ऊर्जा की फ्रायडियन धारणा के बारे में भी यही सत्य है। फ्रायड को भी पश्चिम में बहुत गलत समझा गया। लोगों को ऐसा लगा कि वह जीवन को काम तक ही सीमित कर रहा है, लेकिन वह वही कर रहा था जो तंत्र इतने समय से करता रहा है। संपूर्ण जीवन काम है। काम शब्द प्रजनन तक ही सीमित नहीं है, जीवन-ऊर्जा का पूरा खेल ही काम है। प्रजनन उस खेल का बस एक हिस्सा है। जहां भी दो ऊर्जाएं मिलें, निगेटिव और पाजिटिव, काम का प्रवेश हो गया।

इसे समझना कठिन है। उदाहरण के लिए—तुम मुझे सुन रहे हो। यदि तुम फ्रायड से पूछो, या तंत्र-गुरुओं से पूछो, वे कहेंगे कि सुनना पैसिव है, स्त्रैण है और बोलना पुरुष जैसा है। बोलना तुममें प्रवेश करता है और तुम उसके प्रति ग्रहणशील होते हो। वक्ता और श्रोता के बीच एक काम-कृत्य हो रहा है, क्योंकि वक्ता तुममें प्रवेश करने की कोशिश कर रहा है और श्रोता ग्रहण कर रहा है। श्रोता की ऊर्जा स्त्रैण हो गई है। और श्रोता स्त्रैण न हो तो सुनने की घटना नहीं घटेगी।

इसीलिए श्रोता को बिलकुल शांत होना पड़ता है। सुनते समय उसे सोचना नहीं चाहिए, क्योंकि सोचना उसे सक्रिय कर देगा। उसे अपने भीतर विवाद नहीं करते रहना चाहिए, क्योंकि विवाद उसे सक्रिय कर देगा। सुनते समय उसे बस सुनना ही चाहिए और कुछ भी नहीं करना चाहिए। तभी संदेश ग्रहण किया जा सकता है और समझा जा सकता है। लेकिन तब श्रोता स्त्रैण हो जाता है।

संवाद तभी हो पाता है जब एक पक्ष पुरुष होता है और एक पक्ष स्त्री, वरना तो कोई संवाद नहीं हो सकता। जहां भी निगेटिव और पाजिटिव मिले, काम घटित हो गया। चाहे यह भौतिक तल पर ही हो, निगेटिव और पाजिटिव विद्युत मिली, और काम हो गया। जहां भी दो ध्रुव मिलते हैं, विपरीत ऊर्जाएं मिलती हैं, वहीं काम है। तो काम एक बहुत विशाल, बहुत विराट शब्द है, केवल प्रजनन से ही नहीं जुड़ा है। प्रजनन तो केवल एक प्रक्रिया है जो काम में समाहित है।

तंत्र कहता है, जब परम आनंद और उल्लास तुम्हारे भीतर घटता है तो उसका अर्थ है कि तुम्हारे पाजिटिव और निगेटिव ध्रुवों का मिलन हो गया। क्योंकि हर पुरुष, पुरुष और स्त्री दोनों है और हर स्त्री भी पुरुष और स्त्री दोनों है। तुम केवल स्त्री से या केवल पुरुष से पैदा नहीं हुए हो, दोनों विरोधी ध्रुवों के मिलन से पैदा हुए हो। तुम्हारे पिता का भी योगदान है, तुम्हारी मां का भी योगदान है। तुम आधे अपनी मां हो और आधे अपने पिता; दोनों तुम्हारे भीतर साथ-साथ हैं। जब भीतर वे दोनों मिलते हैं तो आनंद घटता है।

बुद्ध अपने बोधिवृक्ष के नीचे बैठे हुए एक गहन आर्गाज्म में हैं। आंतरिक शक्तियों का मिलन हो गया है, वे एक-दूसरे में समाहित हो गई हैं। अब बाहर किसी स्त्री को खोजने की जरूरत नहीं होगी क्योंकि भीतर की स्त्री से मिलन हो गया है। और बुद्ध बाहर की स्त्री से अनासक्त हैं, विरक्त हैं, इसलिए नहीं कि वह स्त्री के विरुद्ध हैं, बल्कि इसलिए कि भीतर परम घटना घट गई है। अब कोई जरूरत न रही। एक आंतरिक वर्तुल पूरा हुआ, संपूर्ण हुआ। यही कारण

है कि बुद्ध के चेहरे पर इतनी गरिमा उतर आती है। यह पूर्ण होने की गरिमा है। अब कुछ कमी न रही, एक गहन परितृप्ति हो गई, अब आगे कोई यात्रा न रही। उन्होंने परम लक्ष्य पा लिया। आंतरिक शक्तियों का मिलन हो गया और कोई संघर्ष न बचा।

लेकिन यह एक कामुक घटना है। ध्यान एक कामुक घटना है, इसीलिए तंत्र को काम-आधारित, काम-उन्मुख कहा जाता है। और ये सभी एक सौ बारह विधियां कामुक हैं। असल में कोई भी ध्यान की विधि गैर-कामुक नहीं हो सकती। लेकिन तुम्हें काम शब्द की विशालता को समझना पड़ेगा। यदि तुम इसे नहीं समझते हो तो परेशान ही रहोगे और गलतफहमी बनी रहेगी।

तो जब भी तंत्र कहता है काम-ऊर्जा तो उसका अर्थ है जीवन-ऊर्जा, स्वयं जीवन की ऊर्जा। वे पर्यायवाची हैं। जिसे भी हम काम कहते हैं, वह जीवन-ऊर्जा का एक आयाम ही है। उसके और भी आयाम हैं। और ऐसा होना भी चाहिए। तुम किसी बीज को अंकुरित होते देखते हो, कहीं किसी वृक्ष पर फूल खिल रहे हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं—पूरी की पूरी घटना कामुक है। यह जीवन है जो कई रूपों में अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। जब कोई पक्षी गा रहा है तो यह एक कामुक आमंत्रण है, एक निमंत्रण है। जब एक फूल तितलियों को और मधु-मक्खियों को आकर्षित कर रहा है तो यह भी एक निमंत्रण है, क्योंकि मक्खियां और तितलियां प्रजनन के लिए बीजों को ले जाएंगी।

अंतरिक्ष में तारे घूम रहे हैं। अभी तक किसी ने इस पर कार्य नहीं किया है, लेकिन यह तंत्र की प्राचीन धारणा है कि पुरुष ग्रह होते हैं और स्त्रैण ग्रह होते हैं, वरना कोई गति न होती। ऐसा होना ही चाहिए क्योंकि चुंबकीय खिंचाव पैदा करने के लिए, आकर्षण पैदा करने के लिए विपरीत ध्रुवों की जरूरत होती है। ग्रह भी पुरुष और स्त्रैण होने ही चाहिए। सभी कुछ दो ध्रुवों में बंटा होना चाहिए। और जीवन इन ध्रुवों के बीच एक लयबद्धता है। विकर्षण और आकर्षण, निकट आना और दूर जाना—यह सब लयबद्धता है।

जहां भी विपरीत का मिलन होता है, तंत्र 'काम' शब्द का उपयोग करता है। यह एक 'कामुक' घटना है। और तुम्हारे भीतर के विरोधी ध्रुवों का कैसे मिलन हो जाए, ध्यान का सारा उद्देश्य यही है। तो ये सारी एक सौ बारह विधियां कामुक हैं। और कुछ नहीं हो सकता, कोई संभावना नहीं है। लेकिन काम शब्द की विराटता को समझने की कोशिश करो।

दूसरा प्रश्न :

आपने कहा कि अस्तित्व एक समग्रता है, कि हर चीज जुड़ी हुई है, कि सब कुछ एक-दूसरे में समाहित हो रहा है, कि वृक्ष सूर्य के बिना नहीं हो सकता और सूर्य भी वृक्ष के बिना नहीं हो सकता। इस संदर्भ में कृपया यह बताएं कि ज्ञान और अज्ञान एक-दूसरे से किस प्रकार जुड़े हुए हैं।

वे जुड़े हैं। ज्ञान और अज्ञान दो विपरीत ध्रुव हैं। ज्ञान तभी संभव है जब अज्ञान हो। यदि संसार से अज्ञान विदा हो जाए तो साथ ही साथ ज्ञान विदा हो जाएगा। लेकिन अपनी द्वैतवादी विचारधारा के कारण हम सदा यही सोचते हैं कि वे विपरीत हैं। असल में वे एक-दूसरे के परिपूरक हैं, विपरीत नहीं हैं। वे परिपूरक हैं, क्योंकि एक-दूसरे के बिना नहीं रह सकते। तो वे शत्रु नहीं हैं। जीवन और मृत्यु शत्रु नहीं हैं क्योंकि यदि जन्म न हो तो मृत्यु भी नहीं हो सकती। जन्म मृत्यु के लिए आधार बनाता है। परंतु यदि मृत्यु न होती तो जन्म भी नहीं हो सकता था। मृत्यु आधारशिला है।

तो जब भी कोई मर रहा होता है तो कोई और पैदा हो रहा होता है। एक क्षण मृत्यु होती है और तत्क्षण अगले ही क्षण जन्म होता है। वे विपरीत दिखाई पड़ते हैं, जहां तक परिधि का सवाल है वे विपरीत दिशा में कार्य करते हैं, लेकिन गहरे में वे मित्र हैं जो एक-दूसरे की मदद कर रहे हैं।

अज्ञान और ज्ञान के बारे में समझना कठिन है क्योंकि हम सोचते हैं कि जब कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है तो अज्ञान पूरी तरह मिट जाता है। ज्ञान के बारे में यह सामान्य धारणा है कि अज्ञान पूरी तरह मिट जाता है।

नहीं, यह सही नहीं है; बल्कि इसके विपरीत, जब कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध होता है तो ज्ञान और अज्ञान दोनों ही मिट जाते हैं। क्योंकि यदि एक हो तो दूसरा भी होगा ही, एक दूसरे के बिना नहीं हो सकता। या तो वे एक साथ होते हैं या एक साथ मिट जाते हैं। वे एक ही चीज के दो पहलू हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम सिक्के के एक पहलू को मिटाकर दूसरे पहलू को नहीं बचा सकते।

तो जब कोई व्यक्ति बुद्ध होता है, उस क्षण वास्तव में दोनों ही मिट जाते हैं–ज्ञान और अज्ञान दोनों मिट जाते हैं। केवल चैतन्य बचता है, शुद्ध आत्मा बचती है; और दोनों संघर्षरत, विरोधी, सहयोगी विपरीत ध्रुव मिट जाते हैं। इसीलिए तो जब बुद्ध से पूछा जाता है कि बुद्धपुरुष को क्या होता है तो कई बार वह मौन रह जाते हैं। वह कहते हैं, 'यह मत पूछो क्योंकि मैं जो भी कहूंगा

झूठ होगा। जो कुछ भी कहूंगा झूठ होगा। यदि मैं कहूं कि वह मौन हो जाता है, तो मौन का विपरीत भी होना चाहिए, वरना वह मौन कैसे अनुभव करेगा? यदि मैं कहूं वह आनंदित हो जाता है, तो उसके साथ-साथ विषाद भी होना ही चाहिए। विषाद के बिना तुम आनंदित कैसे हो सकते हो ?' बुद्ध कहते हैं, 'मैं जो भी कहूंगा झूठ होगा।'

तो बुद्धपुरुष की अवस्था के बारे में वह सतत मौन ही रहते हैं, क्योंकि हमारे सभी शब्द द्वैतवादी हैं। यदि तुम कहो प्रकाश और कोई आग्रह करे कि इसकी परिभाषा करो, तो तुम उसकी परिभाषा कैसे करोगे ? तुम्हें अंधकार को लाना ही पड़ेगा, तभी परिभाषा कर सकोगे। तुम कहोगे कि जहां अंधकार नहीं होता वह प्रकाश है—या ऐसा ही कुछ।

संसार का एक महानतम चिंतक, वोल्टेयर, कहा करता था कि यदि पहले तुम अपने शब्दों को परिभाषित कर सको तभी कोई बातचीत कर सकते हो। लेकिन यह असंभव है। यदि तुम्हें प्रकाश की परिभाषा करनी पड़े तो अंधकार को लाना पड़ेगा। और फिर यदि यह पूछा जाए कि अंधकार क्या है तो उसकी परिभाषा तुम्हें प्रकाश से देनी पड़ेगी, जो कि अपरिभाषित है। सभी परिभाषाएं वर्तुलाकार हैं।

यदि पूछो, मन क्या है ? तो परिभाषा होगी, जो पदार्थ नहीं है। और पदार्थ क्या है ? तो परिभाषा होगी, जो मन नहीं है। दोनों ही शब्द अपरिभाषित हैं और तुम अपने ही साथ एक चाल चल रहे हो। तुम एक शब्द की परिभाषा दूसरे शब्द से करते हो जिसके लिए स्वयं ही परिभाषा की जरूरत है। पूरी भाषा वर्तुलाकार है और विपरीत अनिवार्य है।

तो बुद्ध कहते हैं, 'मैं तो यह भी नहीं कहूंगा कि बुद्धपुरुष होता है।' क्योंकि होने का अर्थ है कि न होना भी मौजूद है। तो वह यह भी नहीं कहेंगे कि बुद्धत्व के बाद तुम मौजूद होते हो क्योंकि होने को न होने से परिभाषित करना पड़ेगा। तब कुछ भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि पूरी भाषा ही विपरीत ध्रुवों से बनी है।

इसीलिए तो उपनिषदों में कहा गया है कि यदि कोई कहे कि वह ज्ञानी है तो भली प्रकार जानना कि वह ज्ञानी नहीं है। क्योंकि वह यह अनुभव ही कैसे कर सकता है कि वह ज्ञानी है ? थोड़ा अज्ञान जरूर बच रहा होगा क्योंकि विपरीत की जरूरत है।

यदि तुम काली दीवार पर सफेद खड़िया से लिखो, दीवार जितनी काली होगी लिखाई उतनी ही सफेद होगी। सफेद दीवार पर तुम सफेद खड़िया से

नहीं लिख सकते। यदि तुम लिखो तो कुछ भी नहीं लिखा जाएगा। विपरीत चाहिए। यदि तुम्हें लगे कि तुम ज्ञानी हो तो उससे पता चलता है कि काली दीवार भी वहीं है, तभी तुम्हें पता लग सकता है। यदि काली दीवार वास्तव में ही समाप्त हो गई है तो लिखाई भी मिट जाएगी। यह एक साथ होता है।

तो एक बुद्ध न तो अज्ञानी होता है न ज्ञानी होता है, वह बस होता है। तुम उसे द्वैत के किसी ध्रुव पर नहीं रख सकते। दोनों ही ध्रुव समाप्त हो गए।

जब दोनों ध्रुव समाप्त हो जाते हैं तो क्या घटता है ? जब दोनों ध्रुव मिल जाते हैं तो वे एक-दूसरे को काट देते हैं और समाप्त हो जाते हैं। दसरे ढंग से तुम यह कह सकते हो कि बुद्ध सबसे अज्ञानी व्यक्ति और सबसे ज्ञानी व्यक्ति दोनों हैं। ध्रुव अपनी अति पर आ गए हैं, वहां एक मिलन हुआ है, और मिलन ने दोनों को ही काट दिया है। ऋण और धन इकट्ठे हो गए हैं। न अब ऋण रहा न धन रहा, क्योंकि वे एक-दूसरे को काट देते हैं। ऋण ने धन को काट दिया और धन ने ऋण को काट दिया, दोनों समाप्त हो गए और एक शुद्ध आत्मा, एक निर्दोष आत्मा बच रही। तुम न तो यह कह सकते हो कि आत्मा ज्ञानी है, न कह सकते हो कि अज्ञानी है–या तुम कह सकते हो कि यह दोनों ही एक साथ है।

बुद्धत्व का अर्थ है वह बिंदु, जहां से तुम अद्वैत में छलांग ले लेते हो। उस बिंदु से पहले द्वैत होता है। सब कुछ बंटा होता है।

किसी ने बुद्ध से पूछा, 'आप कौन हैं ?'

वह हंसे और बोले, 'यह कहना तो कठिन है।'

लेकिन उस आदमी ने बहुत आग्रह किया। उसने कहा, 'कुछ तो कहा ही जा सकता है क्योंकि आप सामने मौजूद हैं। कुछ अर्थपूर्ण कहा जा सकता है। आप कुछ तो हैं।' लेकिन बुद्ध ने कहा, 'कुछ भी नहीं कहा जा सकता। मैं हूं, लेकिन यह कहना भी मुझे असत्य में ले जाता है।' फिर उस आदमी ने दूसरा रास्ता निकाला। उसने पूछा, 'आप पुरुष हैं या स्त्री ?'

बुद्ध ने कहा, 'यह कहना भी कठिन है। कभी मैं पुरुष था, लेकिन तब मेरे सारे प्राण स्त्रियों की ओर आकर्षित थे। जब मैं पुरुष था तो मेरा मन स्त्रियों से भरा हुआ था और जब मेरे मन से स्त्रियां विदा हो गईं तो उनके साथ-साथ मेरा पुरुष भी विदा हो गया। अब मैं नहीं कह सकता। मैं जानता ही नहीं कि मैं कौन हूं। और इसकी परिभाषा करना कठिन है।'

जब द्वैत नहीं रहता तो किसी चीज़ की परिभाषा नहीं की जा सकती। तो यदि तुम्हें लगे कि तुम बुद्धिमान हो तो इसका अर्थ है कि अभी मूढ़ता भी है।

यदि तुम्हें लगे कि तुम आनंदित हो तो इसका अर्थ है तुम अभी भी संसार में हो, विषाद के जगत में हो। यदि तुम कहते हो कि तुम गहन स्वास्थ्य अनुभव करते हो तो इसका अर्थ है कि अभी रोग भी संभव है। विपरीत तुम्हारा पीछा करेगा, तुम एक को पकड़ोगे तो दूसरा पीछा करेगा। तुम्हें दोनों को छोड़ना होगा और छोड़ना तभी होता है जब दोनों मिलते हैं।

तो सभी धर्मों का मूल विज्ञान यही है कि कैसे तुम्हारे अंतर के विपरीत ध्रुवों का मिलन हो, ताकि वे समाप्त हो जाएं और कोई चिह्न भी न बचे। उन विपरीत ध्रुवों के मिटने के साथ ही तुम भी मिट जाओगे। जैसे तुम अभी हो, वैसे नहीं रहोगे और कुछ बिलकुल नया और अज्ञात, कुछ बिलकुल अकल्पनीय अस्तित्व में आएगा। उसे ही ब्रह्म कहा गया है, तुम उसे परमात्मा कह सकते हो। बुद्ध निर्वाण शब्द का उपयोग करते हैं। निर्वाण शब्द का बस इतना ही अर्थ है कि जो कुछ भी था उसका मिट जाना, अतीत का बिलकुल मिट जाना। और इस नए को परिभाषित करने के लिए तुम अपने अतीत के अनुभव और ज्ञान का उपयोग नहीं कर सकते। यह जो नया है, अपरिभाष्य है।

अज्ञान और ज्ञान भी द्वैत के हिस्से हैं। हमें बुद्ध ज्ञानी लगते हैं क्योंकि हम अज्ञान में हैं। स्वयं बुद्ध तो अपनी दृष्टि में दोनों ही नहीं रहे। उनके लिए द्वैत की भाषा में सोचना असंभव है।

तीसरा प्रश्न :
क्या आप कृपया हमें बताएंगे कि कृष्णमूर्ति विधियों के इतने विरोध में क्यों हैं, जब कि शिव तो बहुत सी विधियों के पक्ष में हैं ?

विधियों के विरोध में होना भी एक विधि ही है। केवल कृष्णमूर्ति ही इस विधि का उपयोग नहीं कर रहे हैं, पहले भी कई बार इसका उपयोग किया गया है। यह तो प्राचीनतम विधियों में से एक है, इसमें कुछ नया नहीं है।

दो हजार वर्ष पहले बोधिधर्म ने इसका उपयोग किया। चान या झेन बुद्धिज्म के नाम से जिस धर्म को जाना जाता है, उसे वह चीन लेकर गया था। वह एक हिंदू भिक्षु था, भारत से था। वह अ-विधि में विश्वास करता था। झेन अ-विधि पर आधारित है। झेन गुरु कहते हैं कि यदि तुमने कुछ भी किया तो तुम चूक जाओगे, क्योंकि करेगा कौन ? तुम ! तुम्हीं तो रोग हो और तुमसे कुछ और पैदा नहीं हो सकता। प्रयास कौन करेगा ? तुम्हारा मन ! और तुम्हारा मन ही नष्ट होना है। और तुम मन की मदद से ही मन को नष्ट नहीं कर सकते।

तुम जो भी करोगे, उससे तुम्हारा मन और मजबूत होगा।

तो झेन कहता है कि कोई विधि नहीं है, कोई उपाय नहीं है, कोई शास्त्र नहीं है और कोई गुरु नहीं हो सकता। लेकिन सौंदर्य यह है कि झेन ने महानतम गुरु पैदा किए हैं, और झेन गुरुओं ने संसार के सर्वोत्तम शास्त्र लिखे हैं, और झेन के माध्यम से हजारों-हजारों लोग निर्वाण को उपलब्ध हुए हैं; लेकिन वे कहते हैं कि कोई विधि नहीं है।

तो यह समझने जैसा है कि अ-विधि वास्तव में बुनियादी विधियों में से एक है। 'नकार' पर बल है ताकि तुम्हारे मन का निषेध हो जाए। मन के दो दृष्टिकोण हो सकते हैं, हां या न। यही दो संभावनाएं हैं, दो विकल्प हैं, जैसे कि सब चीजों में होते हैं। 'न' स्त्रैण है और 'हां' पुरुष। तो तुम चाहो तो न की विधि प्रयोग में ला सकते हो, या हां की विधि प्रयोग में ला सकते हो। यदि तुम हां की विधि अपनाओ तो कई विधियां होंगी; लेकिन तुम्हें हां कहना होगा और हां कई हो सकते हैं। यदि तुम न को अपनाओ तो कई विधियां नहीं हैं, बस एक ही विधि है, क्योंकि बहुत न नहीं हो सकते।

इस बात को देखो—संसार में इतने धर्म हैं, इतने तरह के आस्तिक हैं। अभी कम से कम तीन सौ धर्म हैं। तो आस्तिकता के तीन सौ मंदिर, चर्च और शास्त्र हैं। लेकिन नास्तिकता केवल एक ही तरह की है, दो नास्तिकताएं नहीं हो सकतीं। नास्तिकों का कोई संप्रदाय नहीं है। जब तुम कहते हो कि कोई परमात्मा नहीं है तो बात समाप्त हो गई। तुम दो न में भेद नहीं कर सकते। लेकिन जब तुम कहते हो, 'हां परमात्मा है' तो भेद की संभावना है। क्योंकि मेरी हां मेरा अपना परमात्मा पैदा करेगी और तुम्हारी हां तुम्हारा परमात्मा पैदा करेगी। तुम्हारी हां जीसस के लिए हो सकती है, मेरी हां कृष्ण के लिए हो सकती है; लेकिन जब तुम न कहते हो तो सभी न एक जैसी होती हैं।

यही कारण है कि पृथ्वी पर नास्तिकता के कोई संप्रदाय नहीं हैं। नास्तिक एक जैसे हैं। उनका कोई शास्त्र नहीं है, उनका कोई चर्च नहीं है। जब उनका कोई विधायक दृष्टिकोण ही नहीं है तो असहमत होने के लिए कुछ बचता ही नहीं, एक साधारण सी न ही पर्याप्त है। ऐसा ही विधियों के साथ है—न की केवल एक विधि है, हां की एक सौ बारह हैं, या और भी बहुत सी संभव हैं। तुम नई-नई विधियां पैदा कर सकते हो।

किसी ने कहा है कि मैं जो विधि सिखाता हूं, सक्रिय ध्यान, वह इन एक सौ बारह विधियों में नहीं है। वह इनमें नहीं है क्योंकि वह एक नया मिश्रण है, लेकिन जो कुछ भी उसमें है वह इन एक सौ बारह विधियों में है। कोई

भाग किसी विधि में है, कोई भाग किसी दूसरी विधि में है। ये एक सौ बारह बुनियादी विधियां हैं। उनसे तुम हजारों विधियां बना ले सकते हो। उसका कोई अंत नहीं है। कितने ही जोड़ संभव हैं।

लेकिन जो कहते हैं कि कोई विधि नहीं है, उनकी बस एक ही विधि हो सकती है। निषेध से तुम कुछ बहुत अधिक पैदा नहीं कर सकते। तो बोधिधर्म, लिंची, बोकोजू, कृष्णमूर्ति ही केवल एक ही विधि है। असल में कृष्णमूर्ति ठीक झेन गुरुओं की शृंखला में ही आते हैं। वह झेन बोल रहे हैं। उसमें कुछ भी नया नहीं है। लेकिन झेन सदा नया दिखाई पड़ता है। और कारण यह है कि झेन शास्त्रों में विश्वास नहीं करता, परंपरा में विश्वास नहीं करता, विधियों में विश्वास नहीं करता।

तो जब भी न उठता है तो वह ताजा और नया होता है। 'हां' परंपरा में, शास्त्रों में, गुरुओं में विश्वास करता है। जब भी 'हां' होगा उसकी एक लंबी, आरंभहीन परंपरा होगी। जिन्होंने भी हां कहा है, कृष्ण हों कि महावीर, वे कहे चले जाते हैं कि वे कुछ नया नहीं कह रहे। महावीर कहते हैं, 'मुझसे पहले तेईस तीर्थंकरों ने यही सिखाया है।' और कृष्ण कहते हैं, 'मुझसे पहले एक ऋषि ने दूसरे ऋषि को संदेश दिया, दूसरे ऋषि ने तीसरे को दिया, और यह चलता चला आ रहा है। मैं कुछ भी नया नहीं कह रहा।'

'हां' सदा पुराना होगा, शाश्वत होगा। 'न' सदा नया लगेगा, जैसे अचानक अस्तित्व में आ गया हो। 'न' की कोई पारंपरिक जड़ें नहीं हो सकतीं। वह बिना जड़ों के है। इसीलिए कृष्णमूर्ति नए लगते हैं। नए वह हैं नहीं।

विधियों से इनकार करने की यह विधि क्या है ? इसका उपयोग किया जा सकता है। यह मन को मारने और नष्ट करने का एक सूक्ष्मतम उपाय है। मन किसी ऐसी चीज को पकड़ना चाहता है जो सहारा बने। मन के होने के लिए सहारे की जरूरत है, वह शून्य में नहीं हो सकता। तो वह कई तरह के सहारे बनाता है—चर्च, शास्त्र, बाइबिल, कुरान, गीता—तब वह सुखी होता है कि पकड़ने को कुछ है। लेकिन फिर इस पकड़ने के कारण मन भी बना रहता है।

अ-विधि की यह विधि सब सहारे नष्ट कर देने पर बल देती है। तो वह बल देगी कि कोई शास्त्र नहीं होना चाहिए। कोई बाइबिल मदद नहीं कर सकती, क्योंकि बाइबिल शब्दों के सिवाय और कुछ भी नहीं है। कोई गीता किसी तरह की मदद नहीं कर सकती क्योंकि गीता से तुम जो भी जानोगे वह उधार होगा और सत्य उधार नहीं हो सकता। कोई परंपरा किसी काम की नहीं है क्योंकि

सत्य को मौलिक रूप से, निजी रूप से उपलब्ध करना होता है। तुम्हें उसे पाना पड़ता है, उसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता। कोई गुरु तुम्हें सत्य नहीं दे सकता क्योंकि वह संपदा जैसी कोई वस्तु नहीं है। वह हस्तांतरित नहीं किया जा सकता, सिखाया नहीं जा सकता क्योंकि वह कोई जानकारी नहीं है। यदि कोई गुरु तुम्हें सिखाता है तो तुम केवल शब्द, धारणाएं, सिद्धांत सीख सकते हो। कोई गुरु तुम्हें आत्मबोध नहीं दे सकता। वह आत्मबोध तुम्हें होगा और बिना किसी सहयोग के होगा। यदि वह किसी सहयोग से हुआ तो वह दूसरे पर आश्रित है और तुमको परम मुक्ति की ओर, मोक्ष की ओर नहीं ले जा सकता।

ये अ-विधि के अंग हैं। इन आलोचनाओं, निषेधों और विवादों से सहारे नष्ट हो जाते हैं। फिर तुम बिना किसी गुरु, बिना शास्त्र, बिना परंपरा, बिना चर्च के अकेले रह जाते हो, न कहीं आना है, न कहीं जाना है, न कहीं आश्रित होना है। तुम एक शून्य बच रहे। और वास्तव में यदि तुम इस शून्य की कल्पना कर सको और उसमें होने को तैयार होओ तो तुम रूपांतरित हो जाओगे।

लेकिन मन बड़ा चालाक है। यदि कृष्णमूर्ति कहते हैं कि न गुरु को पकड़ना है, न शास्त्र को, न विधि को; तो तुम कृष्णमूर्ति को पकड़ लोगे। कई लोगों ने उन्हें पकड़ा हुआ है। मन ने फिर एक सहारा बना लिया और फिर पूरी बात ही बिगड़ गई।

कई लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, 'हमारे मन अशांत हैं। आंतरिक शांति कैसे पाएं ? आंतरिक मौन कैसे पाएं ?' और यदि मैं उन्हें कोई विधि देता हूं तो वे कहते हैं, 'लेकिन विधियां काम नहीं दे सकतीं क्योंकि हम कृष्णमूर्ति को सुनते रहे हैं।' तब मैं उनसे पूछता हूं, 'फिर तुम मेरे पास क्यों आए हो ? और जब तुम पूछते हो कि शांति कैसे पाएं, तो तुम्हारा अर्थ क्या है ? तुम विधि मांग रहे हो और अभी भी कृष्णमूर्ति को सुन रहे हो। क्यों ? यदि कोई गुरु नहीं है और सत्य सिखाया नहीं जा सकता तो तुम उन्हें सुनने क्यों जा रहे हो ? वह तुम्हें कुछ भी नहीं सिखा सकते। लेकिन तुम उन्हें सुनते चले जाते हो और वही तुम सीखते जा रहे हो। और अब तुमने यह अ-विधि पकड़ ली है। तो जब भी तुम्हें कोई विधि देगा तुम कहोगे, नहीं, हम विधियों में विश्वास नहीं करते। और तुम अभी भी शांत नहीं हो। तो क्या हुआ है ? तुम कहां चूक गए हो ? यदि सच में ही तुम्हें अ-विधि की जरूरत है, यदि अ-विधि ही तुम्हारी विधि है, तो जरूर तुम उपलब्ध हो गए होओगे। लेकिन तुम उपलब्ध नहीं हुए।'

मूल बात पर ही चूक हो गई, इस अ-विधि की विधि के सफल होने के लिए बुनियादी बात यह है कि तुम्हें सब सहारे नष्ट कर देने चाहिए, तुम्हें कुछ

भी नहीं पकड़ना चाहिए! और यह बड़ा कठिन है। लगभग असंभव ही है। यही कारण है कि चालीस-चालीस वर्षों से लोग कृष्णमूर्ति को सुनते रहे हैं लेकिन उन्हें कुछ भी उपलब्ध नहीं हुआ। किसी सहारे के बिना बिलकुल अकेले रहना और इतने होश में रहना कि मन को कोई सहारा नहीं बनाना है, इतना कठिन है, इतना दुष्कर है, कि लगभग असंभव ही है। क्योंकि मन बहुत चालाक है, बार-बार सूक्ष्म सहारे खड़े कर सकता है। तुम गीता फेंक सकते हो, लेकिन फिर तुम कृष्णभूर्ति की पुस्तकों से वही जगह भर लेते हो। तुम मोहम्मद पर हंस सकते हो, महावीर पर हंस सकते हो, लेकिन यदि कोई कृष्णमूर्ति पर हंसे तो तुम्हें क्रोध आ जाता है। फिर दूसरी तरह से तुमने सहारा बना लिया, कुछ पकड़ लिया।

कोई पकड़ न होना ही विधि का राज है। यदि तुम इसे कर सको तो ठीक है, यदि न कर सको तो स्वयं को धोखा मत दो। फिर विधियां हैं, उनका उपयोग करो ! फिर स्पष्ट समझ लो कि तुम अकेले नहीं हो सकते और तुम्हें किसी का सहयोग चाहिए। सहयोग संभव है। सहयोग से भी रूपांतरण संभव है।

ये विरोधी हैं; हां और न विरोधी हैं। तुम किसी से भी शुरू कर सकते हो, लेकिन तुम्हें अपने मन और उसके कार्य करने के ढंग का निश्चय करना पड़ेगा। यदि तुम्हें लगे कि तुम अकेले हो सकते हो...।

एक बार ऐसा हुआ कि मैं किसी गांव में ठहरा हुआ था तो एक आदमी आया और मुझसे बोला, 'मैं बड़ा परेशान हूं। मेरे घर वाले मेरी शादी करना चाहते हैं।' वह जवान आदमी था, अभी-अभी विश्वविद्यालय से आया था। वह बोला, 'मैं इस सब में पड़ना नहीं चाहता। मैं संन्यासी बनना चाहता हूं, सब कुछ त्याग देना चाहता हूं। तो आपकी सलाह क्या है ?' मैंने उसे कहा, 'मैं तो किसी से भी पूछने नहीं गया, लेकिन तुम मेरी सलाह मांगने आए हो। और तुम सलाह मांगने आए हो इससे पता चलता है कि तुम्हें सहारे की जरूरत है! तुम्हारे लिए पत्नी के बिना जीना कठिन होगा। वह भी एक सहारा है।'

तुम अपनी पत्नी के बिना नहीं जी सकते, तुम अपने पति के बिना नहीं जी सकतीं, लेकिन क्या तुम सोचते हो गुरु के बिना जी सकते हो ? असंभव! तुम्हारा मन हर तरह से सहारा खोजता है। तुम कृष्णमूर्ति के पास किसलिए जाते हो ? तुम सीखने जाते हो, सिखाए जाने के लिए जाते हो, ज्ञान उधार मांगने जाते हो। वरना तो कोई जरूरत नहीं है।

कई बार मित्रों ने मुझे कहा है, 'अच्छा होता यदि आप और कृष्णमूर्ति मिलते।' तो मैंने उनसे कहा, 'कृष्णमूर्ति से पूछो और यदि वह मिलना चाहें तो मैं

आ जाऊंगा। लेकिन वहां होगा क्या ? हम करेंगे क्या ? हम क्या बातचीत करेंगे ? हम मौन रहेंगे। तो जरूरत ही क्या है ?' लेकिन वे कहते हैं, 'यदि आप दोनों मिलते तो बहुत अच्छा होता। हमारे लिए अच्छा होता। आप जो कहेंगे उसे सुनकर हमें बड़ा सुख होगा।'

तो मैं उन्हें एक कहानी कहता हूं। एक बार ऐसा हुआ कि एक मुसलमान फकीर, फरीद, यात्रा कर रहे थे। जब वे दूसरे संत कबीर के गांव के निकट पहुंचे तो फरीद के शिष्यों ने कहा कि यदि वे दोनों मिलें तो बहुत अच्छा होगा। और जब कबीर के शिष्यों को यह पता चला तो उन्होंने भी आग्रह किया कि जब फरीद गुजर रहे हैं तो उन्हें निमंत्रित करना चाहिए। तो कबीर ने कहा, 'ठीक है।' फरीद ने भी कहा, 'ठीक है। हम चलेंगे, लेकिन जब मैं कबीर की कुटिया में प्रवेश करूं तो कुछ भी कहना मत, बिलकुल मौन रहना।'

दो दिन तक फरीद कबीर की कुटिया में रहे। दो दिन तक वे मौन बैठे रहे। और फिर कबीर गांव की सीमा तक फरीद को विदा करने आए, और मौन में ही वे विदा हुए। जैसे ही वे विदा हुए दोनों के शिष्य पूछने लगे।

कबीर के शिष्यों ने उनसे पूछा, 'यह क्या हुआ ? यह भी खूब रही ! आप दो दिन तक मौन ही बैठे रहे, एक शब्द भी नहीं बोले, और हम सुनने को इतने उत्सुक थे !' फरीद के शिष्यों ने भी कहा, 'यह क्या हुआ ? बड़ा अजीब लगा। हम दो दिन तक देखते ही रहे, देखते ही रहे, इंतजार करते रहे कि इस मिलन से कुछ निकले। लेकिन कुछ हुआ नहीं।'

कहते हैं फरीद ने कहा, 'तुम्हारा मतलब क्या है ? दो ज्ञानी बात नहीं कर सकते; दो अज्ञानी बहुत बात कर सकते हैं, लेकिन सब व्यर्थ है, बल्कि हानिकारक है। एकमात्र संभावना यह है कि एक ज्ञानी अज्ञानी से बात करे।' और कबीर ने कहा, 'जो कोई एक शब्द भी बोलता वह यही सिद्ध करता कि वह अज्ञानी है।'

तुम सलाहें मांगे चले जाते हो, सहारे खोजते रहते हो। इसे अच्छी तरह से समझ लो कि यदि तुम सहारे के बिना नहीं रह सकते हो तो अच्छा है कि समझ-बूझ कर कोई सहारा, कोई मार्गदर्शक चुन लो। यदि तुम सोचते हो कि कोई जरूरत नहीं है, कि तुम स्वयं ही पर्याप्त हो, तो कृष्णमूर्ति या किसी और से पूछना बंद करो। आना-जाना बंद करो और अकेले ही रहो।

ऐसे लोगों को भी घटना घटी है जो अकेले थे। लेकिन यह कभी-कभार ही होता है, करोड़ों में किसी एक व्यक्ति को। वह भी बिना किसी कारण के नहीं। वह व्यक्ति कई जन्मों से खोजता रहा होगा; वह कई सहारे, कई गुरु,

कई मार्गदर्शक खोज चुका होगा और अब ऐसे बिंदु पर पहुंच गया है जहां अकेला हो सकता है। केवल तभी ऐसा होता है। लेकिन जब भी किसी व्यक्ति के साथ ऐसा होता है कि अकेला ही वह परम को उपलब्ध कर लेता है तो वह कहने लगता है कि ऐसा तुम्हें भी हो सकता है। यह स्वाभाविक है।

क्योंकि कृष्णमूर्ति को यह अकेले हुआ तो वह कहे चले जाते हैं कि तुम्हें भी हो सकता है। तुम्हें ऐसा नहीं हो सकता ! तुम सहारे की खोज में हो और उससे पता चलता है कि तुम यह अकेले नहीं कर सकते। तो अपने से ही धोखा मत खाओ ! हो सकता है तुम्हारे अहंकार को अच्छा लगे कि मुझे किसी सहारे की जरूरत नहीं है ! अहंकार सदा इसी भाषा में सोचता है कि 'मैं अकेला ही पर्याप्त हूं।' लेकिन वह अहंकार काम नहीं आएगा। वह तो सबसे बड़ी बाधा बन जाएगा।

अ-विधि भी एक विधि है, लेकिन कुछ खास लोगों के लिए। उनके लिए, जो कई जन्मों में संघर्ष किए हैं और अब ऐसे बिंदु पर पहुंच गए हैं जहां अकेले हो सकते हैं, यह विधि काम देगी। और यदि तुम उस तरह के व्यक्ति हो तो मैं अच्छी तरह जानता हूं कि तुम यहां नहीं होओगे। तो मुझे उस व्यक्ति की चिंता नहीं है, वह यहां होगा ही नहीं। वह यहां हो ही नहीं सकता। यहां पर ही नहीं, कहीं पर भी, किसी भी गुरु को सुनता हुआ, पूछता, खोजता, अभ्यास करता वह नहीं होगा। वह कहीं नहीं मिलेगा। तो उसे तो हम छोड़ सकते हैं, हमें उसकी बात भी करने की जरूरत नहीं है।

ये विधियां तुम्हारे लिए हैं। तो अंत में मैं यही कहना चाहूंगा कि कृष्णमूर्ति उस व्यक्ति के लिए बोल रहे हैं जो वहां जाएगा ही नहीं, और मैं उन लोगों के लिए बोल रहा हूं जो यहां हैं। कृष्णमूर्ति जो भी कह रहे हैं वह बिलकुल सही है, लेकिन जिन लोगों से कह रहे हैं वे बिलकुल गलत हैं। जो आदमी अकेला हो सकता है, जो बिना किसी विधि, बिना किसी सहारे, बिना किसी शास्त्र, बिना किसी गुरु के पहुंच सकता है, वह कृष्णमूर्ति को सुनने नहीं जाएगा क्योंकि कोई जरूरत ही नहीं है, कोई अर्थ ही नहीं है। और जो लोग सुनेंगे, वे उस तरह के नहीं हैं, उन्हें बड़ी कठिनाई होगी।

और वे कठिनाई में हैं। उन्हें सहारे की जरूरत है और उनका मन सोचता है कि उन्हें सहारे की कोई जरूरत नहीं है। उन्हें गुरु की जरूरत है और उनका मन कहता है कि गुरु तो एक बाधा है। उन्हें विधियों की जरूरत है और तर्कपूर्ण ढंग से उन्होंने निष्कर्ष निकाल लिया है कि विधियां मदद नहीं कर सकतीं। वे बड़ी दुविधा में हैं, लेकिन दुविधा उन्होंने ही खड़ी की है।

तुम कुछ भी करना शुरू करो उससे पहले तुम्हें यह समझ लेना चाहिए कि तुम्हारा मन किस तरह का है, क्योंकि अंततः गुरु अर्थपूर्ण नहीं है, अंततः तुम्हारा मन ही अर्थपूर्ण है। अंतिम निर्णय तुम्हारे मन से ही आएगा, लक्ष्य तुम्हारे मन से ही प्राप्त होगा। तो बिना किसी अहंकार में उलझे इसे समझो।

बस इतना समझ लो कि कहीं तुम्हें सहारा, मार्गदर्शन या उपाय तो नहीं चाहिए। यदि तुम्हें उनकी जरूरत है तो खोज लो। यदि तुम्हें उनकी जरूरत नहीं है तो कोई प्रश्न ही नहीं है; अकेले रहो, बिना किसी सहारे के; अकेले चलो, बिना कुछ पकड़े। दोनों बातों से वही होगा।

हां और न दो विपरीत ध्रुव हैं और तुम्हें खोज लेना है कि तुम्हारा मार्ग क्या है।

अंतिम प्रश्न :

आपने कहा कि शिव कोई व्यवस्था बिठाने वाले नहीं थे और उनकी शिक्षाओं के आस-पास कोई संप्रदाय नहीं खड़ा किया जा सकता। लेकिन बुद्ध, महावीर, जीसस और गुरजिएफ जैसे लोग तो बड़ी व्यवस्था बिठाने वाले लोग लगते हैं। उन्हें व्यवस्था क्यों बिठानी पड़ती है ? कृपया व्यवस्था के लाभ और हानियां बताएं और क्या आप बहु-व्यवस्था के रचयिता हैं ?

दो संभावनाएं हैं—तुम लोगों की मदद के लिए कोई व्यवस्था बिठा सकते हो, लोगों की मदद के लिए बहुत-सी व्यवस्थाएं बिठा सकते हो; या फिर, लोगों की मदद के लिए व्यवस्थाओं को नष्ट करने की कोशिश कर सकते हो। फिर वही हां और न, फिर वही विपरीत ध्रुव। और दोनों तरह से तुम लोगों की मदद कर सकते हो।

बोधिधर्म व्यवस्था तोड़ने वाले हैं, कृष्णमूर्ति व्यवस्था तोड़ने वाले हैं, झेन की पूरी परंपरा व्यवस्था तोड़ने वालों की है। महावीर, मोहम्मद, जीसस, गुरजिएफ बड़े व्यवस्था बनाने वाले हैं। समस्या सदैव यही है कि हम दो विरोधाभासों को एक साथ नहीं समझ सकते। हम सोचते हैं कि दोनों में से एक ही सही हो सकता है, लेकिन दोनों सही नहीं हो सकते। यदि व्यवस्था बनाने वाले सही हैं तो हमारा मन कहता है कि व्यवस्था तोड़ने वाले गलत ही होने चाहिए। और यदि व्यवस्था तोड़ने वाले सही हैं तो व्यवस्था बनाने वाले गलत होने चाहिए।

नहीं, दोनों ही सही हैं। व्यवस्था का अर्थ है अनुसरण करने के लिए एक मार्ग, अनुसरण करने के लिए एक स्पष्ट मार्ग ताकि कोई संदेह न उठे, कोई

अनिर्णय न उठे और तुम पूर्ण विश्वास के साथ अनुसरण कर सको। इसे याद रखो—व्यवस्था का निर्माण भरोसा पैदा करने के लिए, श्रद्धा पैदा करने के लिए होता है। यदि सब कुछ स्पष्ट हो तो अधिक सरलता से श्रद्धा पैदा हो जाएगी। यदि बड़े हिसाब से तुम्हारे सब प्रश्नों के उत्तर दे दिए जाएं तो तुम असंदेह की स्थिति में आ जाओगे। और आगे बढ़ सकोगे।

तो कई बार महावीर तुम्हारे बेतुके प्रश्नों का उत्तर भी देते हैं। वे बेकार के प्रश्न हैं, व्यर्थ हैं, लेकिन वह उत्तर देंगे। और वह इस तरह से उत्तर देंगे कि वह उत्तर तुम्हें श्रद्धा पाने में सहयोग दे, क्योंकि श्रद्धा बहुत जरूरी होती है। जब भी कोई अज्ञात में प्रवेश करने का प्रयास करता है तो एक गहन श्रद्धा की जरूरत होती है, वरना तो आगे बढ़ना ही असंभव हो जाएगा। यह इतना खतरनाक होगा कि तुम डर जाओगे। वहां अंधकार है, मार्ग स्पष्ट नहीं है, सब कुछ अनिश्चित है और हर कदम तुम्हें और-और असुरक्षा में ले जाता है।

इसलिए व्यवस्था की जरूरत है ताकि सब कुछ सुनियोजित हो जाए—तुम्हें स्वर्ग और नर्क और परम मोक्ष के बारे में सब पता हो; और तुम कहां से चलोगे, कहां से गुजरोगे, इंच-इंच सुनिश्चित हो। उससे तुम्हें सुरक्षा मिलती है, एक भाव होता है कि सब कुछ ठीक-ठाक है। तुमसे पहले भी लोग वहां गए हैं, और तुम निर्जन में नहीं जा रहे, अज्ञात में नहीं जा रहे। व्यवस्था से ऐसा लगता है कि सब ज्ञात है। वह तुम्हें मदद देने के लिए, बस एक सहारा देने के लिए है। और यदि तुममें भरोसा हो तो आगे बढ़ने के लिए तुम्हारे पास ऊर्जा होगी। यदि तुम्हें संदेह है तो तुम ऊर्जा व्यर्थ गंवाओगे और आगे बढ़ना कठिन होगा।

तो व्यवस्था बनाने वालों ने हर तरह के प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास किया है और उन्होंने एक साफ और स्पष्ट नक्शा बना दिया है। उस नक्शे को हाथ में लेकर तुम्हें लगता है कि सब ठीक है, तुम आगे बढ़ सकते हो।

लेकिन मैं तुम्हें कहता हूं कि हर व्यवस्था कामचलाऊ है। हर व्यवस्था बस तुम्हारे मदद करने के लिए है। वह वास्तविक नहीं है। कोई भी व्यवस्था वास्तविक नहीं हो सकती। वह बस एक उपाय है। लेकिन वह इसीलिए तुम्हारी मदद करती है क्योंकि तुम्हारा पूरा व्यक्तित्व ही इतना झूठा है कि केवल झूठे उपाय ही मदद कर सकते हैं। तुम झूठ में जीते हो, सत्य को नहीं समझ सकते। व्यवस्था का अर्थ है थोड़ा कम झूठ, फिर और भी कम झूठ, और फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे सत्य के करीब और करीब आते जाना। जब सत्य तुम पर प्रकट होगा तो व्यवस्था तुम्हारे लिए व्यर्थ हो जाएगी, छूट ही जाएगी।

जब सारिपुत्त बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, परम लक्ष्य पर पहुंचा, तो उसने

वहां से पीछे मुड़कर देखा और पाया कि सारी व्यवस्था विदा हो गई है। जो कुछ भी उसे सिखाया गया था, कुछ भी नहीं बचा था। तो उसने बुद्ध से कहा, 'मुझे जो भी व्यवस्था सिखाई गई थी, सब विदा हो गई है।'

बुद्ध ने उसे कहा, 'मौन रह, दूसरों को मत बता ! वह विदा हो गई है, उसे विदा होना ही था, क्योंकि वह कभी थी ही नहीं, बस एक कल्पना थी। लेकिन उसने तुझे इस बिंदु तक पहुंचने में मदद की। उनको मत बताना जो अभी पहुंचे नहीं हैं, क्योंकि यदि उन्हें पता लग गया कि जहां वे जा रहे हैं वहां कोई ज्ञान नहीं है तो वे रुक जाएंगे। अज्ञात में वे बिना सुरक्षा के नहीं जा सकते, अकेले नहीं जा सकते।'

ऐसा कई बार होता है। यह मेरा अपना अनुभव रहा है कि लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, 'अब ध्यान गहरा हो रहा है लेकिन हमें डर लगता है।' अब तुम्हें मर जाने जैसा डर लगता है, जैसे कि मृत्यु पास आ रही हो, तो एक परम अनुभूति आएगी ही। जब ध्यान अपने शिखर पर पहुंचता है तो मृत्यु जैसा लगता है। मैं उन्हें कहता हूं, 'चिंता मत करो, मैं तुम्हारे साथ हूं।' फिर उन्हें ठीक लगता है। मैं वहां हो नहीं सकता, असंभव है। कोई भी वहां साथ नहीं जा सकता। यह एक झूठ है। कोई भी वहां नहीं जा सकता, तुम अकेले ही जाओगे। वह बिलकुल एकाकी स्थान है। लेकिन जब मैं कहता हूं कि मैं वहां होऊंगा, तुम चिंता मत करो, तुम आगे बढ़ो, तो उन्हें अच्छा लगता है और वे आगे बढ़ जाते हैं।

यदि मैं कहूं कि तुम अकेले ही होओगे और कोई भी वहां नहीं होगा, तो वे पीछे हट जाएंगे। वह बिंदु आ गया है जहां भय उठेगा ही। खाई सामने है और वे गिरने वाले हैं, गिरने में मुझे उनकी मदद करनी ही चाहिए। तो मैं कहता हूं कि मैं वहां हूं, तुम बस छलांग ले लो। और वे छलांग ले लेते हैं ! छलांग लेने के बाद उनको पता चलेगा कि वहां कोई भी नहीं था। लेकिन अब तो सारी बात ही समाप्त हो गई, वे वापस नहीं आ सकते।

तो यह एक उपाय है। सभी व्यवस्थाएं मदद करने के उपाय हैं—उन लोगों की मदद के लिए जो संदेह से भरे हैं, उन लोगों की मदद के लिए जिनमें श्रद्धा नहीं है, उन लोगों की मदद के लिए जिनमें भरोसा नहीं है। व्यवस्थाएं इसलिए खड़ी की जाती हैं कि लोग निश्चिंत होकर अज्ञात में प्रवेश कर सकें। उन व्यवस्थाओं में सब कुछ कहानियों जैसा होता है।

इसीलिए तो इतनी व्यवस्थाएं हैं। महावीर अपनी व्यवस्था बनाते हैं। वह व्यवस्था उनके शिष्यों की आवश्यकताओं के अनुसार बनाई गई है। तो वह एक

व्यवस्था बनाते हैं। यह एक कल्पना है, लेकिन बड़ी सहयोगी है, क्योंकि इसके द्वारा कई लोग चले और सत्य तक पहुंचे। और जब वे पहुंचे तो उन्हें पता चल गया कि व्यवस्था झूठ थी, लेकिन उसने काम किया।

बुद्ध सत्य की परिभाषा ही यही करते हैं कि 'जो काम दे'। सत्य की उनकी परिभाषा ही यही है कि 'जो काम दे'। यदि झूठ भी काम आ जाए तो वह सत्य है और यदि कोई सत्य भी काम न आ सके तो झूठ ही है।

इतनी व्यवस्थाएं हैं और हर व्यवस्था मदद करती है। लेकिन सब व्यवस्थाएं सबकी मदद नहीं कर सकतीं। इसीलिए तो पुराने धर्म इस बात पर बल देते थे कि व्यक्ति को अपना धर्म नहीं बदलना चाहिए, क्योंकि समय के साथ मन को तो किसी व्यवस्था में संस्कारित किया जा सकता है और बदला जा सकता है, लेकिन गहरे में तुम नहीं बदलोगे और नई व्यवस्था तुम्हारे लिए कभी उपयोगी नहीं होगी।

एक हिंदू ईसाई बन सकता है, एक ईसाई हिंदू बन सकता है, लेकिन सात वर्ष की उम्र के बाद मन लगभग जड़ हो जाता है, संस्कारित हो जाता है। तो यदि कोई हिंदू ईसाई बन जाए तो गहरे में वह हिंदू ही रहेगा और ईसाई व्यवस्था उसकी मदद नहीं करेगी। और स्वयं की व्यवस्था में उसने संबंध खो दिया है जो काम आ सकती थी।

हिंदू और यहूदी हमेशा धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध रहे हैं। धर्म-परिवर्तन के विरुद्ध ही नहीं, यदि कोई अपने आप उनके धर्म में भी आना चाहे तो वे विरोध करेंगे। वे कहेंगे, नहीं, अपने ही मार्ग पर चलो।' क्योंकि व्यवस्था बड़ी अचेतन घटना है; उसे गहरे अचेतन में होना चाहिए, तभी मदद कर सकती है। वरना वह मदद नहीं कर सकती और वह ऊपर-ऊपर ही होगी। यह भाषा की तरह ही है। तुम कोई भाषा इस तरह नहीं बोल सकते जिस तरह अपनी मातृभाषा बोलते हो, यह असंभव ही है। इसके बाबत कुछ किया नहीं जा सकता। किसी और भाषा में तुम कितने ही कुशल हो जाओ, वह उथली-उथली ही रहेगी। गहरे में तुम्हारी मातृभाषा तुमको प्रभावित करती रहेगी। तुम्हारे सपने तुम्हारी मातृभाषा में ही होंगे, अचेतन तुम्हारी मातृभाषा से चलेगा। कुछ भी ऊपर से लादा जा सकता है, लेकिन उसे हटाकर कुछ और नहीं लाया जा सकता।

धार्मिक व्यवस्थाएं भाषा की तरह हैं, वे भाषा ही हैं। लेकिन यदि वे गहरे प्रवेश कर जाएं तो मदद करती हैं क्योंकि तुम्हें भरोसा आ जाता है। व्यवस्था अर्थपूर्ण नहीं है, लेकिन भरोसा अर्थपूर्ण है। तुम्हें भरोसा होता है तो तुम एक निश्चित कदम उठा लेते हो। तुम्हें पता होता है कि तुम कहां जा रहे हो। और

यह पता होना मदद करता है।

लेकिन व्यवस्था तोड़ने वाले भी होते हैं और वे भी मदद करते हैं। इसमें एक लयपूर्ण वर्तुल होता है, बिलकुल दिन और रात की तरह--फिर से दिन होता है, फिर रात आती है। वे भी मदद करते हैं। क्योंकि कई बार ऐसा होता है कि जब इतनी व्यवस्थाएं होती हैं तो लोग उलझन में पड़ जाते हैं, और नक्शों से चलने की बजाय, नक्शे इतने बोझिल हो जाते हैं कि वे उन्हें ढो भी नहीं सकते। ऐसा हमेशा होता है।

उदाहरण के लिए, कोई परंपरा, कोई बहुत लंबी परंपरा सहयोगी होती है क्योंकि वह भरोसा देती है कि वह इतनी लंबी है। लेकिन क्योंकि वह इतनी लंबी है, इसलिए बोझिल भी होती है, वह एक मृत बोझ बन जाती है। तो चलने में तुम्हारी मदद करने के बजाय उसके ही कारण तुम चल नहीं सकते। तुम्हें भारमुक्त होना पड़ेगा। तो परंपरा तोड़ने वाले होते हैं जो तुम्हारे मन से व्यवस्था को हटाते हैं और चलने में तुम्हारी मदद करते हैं।

वे दोनों ही मदद करते हैं, लेकिन यह निर्भर करता है। यह युग पर निर्भर करता है, उस व्यक्ति पर निर्भर करता है जिसकी मदद की जानी है।

इस युग में व्यवस्थाएं बहुत बोझिल और उलझन भरी हो गई हैं। कई कारणों से पूरी बात ही खो गई है। पहले हर व्यवस्था अपने ही जगत में सीमित थी—जैन पैदा भी जैन की तरह होता था, जीता भी जैन की तरह था और मरता भी जैन की तरह ही था। वह हिंदू शास्त्रों का अध्ययन नहीं करता था, इसका निषेध था। वह मस्जिद या चर्च में नहीं जाता था, वह पाप था। वह अपनी ही व्यवस्था की चारदीवारी में रहता था। कुछ भी विजातीय उसके मन में प्रवेश नहीं करता था। तो कोई उलझन नहीं होती थी।

लेकिन वह सब नष्ट हो गया है और सभी लोग सब बातों से परिचित हैं। हिंदु कुरान पढ़ रहे हैं और मुसलमान गीता पढ़ रहे हैं। ईसाई पूर्व की ओर का रहे हैं और पूर्व पश्चिम की ओर जा रहा है। सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है। व्यवस्था से जो भरोसा आता था, वह अब नहीं रहा। सब कुछ तुम्हारे मन में प्रवेश कर गया है और सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है। अब अकेले जीसस ही नहीं हैं, कृष्ण भी प्रवेश कर गए हैं, मोहम्मद भी प्रवेश कर गए हैं। और तुम्हारे भीतर एक-दूसरे का विरोध कर रहे हैं। अब कुछ भी निश्चित नहीं है।

बाइबिल एक बात कहती है और गीता बिलकुल विपरीत बोलती है। मोहम्मद एक बात कहते हैं और महावीर उनके बिलकुल विपरीत बोलते हैं। उन दोनों ने एक-दूसरे का विरोध किया है। तुम कहीं के भी न रहे। तुम कहीं

के भी नहीं हो, बस उलझन में खड़े हो। कोई भी मार्ग तुम्हारा नहीं है। मन की ऐसी दशा में व्यवस्था तोड़ना सहयोगी हो सकता है।

इसीलिए पश्चिम में कृष्णमूर्ति का इतना आकर्षण है। पूर्व में उनका इतना आकर्षण नहीं है क्योंकि पूर्व अभी भी उतना उलझन में नहीं है, जितना कि पश्चिम, क्योंकि पूर्व अभी भी दूसरों के बारे में इतना परिचित नहीं है। पश्चिम दूसरों के बारे में जानने से अभिभूत है। वे बहुत अधिक जानते हैं। अब कोई व्यवस्था वास्तविक नहीं है, उन्हें पता है कि सब कुछ मान्यता है। और एक बार तुम्हें यह पता चल जाए तो वह काम नहीं देगी।

कृष्णमूर्ति उनको आकर्षित करते हैं क्योंकि वह कहते हैं कि सब व्यवस्थाएं छोड़ दो। यदि तुम सब व्यवस्थाएं छोड़ दोगे तो उलझन से मुक्त हो जाओगे। लेकिन यह तुम पर निर्भर करेगा। ऐसा हो सकता है, जैसा कि लगभग हमेशा ही होता रहा है, कि सब व्यवस्थाएं तो बनी ही रहेंगी, व्यवस्थाओं को छोड़ने की यह व्यवस्था और आ जाएगी। एक रोग और जुड़ जाएगा।

जीसस बोले चले जाते हैं, कृष्ण बोले चले जाते हैं और फिर कृष्णमूर्ति भी आ जाते हैं–तुम्हारा मन बेबल की मीनार बन जाता है। इतनी आवाजें हैं और तुम समझ नहीं सकते कि क्या हो रहा है। तुम्हें लगता है कि तुम पागल हो गए हो।

यदि तुम किसी व्यवस्था में विश्वास कर सको तो अच्छा है; यदि तुम किसी भी व्यवस्था में विश्वास नहीं कर सकते तो सभी छोड़ दो। फिर बिलकुल स्वच्छंद, बोझमुक्त हो जाओ। लेकिन इन दो विकल्पों के बीच में मत लटके रहो। और ऐसा लगता है कि जैसे सब बीच में ही हैं। कभी तुम दाईं ओर चले जाते हो, कभी बाईं ओर, फिर दाईं ओर, फिर बाईं ओर। घड़ी के पेंडुलम की तरह तुम एक ओर से दूसरी ओर जाते रहते हो। इस गति से तुम्हें लग सकता है कि तुम आगे बढ़ रहे हो।

तुम कहीं भी नहीं बढ़ रहे हो। हर कदम दूसरे को काट देता है, क्योंकि जब तुम दाईं ओर जाते हो और फिर बाईं ओर जाते हो तो अपना ही विरोध करते रहते हो। अंत में बस तुम उलझ जाते हो, परेशान होते हो, ऊहापोह में पड़ जाते हो।

तो या तो पूरी तरह बोझमुक्त हो जाओ। वह सहयोगी होगा। तुम स्वच्छ, निर्दोष और बालवत हो जाओगे और उड़ान भर सकोगे। या फिर, यदि वह बात तुम्हें बहुत खतरनाक लगती है, यदि तुम बोझमुक्त होने से डरते हो क्योंकि उससे तुम एक खालीपन में, एक रिक्तता में पहुंच जाओगे, यदि वह बोझमुक्त

होना तुम्हें खतरनाक लगता है और तुम भयभीत हो, तो फिर कोई व्यवस्था चुन लो।

लेकिन कई ऐसे लोग हैं जो तुम्हें बताए चले जाते हैं कि सब कुछ एक ही है, कुरान भी वही कहती है, बाइबिल भी वही कहती है, गीता भी वही कहती है, उनका संदेश एक ही है। ये लोग बड़े उलझन में डालने वाले हैं। कुरान, बाइबिल, गीता एक ही बात नहीं कहतीं, वे व्यवस्थाएं हैं, स्पष्ट व्यवस्थाएं हैं, बिलकुल भिन्न हैं। न केवल भिन्न हैं, बल्कि कई जगह विपरीत और विरुद्ध हैं।

उदाहरण के लिए, महावीर कहते हैं कि अहिंसा ही कसौटी है। यदि तुम हिंसक हो, थोड़े से भी हिंसक हो, परम सत्य का द्वार तुम्हारे लिए बंद हो जाता है। यह एक विधि है। पूर्णतया अहिंसक होने के लिए तुम्हारे मन और शरीर दोनों की परिपूर्ण शुद्धि जरूरी है। तुम्हें पूर्णतया शुद्ध होना पड़ेगा, तभी तुम अहिंसक हो पाओगे। अहिंसक होने की यह प्रक्रिया तुम्हें इतना शुद्ध कर देगी कि प्रक्रिया ही परिणाम बन जाएगी।

इससे ठीक उलटा कृष्ण का संदेश है। वह अर्जुन से कहते हैं, 'तू मारने से मत डर, क्योंकि आत्मा को नहीं मारा जा सकता। तू शरीर को तो मार सकता है लेकिन आत्मा को नहीं मार सकता। तो किसलिए डरना ? और शरीर तो मरा ही हुआ है। तो जो मरा ही हुआ है वही मरेगा और जो जीवित है वह जीवित ही रहेगा। तुझे चिंता करने की जरूरत नहीं है। यह तो बस एक लीला है।'

वह भी सही हैं, क्योंकि यदि तुम इस सूत्र को समझ सको कि आत्मा को नष्ट नहीं किया जा सकता तो फिर पूरा जीवन एक लीला, एक कल्पना, एक नाटक बन जाता है। और यदि पूरा जीवन एक नाटक बन जाए, हत्या और आत्महत्या तक तुम्हारे लिए नाटक बन जाए—विचार में ही नहीं, बल्कि तुम यह अनुभव कर लो कि सब कुछ स्वप्न मात्र ही है—तो मृत्यु भी तुम्हें साक्षी ही बनाएगी। और वह साक्षित्व अतिक्रमण बन जाएगा, तुम संसार के ऊपर उठ जाओगे। पूरा जीवन एक नाटक बन जाता है; न कुछ अच्छा है, न बुरा है, बस एक सपना है। तुम्हें उसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है।

लेकिन ये दो बातें बिलकुल भिन्न हैं। अंततः वे एक ही बिंदु पर ले जाती हैं, पर उनको आपस में मत मिलाना। यदि तुम उन्हें मिलाओगे तो तुम पीड़ित होओगे। व्यवस्था बनाने वाले भी तुम्हारी मदद के लिए हैं और व्यवस्था तोड़ने वाले भी तुम्हारी मदद के लिए हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि कोई भी मदद

नहीं कर पाया। तुम ऐसे हो, इतने हठी और इतने चालाक हो कि तुम बच निकलने के लिए सदा ही कोई न कोई उपाय खोज लेते हो।

बुद्ध और कृष्ण जीसस, हर सदी में वे कुछ बातें सिखाते चले जाते हैं। तुम सुनते रहते हो, लेकिन तुम बड़े चालाक हो। तुम सनते हो और फिर भी नहीं सुनते। तुम सदा कुछ न कुछ खोज लेते हो, कोई जगह, जहां से तुम बचकर निकल सको। अब आधुनिक मन ने एक चाल खोज ली है कि यदि कोई व्यवस्था है—यदि गुरजिएफ सिखा रहा है—तो लोग उसके पास जाएंगे और कहेंगे, 'कृष्णमूर्ति कहते हैं कि कोई व्यवस्था नहीं होनी चाहिए।' यही लोग कृष्णमूर्ति के पास जाएंगे—कृष्णमूर्ति अव्यवस्था सिखाते हैं—और वे कहेंगे, 'लेकिन गुरजिएफ कहते हैं कि व्यवस्था के बिना कुछ भी नहीं हो सकता।'

तो गुरजिएफ के पास वे कृष्णमूर्ति का एक तरकीब की तरह उपयोग करते हैं और कृष्णमूर्ति के पास वे गुरजिएफ से बचने के लिए एक चाल की तरह उपयोग करते हैं। लेकिन वे किसी और को धोखा नहीं दे रहे, वे स्वयं को ही नष्ट कर रहे हैं।

गुरजिएफ मदद कर सकते हैं, कृष्णमूर्ति मदद कर सकते हैं, लेकिन तुम्हारे सहयोग के बिना वे मदद नहीं कर सकते। तुम्हें कुछ बातों के विषय में निश्चय होना चाहिए। एक, तुम्हें मदद चाहिए या नहीं चाहिए। दूसरे, तुम बिना किसी भय के अज्ञात में अकेले प्रवेश कर सकते हो या नहीं कर सकते। और तीसरे, तुम बिना किसी उपाय, बिना किसी विधि, बिना किसी व्यवस्था के एक भी इंच चल सकते हो या नहीं। इन तीन बातों का तुम्हें अपने भीतर निर्णय ले लेना है। अपने मन का विश्लेषण करो, उसे खोलो, उसमें झांको और निर्णय लो कि किस तरह का मन तुम्हारे पास है।

यदि तुम यह निर्णय लो कि तुम इसे अकेले नहीं कर सकते हो तो तुम्हें किसी व्यवस्था, किसी गुरु, किसी शास्त्र, किसी विधि की जरूरत है। यदि तुम सोचते हो कि तुम इसे अकेले ही कर सकते हो तो तुम्हें किसी और चीज की जरूरत नहीं है। तुम ही गुरु हो, तुम ही शास्त्र हो, तुम ही विधि हो।

लेकिन ईमानदार बनो और यदि तुम्हें लगे कि निर्णय करना असंभव है—निर्णय लेना इतना सरल नहीं है—यदि तुम्हें उलझन मालूम हो तो किसी गुरु के पास जाकर देखो, किसी विधि, किसी व्यवस्था का उपयोग करके देखो। और उसको पूरी ताकत से बिलकुल अति से करके देखो, ताकि यदि कुछ होने वाला है तो हो जाए। यदि कुछ भी नहीं होने वाला तो तुम एक ऐसे बिंदु पर पहुंच जाते हो जहां यह निर्णय कर सको कि अब तुम्हें ही सब करना होगा,

तुम अकेले होओगे। वह भी अच्छा होगा।

लेकिन मेरा सुझाव है कि हमेशा शुरुआत तो तुम्हें किसी गुरु, किसी व्यवस्था, किसी विधि से ही करनी चाहिए, क्योंकि दोनों तरह से यह अच्छा ही होगा। यदि तुम उससे उपलब्ध हो सको तो अच्छा है; यदि उससे उपलब्ध न हो सको, तो फिर पूरी बात ही व्यर्थ हो जाती है और तुम उसे छोड़कर अकेले आगे बढ़ सकते हो। फिर कृष्णमूर्ति को तुम्हें यह बताने की जरूरत नहीं पड़ेगी कि किसी गुरु की जरूरत नहीं है, तुम जानते ही हो। फिर तुम्हें किसी झेन-देशना के यह बताने की जरूरत नहीं रहेगी कि अपने शास्त्र फेंक दो और जला दो, तुम उन्हें अपने आप ही जला दोगे।

तो किसी गुरु के साथ, किसी व्यवस्था के साथ, किसी विधि के साथ शुरू करना अच्छा है, लेकिन निष्ठावान रहो। जब मैं कहता हूं निष्ठावान तो मेरा यह अर्थ है कि गुरु के साथ तुम जो भी कर सकते हो, करो; ताकि जो भी हानि हो, हो जाए। यदि कुछ नहीं होता तो तुम यह निष्कर्ष निकाल सकते हो कि यह मार्ग तुम्हारे लिए नहीं है और तुम अकेले बढ़ सकते हो।

आज इतना ही।

77

चेतना का विस्तार

सूत्र

106. हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अतः आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।

107. यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है, अन्य कुछ भी नहीं है।

108. यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो।

अस्तित्व स्वयं में अखंड है। मनुष्य की समस्या की स्व-चेतना के कारण पैदा होती है। चेतना सबको यह भाव देती है कि वे पृथक हैं। और यह भाव, कि तुम अस्तित्व से भिन्न हो, सब समस्याओं का निर्माण करता है। मूलतः यह भाव झूठा है, और जो कुछ भी झूठ पर आधारित होगा वह संताप पैदा करेगा, समस्याएं, उलझनें निर्मित करेगा। और तुम चाहे जो भी करो, यदि वह इस झूठी पृथकता पर आधारित है तो गलत ही होगा।

तो मनुष्य के संताप की समस्या को शुरू से ही सुलझाना पड़ेगा— वह निर्मित कैसे होती है ? चेतना तुम्हें यह भाव देती है कि तुम अपने अस्तित्व के केंद्र हो और अन्य लोग 'अन्य' हैं, कि तुम उनसे अलग हो। यह दूरी इसीलिए है क्योंकि तुम चेतन हो। जब तुम सोए होते हो तो कोई भिन्नता नहीं होती, तुम वापस ब्रह्मांड में मिल जाते हो। इसीलिए नींद से इतना आनंद आता है। सुबह तुम फिर ताजे, जीवंत और ऊर्जा से भरे होते हो।

गहरी नींद में क्या होता है ? तुम अपना अहंकार खो देते हो, स्वयं को खो देते हो, ब्रह्मांड के साथ एक हो जाते हो। वह एक हो जाना ही तुम्हें ताजा और जीवंत कर देता है और सुबह तुम आनंदित अनुभव करते हो। सब संताप मिट जाते हैं; सब विवाद, सब अशांतियां समाप्त हो जाती हैं; सब भय, मृत्यु

आदि विदा हो जाते हैं, क्योंकि मृत्यु तभी संभव है जब तुम पृथक हो। यदि तुम पृथक नहीं हो तो मृत्यु असंभव है। यदि तुम पृथक नहीं हो तो मरेगा कौन ? यदि तुम पृथक नहीं हो तो कष्ट कौन भोगेगा ?

तो सभी तंत्र, योग और ध्यान की दूसरी विधियां केवल तुम्हें यही बताने के लिए हैं कि भिन्नता झूठ है और अभिन्नता यथार्थ है। और यदि तुम यह जान सको तो तुम दूसरे ही हो जाओगे, क्योंकि केंद्र तुममें से हटकर ब्रह्मांड में अपना सही स्थान ले लेगा। तुम इस महासागर में बस एक लहर मात्र रह जाओगे। तुम भिन्न नहीं होओगे, इसलिए तुम्हें कोई भय नहीं होगा। तुम असुरक्षित अनुभव नहीं करोगे। तुम मृत्यु के भय से पीड़ित नहीं होओगे। वह सब अहंकार के साथ समाप्त हो जाता है।

हिंदू सदा से मानते रहे हैं कि समाधि एक चेतन निद्रा है। नींद में स्वतः ही ऐसा होता है कि तुम नहीं रहते। केवल अस्तित्व ही होता है, तुम नहीं; लेकिन तुम गहन बेहोशी में होते हो इसलिए तुम्हें पता नहीं होता कि क्या हो रहा है। यदि यही सजगता के साथ हो सके तो तुम संबुद्ध हो जाते हो। बुद्ध उसी स्रोत पर पहुंच जाते हैं जहां तुम हर रात गहरी नींद, स्वप्न-रहित नींद में पहुंचते हो। लेकिन बुद्ध उस स्रोत पर सचेत, जाग्रत, होशपूर्वक पहुंचते हैं। वह जानते हैं कि वह कहां जा रहे हैं, उन्हें पता है कि क्या हो रहा है। और जब वह उस गहन स्रोत से वापस लौटते हैं तो वह दूसरे ही होते हैं। पुराना विदा हो जाता है और एक नई चेतना, एक नई ऊर्जा उससे पैदा होती है।

इस चेतना का केंद्र ब्रह्मांड है; और केंद्र के इस परिवर्तन से तुम्हारी सारी चिंता, तुम्हारा सारा संताप, सब नर्क मिट जाता है। ऐसा नहीं है कि उनका समाधान हो जाता है, बस वे मिट ही जाते हैं, अहंकार के बिना वे रह ही नहीं सकते।

तो जागते हुए कैसे गहरी नींद में हुआ जाए ? कैसे चैतन्य होकर सोया जाए ? अहंकार को छोड़ते समय कैसे होशपूर्ण रहा जाए ? अहंकार परिणाम है तुम्हारी सारी व्यवस्था का, तुम्हारे पालन-पोषण का, तुम्हारी जीवन शैली का। अहंकार जरूरी है। और कोई उपाय नहीं है। कोई भी व्यक्ति बिना अहंकार के विकसित नहीं हो सकता। लेकिन एक सीमा आती है जब अहंकार छोड़ा जा सकता है और छोड़ दिया जाना चाहिए, चेतना तो उसका अतिक्रमण कर जाना चाहिए। अहंकार अंडे के खोल की तरह है। उसकी जरूरत है, वह तुम्हारी रक्षा करता है। एक बीज के खोल की तरह उसकी जरूरत है, वह रक्षा करता है। लेकिन यह सुरक्षा खतरनाक भी हो सकती है, अगर वह कुछ ज्यादा ही

रक्षा करने लगे तो, यदि आवरण रक्षा ही करता चला जाए और बीज को अंकुरित न होने दे तो बाधा बन जाएगा। उसे धरती में मिटना ही होगा, ताकि आंतरिक जीवन उससे विकसित हो सके। उसे मरना ही होगा।

बीज को मरना ही होता है। हर मनुष्य बीज की तरह पैदा होता है। अहंकार बाहरी आवरण है—वह बच्चे की रक्षा करता है। यदि बच्चा अहंकार के बिना, या बिना इस भाव के पैदा होता है कि 'मैं हूं' तो वह जीवित नहीं रह सकता। वह स्वयं को बचा नहीं पाएगा। वह संघर्ष नहीं कर पाएगा, किसी भी तरह से जी नहीं पाएगा। लेकिन एक क्षण आता है जब यह मदद बाधा बन जाती है। बाहर से तो वह रक्षा करती है, लेकिन इतनी मजबूत हो जाती है कि तुम्हें, तुम्हारी आंतरिक सत्ता को फैलने ही नहीं देती, बाहर आने के लिए, अंकुरित होने के लिए मार्ग नहीं देती।

तो अहंकार की जरूरत है—और फिर अहंकार के अतिक्रमण की भी जरूरत है। यदि कोई अहंकार के साथ मर गया तो वह बीज की तरह ही मर गया। वह संभावना को साकार किए बिना ही मर गया, वह चैतन्य होकर अस्तित्व को उपलब्ध न हो सका।

ये विधियां इसीलिए हैं कि बीज को कैसे तोड़ा जाए।

प्रत्येक प्राणी हो जाओ

पहली विधि :

106. हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अतः आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो।'

वास्तव में ऐसा ही है, पर ऐसा लगता नहीं। अपनी चेतना को तुम अपनी चेतना ही समझते हो और दूसरों की चेतना को तुम कभी अनुभव ही नहीं करते। अधिक से अधिक तुम यही सोचते हो कि दूसरे भी चेतन हैं। ऐसा तुम इसलिए सोचते हो क्योंकि जब तुम चेतन हो तो तुम्हारे ही जैसे दूसरे प्राणी भी चेतन होने चाहिए। यह एक तार्किक निष्कर्ष है; तुम्हें लगता नहीं कि वे चेतन हैं। यह ऐसे ही है जैसे जब तुम्हें सिर में दर्द होता है तो तुम्हें उसका पता चलता है, तुम्हें उसका अनुभव होता है। लेकिन यदि किसी दूसरे के सिर में दर्द है तो तुम केवल सोचते हो, दूसरे के सिर-दर्द को तुम अनुभव नहीं कर सकते। तुम केवल सोचते हो कि वह जो कह रहा है सच ही होना चाहिए। और उसे

तुम्हारे सिर-दर्द जैसा ही कुछ हो रहा होगा। लेकिन तुम उसे अनुभव नहीं कर सकते।

अनुभव केवल तभी आ सकता है जब तुम दूसरों की चेतना के प्रति भी जागरूक हो जाओ, अन्यथा यह केवल तार्किक निष्पत्ति मात्र ही रहेगी। तुम विश्वास करते हो, भरोसा करते हो कि दूसरे ईमानदारी से कुछ कह रहे हैं; और वे जो कह रहे हैं वह भरोसा करने योग्य है, क्योंकि तुम्हें भी ऐसे ही अनुभव होते हैं।

तार्किकों की एक धारा है जो कहती है कि दूसरे के बारे में कुछ भी जानना असंभव है। अधिक से अधिक माना जा सकता है, पर निश्चित रूप से कुछ भी जाना नहीं जा सकता। यह तुम कैसे जान सकते हो कि दूसरे को भी तुम्हारे जैसी ही पीड़ा हो रही है, कि दूसरों को तुम्हारे ही जैसे दुख हैं ? दूसरे सामने हैं पर हम उनमें प्रवेश नहीं कर सकते, हम बस उनकी परिधि को छू सकते हैं। उनकी अंतस चेतना अनजानी रहती है। हम अपने में ही बंद रहते हैं।

हमारे चारों ओर का संसार अनुभवगत नहीं है, बस माना हुआ है। तर्क से, विचार से, मन तो कहता है कि ऐसा है, पर हृदय इसे छू नहीं पाता। यही कारण है कि हम दूसरों से ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे वे व्यक्ति न होकर वस्तुएं हों। लोगों के साथ हमारे संबंध भी ऐसे होते हैं जैसे वस्तुओं के साथ होते हैं। पति अपनी पत्नी से ऐसा व्यवहार करता है जैसे वह कोई वस्तु हो—वह उसका मालिक है। पत्नी भी पति की इसी तरह मालिक होती है जैसे वह कोई वस्तु हो। यदि हम दूसरों से व्यक्तियों की तरह व्यवहार करते तो हम उन पर मालकियत न जमाते, क्योंकि मालकियत केवल वस्तुओं पर ही की जा सकती है।

व्यक्ति का अर्थ है स्वतंत्रता। व्यक्ति पर मालकियत नहीं की जा सकती। यदि तुम उन पर मालकियत करने का प्रयास करोगे तो उन्हें मार डालोगे, वे वस्तु हो जाएंगे। वास्तव में दूसरों से हमारे संबंध कभी भी 'मैं-तुम' नहीं होते, गहरे में वह बस 'मैं-यह' (यह यानी वस्तु) वाले होते हैं। दूसरा तो बस एक वस्तु होता है जिसका शोषण करना है, जिसका उपयोग करना है। यही कारण है कि प्रेम असंभव होता जा रहा है। क्योंकि प्रेम का अर्थ है दूसरे को व्यक्ति समझना, एक चेतन-प्राणी, एक स्वतंत्रता समझना, अपने जितना ही मूल्यवान समझना।

यदि तुम ऐसे व्यवहार करते हो जैसे सब लोग वस्तु हैं तो तुम केंद्र हो जाते हो और दूसरे उपयोग की जाने वाली वस्तुएं हो जाते हैं। संबंध केवल उपयोगिता पर निर्भर हो जाता है। वस्तुओं का अपने आप में कोई मूल्य नहीं

होता; उनका मूल्य यही है कि तुम उनका उपयोग कर सकते हो, वे तुम्हारे लिए हैं। तुम अपने घर से संबंधित हो सकते हो; घर तुम्हारे लिए है, वह एक उपयोगिता है। कार तुम्हारे लिए है। लेकिन पत्नी तुम्हारे लिए नहीं है, न पति तुम्हारे लिए है। पति अपने लिए है और पत्नी अपने लिए है।

एक व्यक्ति अपने लिए ही होता है; यही व्यक्ति होने का अर्थ है। और यदि तुम व्यक्ति को व्यक्ति ही रहने दो और उसे वस्तु न बनाओ तो धीरे-धीरे तुम उसे महसूस करना शुरू कर दोगे। अन्यथा तुम महसूस नहीं कर सकते। तुम्हारा संबंध बस धारणागत, बौद्धिक, मन से मन का, मस्तिष्क से मस्तिष्क का ही रहेगा, कभी हृदय से हृदय का नहीं हो पाएगा।

यह विधि कहती है, 'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो।'

कठिन होगा, क्योंकि पहले तो तुम्हें व्यक्ति को एक व्यक्ति की तरह, एक चेतन प्राणी की तरह महसूस करना पड़ेगा। वह भी कठिन है।

जीसस कहते हैं, 'अपने पड़ोसियों से वैसे ही प्रेम करो जैसे तुम स्वयं से करते हो।'

यह भी वही बात है। लेकिन पहले दूसरा तुम्हारे लिए एक व्यक्ति की तरह होना चाहिए, वह स्वयं के लिए होना चाहिए, किसी शोषण या उपयोग के लिए नहीं, किसी साधन की तरह नहीं, उसे स्वयं में एक साध्य की तरह होना चाहिए। पहले वह व्यक्ति होना चाहिए; वह 'तुम' होना चाहिए, तुम्हारे जितना ही मूल्यवान। केवल तभी यह विधि उपयोग की जा सकती है।

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो।'

पहले अनुभव करो कि दूसरा भी चेतन है, तब यह हो सकता है कि तुम महसूस करो कि दूसरे में भी वही चेतना है जो तुममें है। वास्तव में दूसरा खो जाता है और तुम्हारे तथा उसके बीच चैतन्य लहराता है। तुम चेतना की एक धारा के दो ध्रुव बन जाते हो।

गहन प्रेम में ऐसा होता है कि दो व्यक्ति दो नहीं रहते। दोनों के बीच कुछ बहने लगता है और वे दोनों दो ध्रुव बन जाते हैं। दोनों के बीच में कुछ आंदोलित होने लगता है। जब यह बहाव घटित होता है तो तुम आनंद से भर उठते हो। यदि प्रेम आनंद देता है तो इसी कारण; दो व्यक्ति केवल एक क्षण के लिए अपने अहंकार खो देते हैं, 'दूसरा' खो जाता है और बस एक क्षण के लिए अद्वैत अंतस में उतर जाता है। यदि ऐसा होता है तो अहोभाग्य है, सौभाग्य है, तुम स्वर्ग में प्रवेश कर गए। केवल एक क्षण, और वही क्षण तुम्हें रूपांतरित कर देता है।

यह विधि कहती है कि यह प्रयोग तुम सबके साथ कर सकते हो। प्रेम में तुम एक व्यक्ति के साथ हो सकते हो परंतु ध्यान में सबके साथ हो सकते हो। जो भी तुम्हारे पास आए उसमें डूब जाओ और अनुभव करो कि तुम दो जीवन नहीं, बस एक ही प्रवाहित जीवन हो। केवल गेस्टाल्ट बदलने की बात है। एक बार तुम जान जाओ कि कैसे यह होता है, एक बार तुम प्रयोग कर लो तो बहुत आसान है। शुरू-शुरू में यह असंभव लगता है क्योंकि हम अपने अहंकार से बहुत जुड़े हुए हैं। अहंकार को छोड़ना और प्रवाह में बहना कठिन लगता है। तो अच्छा होगा कि पहले तुम किसी ऐसी चीज से शुरू करो जिससे तुम भयभीत नहीं हो।

तुम वृक्ष से ज्यादा भयभीत नहीं होओगे इसलिए वहां से शुरू करना सरल रहेगा। किसी वृक्ष के पास बैठकर महसूस करो कि तुम उसके साथ एक हो गए हो, कि तुम्हारे भीतर एक प्रवाह, एक संप्रेषण हो रहा है, तुम तिरोहित हो रहे हो। किसी बहती हुई नदी के किनारे बैठ जाओ और प्रवाह को अनुभव करो, महसूस करो कि तुम और नदी एक हो गए हो। आकाश के नीचे लेटकर महसूस करो कि तुम और आकाश एक हो गए हो। शुरू-शुरू में तो यह कल्पना-मात्र होगी, लेकिन धीरे-धीरे तुम्हें लगने लगेगा कि तुम कल्पना के माध्यम से वास्तविकता को छूने लगे हो।

और फिर व्यक्तियों के साथ प्रयोग करो। शुरू में तो यह कठिन होगा क्योंकि भय लगेगा। क्योंकि तुम व्यक्तियों को वस्तु बनाते रहे हो, तुम भयभीत हो कि यदि तुम किसी को इतने पास आने दोगे तो वह तुम्हें वस्तु बना लेगा। यही भय है। तो कोई भी इतनी घनिष्ठता नहीं होने देता। एक अंतराल हमेशा बनाए रखना पड़ता है। बहुत अधिक निकटता खतरनाक है क्योंकि दूसरा तुमको वस्तु बना ले सकता है, वह तुम पर मालकियत करने की कोशिश कर सकता है। यह डर है। तुम दूसरों को वस्तु बनाने का प्रयास कर रहे हो और दूसरे तुम्हें वस्तु बनाने का प्रयास कर रहे हैं। और कोई भी वस्तु बनना नहीं चाहता, कोई भी किसी का साधन बनना नहीं चाहता, कोई भी नहीं चाहता कि कोई उसका उपयोग करे। किसी का साधन बन जाना, स्वयं में मूल्यवान न रहना, सबसे निकृष्ट घटना है। लेकिन हर कोई प्रयास कर रहा है। इसी कारण इतना गहन भय है कि इस विधि को व्यक्तियों के साथ शुरू करना कठिन होगा।

तो किसी नदी के साथ, किसी पहाड़ी के साथ, तारों के साथ, आकाश के साथ, वृक्षों के साथ शुरू करो। एक बार तुम जान जाओ कि जब तुम वृक्ष के साथ एक हो जाते हो तो क्या होता है; एक बार तुम जान जाओ कि नदी के

साथ जब तुम एक हो जाते हो तो कितना आनंद उतरता है, कैसे बिना कुछ खोए तुम पूरे अस्तित्व को पा लेते हो–तब तुम इसे व्यक्तियों के साथ शुरू कर सकते हो।

और यदि एक वृक्ष के साथ, एक नदी के साथ इतना आनंद आता है तो तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक व्यक्ति के साथ कितना अधिक आनंद आएगा, क्योंकि मनुष्य उच्चतर घटना है, अधिक विकसित चेतना है। एक व्यक्ति के साथ तुम अनुभव के उच्चतर शिखरों पर पहुंच सकते हो! यदि तुम एक पत्थर के साथ भी आनंदित हो सकते हो तो एक मनुष्य के साथ तुम परम आनंद अनुभव कर सकते हो।

लेकिन किसी ऐसी चीज से शुरू करो जिससे तुम अधिक भयभीत नहीं हो, या यदि कोई व्यक्ति है जिसे तुम प्रेम करते हो--कोई मित्र, कोई प्रेयसी, कोई प्रेमी–जिससे तुम भयभीत नहीं हो, जिसके साथ तुम बिना भय के करीब हो सकते हो, पास आ सकते हो, जिसके साथ तुम्हें यह भय न हो कि वह तुम्हें वस्तु बना लेगा और जिसमें तुम अपने को मिटा सको–यदि तुम्हारे पास ऐसा कोई है तो यह विधि करके देखो। स्वयं को होशपूर्वक उसमें मिटा दो।

जब तुम होशपूर्वक स्वयं को किसी में मिटा देते हो तो वह भी स्वयं को तुममें मिटा देगा; जब तुम खुले होते हो और दूसरे में बहते हो तो दूसरा भी तुममें बहने लगता है और एक गहन मिलन, एक संवाद घटित होता है। दो ऊर्जाएं एक-दूसरे में समाहित हो जाती हैं। उस स्थिति में कोई अहंकार, कोई व्यक्ति नहीं बचता, बस चेतना बचती है। और यदि एक व्यक्ति के साथ संभव है तो यह पूरे ब्रह्मांड के साथ संभव है। जिसे संतों ने परमानंद कहा है, समाधि कहा है, वह पुरुष और प्रकृति के बीच गहन प्रेम की घटना है।

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अतः आत्मचिंतता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।'

हम सदा अपने से मतलब रखते हैं। जब हम प्रेम में भी होते हैं तो अपने में ही उत्सुक होते हैं। यही कारण है कि प्रेम एक विषाद बन जाता है। प्रेम स्वर्ग बन सकता है, लेकिन नर्क बन जाता है, क्योंकि प्रेमी भी अपने ही स्वार्थों में लगे होते हैं। दूसरे को इसलिए प्रेम किया जाता है क्योंकि वह तुम्हें सुख देता है, क्योंकि उसके साथ तुम्हें अच्छा लगता है। लेकिन दूसरे को तुमने ऐसे प्रेम नहीं किया कि वह अपने आप में ही मूल्यवान हो। मूल्य तुम्हारी प्रसन्नता से आता है। एक तरह से तुम परितुष्ट होते हो, संतुष्ट होते हो, इसलिए दूसरा महत्त्वपूर्ण है। यह भी दूसरे का उपयोग करना ही है।

आत्मचिंता का अर्थ है दूसरे का शोषण। और धार्मिक चेतना केवल तभी उतर सकती है जब स्वयं की चिंता खो जाए, क्योंकि तब तुम अ-शोषक हो जाते हो। अस्तित्व के साथ तुम्हारा संबंध शोषण का नहीं रहता, बल्कि बांटने का, आनंद का रह जाता है। न तुम किसी का उपयोग कर रहे हो, न कोई तुम्हारा उपयोग कर रहा है, बस होने का उत्सव रह जाता है।

लेकिन इस आत्मचिंता को दूर करना है—और वह बहुत गहरे में जमी हुई है। यह इतनी गहरी है कि तुम्हें उसका पता भी नहीं है। एक उपनिषद में कहा गया है कि पति अपनी पत्नी को पत्नी के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए प्रेम करता है; और मां अपने बेटे को बेटे के लिए नहीं, बल्कि अपने लिए प्रेम करती है। स्वार्थ की जड़ें इतनी गहरी हैं कि तुम जो भी करते हो अपने ही लिए करते हो। इसका अर्थ है कि तुम सदा अहंकार का ही पोषण कर रहे हो। तुम सदा अहंकार को, एक झूठे केंद्र को पोषित कर रहे हो जो कि तुम्हारे और अस्तित्व के बीच बाधा बन गया है।

स्वयं की चिंता छोड़ दो। यदि कभी कुछ क्षण के लिए भी तुम स्वयं की चिंता छोड़ सको और दूसरे से, दूसरे के अस्तित्व से जुड़ सको तो तुम एक भिन्न वास्तविकता में, एक भिन्न आयाम में प्रवेश कर जाओगे। इसीलिए सेवा, प्रेम, करुणा पर इतना बल दिया जाता है। क्योंकि करुणा, प्रेम, सेवा का अर्थ है दूसरे से संबंध, अपने से नहीं।

लेकिन देखो, मनुष्य का मन इतना चालाक है कि उसने सेवा, करुणा और प्रेम को भी स्वार्थ में बदल लिया है। ईसाई मिशनरी सेवा करता है और अपनी सेवाओं में ईमानदार होता है। वास्तव में कोई और इतनी गहनता और लगन से सेवा नहीं कर सकता जितना कि एक ईसाई मिशनरी। कोई हिंदू, कोई मुसलमान ऐसे नहीं कर सकता, क्योंकि जीसस ने सेवा पर बहुत बल दिया है। एक ईसाई मिशनरी गरीबों की, बीमारों की, रोगियों की सेवा कर रहा है। लेकिन गहरे में उसे अपने से ही मतलब है, उन लोगों से कोई लेना-देना नहीं है। यह सेवा बस स्वर्ग पहुंचने का उपाय है। उसे उनसे कुछ भी लेना-देना नहीं है, बस अपने स्वार्थ से मतलब है। सेवा से वह श्रेष्ठ जीवन पा सकता है। इसलिए वह सेवा कर रहा है। लेकिन वह मूल बात ही चूक जाता है, क्योंकि सेवा का अभिप्राय है दूसरे का महत्त्व देना, दूसरा केंद्र है और तुम परिधि बन गए।

कभी ऐसा करके देखो। किसी को केंद्र बना लो। फिर उसका सुख तुम्हारा सुख हो जाता है, उसका दुख तुम्हारा दुख हो जाता है। जो भी होता है, उसको

होता है, लेकिन तुम तक प्रवाहित होता है। वह केंद्र है। यदि एक बार, बस एक बार भी तुम अनुभव कर सको कि कोई और तुम्हारा केंद्र है और तुम उसकी परिधि बन गए, तो तुम एक भिन्न अस्तित्व में, अनुभव के एक भिन्न आयाम में प्रवेश कर गए। क्योंकि उस क्षण तुम एक गहन आनंद अनुभव करोगे, जो पहले कभी नहीं जाना होगा, पहले कभी महसूस न किया होगा। दूसरे पर ध्यान देने से ही तुम दुख से छूट जाओगे। उस क्षण में तुम्हारे लिए कोई नर्क नहीं होगा; तुम स्वर्ग में प्रवेश कर गए।

ऐसा क्यों होता है ? ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अहंकार दुख का मूल है। यदि तुम उसे भूल सको, उसे मिटा सको तो सभी दुख उसी के साथ मिट जाते हैं।

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अतः आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।'

वृक्ष बन जाओ, नदी बन जाओ, पत्नी बन जाओ, पति बन जाओ, बच्चा बन जाओ, मां बन जाओ, मित्र बन जाओ–इसका जीवन के हर क्षण में अभ्यास किया जा सकता है। लेकिन शुरू में यह कठिन होगा। तो कम से कम इसे एक घंटा रोज करो। उस एक घंटे में तुम्हारे करीब से जो भी गुजरे, वही बन जाओ। तुम सोचोगे कि यह कैसे हो सकता है ! इसे जानने का और कोई उपाय नहीं है, तुम्हें करके ही देखना पड़ेगा।

किसी वृक्ष के साथ बैठो और महसूस करो कि तुम वृक्ष बन गए हो। और जब हवा चलती है और पूरा वृक्ष डोलता है, झूमता है, तो उस कंपन को अपने भीतर महसूस करो। जब सूरज उगता है और पूरा वृक्ष जीवंत हो जाता है, तो उस जीवंतता को अपने भीतर महसूस करो। जब वर्षा होती है और पूरा वृक्ष संतुष्ट और तृप्त हो जाता है, एक लम्बी प्यास, एक लंबी प्रतीक्षा समाप्त हो जाती है और वृक्ष परितृप्त हो जाता है, तो वृक्ष के साथ तृप्त और असंतुष्ट अनुभव करो। और तब तुम वृक्ष के सूक्ष्म भाव-भंगिमाओं के प्रति सजग हो जाओगे।

तुम उस वृक्ष को अभी तक कई वर्षों से देखते रहे हो, पर तुम उसके भावों को नहीं जान पाए। कभी वह प्रसन्न होता है; कभी दुखी होता है; कभी उदास, संतप्त, चिंतित, व्यथित होता है; कभी बहुत आनंदित और अहोभाव से भरा होता है। उसके भाव होते हैं। वृक्ष जीवंत है और महसूस करता है। और यदि तुम उसके साथ एक हो जाओ तो तुम भी वे अनुभव ले सकते हो। तब तुम अनुभव कर पाओगे कि वृक्ष जवान है या बूढ़ा; वृक्ष अपने जीवन से संतुष्ट है या नहीं; वृक्ष अस्तित्व के साथ प्रेम में है या नहीं; या कि विरुद्ध है, विपरीत है, क्रोधित

है; वृक्ष हिंसक है या उसमें गहन करुणा है। जैसे तुम हर क्षण बदल रहे हो वैसे ही वृक्ष भी हर क्षण बदल रहा है, यदि तुम उसके साथ गहन आत्मीयता अनुभव कर सको, जिसे समानुभूति कहते हैं ...।

समानुभूति का अर्थ है—तुम किसी के साथ इतनी सहानुभूति से भर जाओ कि उसके साथ एक ही हो जाओ। वृक्ष के भाव तुम्हारे भाव हो जाएं। और यदि यह गहरे से गहरा होता चला जाए तो तुम वृक्ष से बात भी कर सकते हो। एक बार तुम्हें उसकी भावदशाओं का पता लगना शुरू हो जाए तो तुम उसकी भाषा समझना शुरू कर सकते हो। और वृक्ष अपने मन की बातें तुम्हें बताने लगेगा, अपने सुख-दुख वह तुम्हारे साथ बांटने लगेगा।

और यह पूरे जगत के साथ हो सकता है।

हर रोज कम से कम एक घंटे के लिए किसी भी चीज के साथ समानुभूति में चले जाओ। शुरू में तो तुम्हें लगेगा तुम पागल हो रहे हो। तुम सोचोगे, 'मैं किस तरह की मूर्खता कर रहा हूं?' तुम चारों ओर देखोगे और महसूस करोगे कि यदि कोई देख ले या किसी को पता लग जाए तो वह सोचेगा कि तुम पागल हो गए हो। लेकिन केवल शुरू में ही ऐसा होगा, एक बार समानुभूति के इस जगत में तुम प्रवेश कर जाओ तो सारा संसार तुम्हें पागल नजर आएगा। वे लोग बेकार में ही इतना कुछ चूक रहे हैं। जीवन इतने अतिरेक में देता है और वे उसे चूक रहे हैं। वे इसलिए चूक रहे हैं क्योंकि वे बंद हैं—वे जीवन को अपने भीतर प्रवेश नहीं करने देते। और जीवन तुममें केवल तभी प्रवेश कर सकता है जब कई-कई मार्गों से, कई-कई आयामों से तुम जीवन में प्रवेश करो। कम से कम एक घंटा हर रोज समानुभूति को साधो।

प्रारंभ में हर धर्म की प्रार्थना का यही अर्थ था। प्रार्थना का अर्थ था ब्रह्मांड के साथ होना, ब्रह्मांड के साथ गहन संवाद में होना। प्रार्थना का अर्थ है पूर्णता। कभी तुम परमात्मा से नाराज हो सकते हो, कभी धन्यवाद दे सकते हो, पर एक बात पक्की है कि तुम संवाद में हो। परमात्मा केवल एक बौद्धिक धारणा नहीं रही, एक गहन और घनिष्ठ संबंध हो गया। प्रार्थना का यही अर्थ है।

लेकिन हमारी प्रार्थनाएं सड़-गल गई हैं क्योंकि हमें तो यह भी नहीं पता कि प्राणियों से कैसे जुड़ें। तुम किसी प्राणी से नहीं जुड़ सकते, तुम्हारे लिए यह असंभव है। यदि तुम किसी वृक्ष से नहीं जुड़ सकते तो पूरे अस्तित्व के साथ कैसे जुड़ सकते हो? और यदि एक वृक्ष से बात करना तुम्हें पागलपन लगता है तो परमात्मा से बात करना और भी ज्यादा पागलपन लगेगा।

मन की प्रार्थनापूर्ण दशा के लिए हर रोज एक घंटा अलग से निकाल लो

और अपनी प्रार्थना को शाब्दिक मत बनाओ, उसमें भाव भरो। खोपड़ी से बोलने की बजाय अनुभव करो। जाओ और वृक्ष को छुओ, उसे गले लगाओ, चूमो; अपनी आंखें बंद कर लो और वृक्ष के साथ ऐसे हो जाओ जैसे तुम अपनी प्रेमिका के साथ हो। उसे महसूस करो। और शीघ्र ही तुम्हें एक गहन बोध होगा कि अपने आप को छोड़ कर दूसरा बन जाने का क्या अर्थ है।

'हर मनुष्य की चेतना को अपनी ही चेतना जानो। अतः आत्मचिंता को त्यागकर प्रत्येक प्राणी हो जाओ।'

जानो कि केवल चेतना ही है

दूसरी विधि :

107. यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है, अन्य कुछ भी नहीं है।

अतीत में वैज्ञानिक कहा करते थे कि केवल पदार्थ ही है और कुछ भी नहीं है। केवल पदार्थ के ही होने की धारणा पर बड़े-बड़े दर्शन के सिद्धांत पैदा हुए। लेकिन जिन लोगों की यह मान्यता थी कि केवल पदार्थ ही है वे भी सोचते थे कि चेतना जैसा भी कुछ है। तब वह क्या था ? वे कहते थे कि चेतना पदार्थ का ही एक बाइ-प्रोडक्ट है, एक उप-उत्पाद है। वह परोक्ष रूप में, सूक्ष्म रूप में पदार्थ ही था।

लेकिन इस आधी सदी ने एक महान चमत्कार होते देखा है। वैज्ञानिकों ने यह जानने का बहुत प्रयास किया कि पदार्थ क्या है, लेकिन जितना उन्होंने प्रयास किया उतना ही उन्हें लगा कि पदार्थ जैसा तो कुछ भी नहीं है। पदार्थ का विश्लेषण किया गया और पाया गया कि वहां कुछ नहीं है।

अभी सौ वर्ष पूर्व नीत्शे ने कहा था कि परमात्मा मर गया है। परमात्मा के मरने के साथ ही चेतना भी बच नहीं सकती क्योंकि परमात्मा का अर्थ है समग्र-चेतना। लेकिन इन सौ सालों में ही पदार्थ मर गया है। और पदार्थ इसलिए नहीं मरा क्योंकि धार्मिक लोग ऐसा सोचते हैं, बल्कि वैज्ञानिक एक बिलकुल दूसरे निष्कर्ष पर पहुंच गए हैं कि पदार्थ केवल आभास है। यह केवल ऐसा दिखाई पड़ता है क्योंकि हम बहुत गहरे नहीं देख सकते। यदि हम गहरे में देख सकें तो पदार्थ समाप्त हो जाता है, बस ऊर्जा बच रहती है।

यह ऊर्जा, यह अभौतिक ऊर्जा-शक्ति संतों द्वारा बहुत पहले से ही जान ली गई है। वेदों में, बाइबिल में, कुरान में, उपनिषदों में—संसार भर में संतों ने जब भी अस्तित्व में गहरे प्रवेश किया है तो पाया है कि पदार्थ केवल भासता

है; गहरे में कोई पदार्थ नहीं है केवल ऊर्जा है। अब इस बात से विज्ञान सहमत है। और संतों ने एक और भी बात कही है जिससे विज्ञान को अभी राजी होना है—एक दिन उसे राजी होना ही पड़ेगा—संत एक दूसरे निष्कर्ष पर भी पहुंचे हैं, वे कहते हैं कि जब तुम ऊर्जा में गहरे प्रवेश करते हो तो ऊर्जा भी समाप्त हो जाती है और बस चेतना बचती है।

तो ये तीन पर्तें हैं। पदार्थ पहली पर्त है, परिधि है। परिधि के भीतर प्रवेश कर जाओ तो दूसरी पर्त दिखाई पड़ती है। तुम ऊर्जा को देख सकते हो। फिर तुम यदि ऊर्जा में प्रवेश करो तो तीसरी पर्त प्रकाशित होती है, वह तीसरी पर्त चेतना है।

शुरू-शुरू में विज्ञान कहता था कि संत बस सपने देख रहे हैं, क्योंकि विज्ञान को पदार्थ के अलावा और कुछ दिखाई नहीं पड़ता था। फिर विज्ञान ने भीतर प्रवेश करने का प्रयास किया और संतों की दूसरी पर्त की पुष्टि हो गई। पदार्थ केवल भासता है, गहरे में वह बस ऊर्जा है। और संतों का दूसरा दावा है—ऊर्जा में भी गहरे प्रवेश करो तो ऊर्जा भी समाप्त हो जाती है, बस चेतना बचती है। वह चेतना ही परमात्मा है, वह अंतरतम केंद्र है।

यदि तुम अपने शरीर में प्रवेश करो तो वहां भी ये तीन पर्तें हैं। केवल सतह पर तुम्हारा शरीर है। शरीर भौतिक दिखाई पड़ता है, पर उसके भीतर प्राण की, जीवंत ऊर्जा की धाराएं बहती हैं। उस जीवंत ऊर्जा के बिना तुम्हारा शरीर बस एक लाश रह जाएगा। इसके भीतर कुछ बह रहा है, उसके कारण ही यह जीवित है। वही ऊर्जा है। लेकिन गहरे और गहरे में तुम द्रष्टा हो, साक्षी हो। तुम अपने शरीर और ऊर्जा दोनों को देख सकते हो। वह द्रष्टा ही तुम्हारी चेतना है।

हर अस्तित्व की तीन पर्तें हैं। गहनतम पर्त साक्षी चेतना की है, मध्य में जीवन-ऊर्जा है और सतह पर पदार्थ है, भौतिक शरीर है।

यह विधि कहती है, 'यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है, अन्य कुछ भी नहीं है।'

तुम क्या हो ? तुम कौन हो ? यदि तुम अपनी आंखें बंद करो और खोजो कि तुम कौन हो तो अंततः तुम इसी निष्कर्ष पर पहुंचोगे कि तुम चेतना हो। बाकी सब कुछ तुम्हारा हो सकता है, पर तुम वह नहीं हो। शरीर तुम्हारा है, पर तुम शरीर को देख सकते हो, और जो शरीर को देख रहा है वह पृथक हो जाता है। शरीर जानी जाने वाली वस्तु हो जाता है और तुम जानने वाले हो जाते हो। तुम अपने शरीर को जान सकते हो। न केवल तुम जान सकते हो, बल्कि अपने शरीर को आज्ञा दे सकते हो, उसे सक्रिय कर सकते हो, निष्क्रिय

कर सकते हो। तुम पृथक हो। तुम अपने शरीर के साथ कुछ भी कर सकते हो।

और न केवल तुम अपना शरीर नहीं हो, बल्कि तुम अपना मन भी नहीं हो। यदि विचार आते हैं तो तुम उन्हें देख सकते हो और उनके साथ तुम कुछ कर सकते हो—तुम उन्हें बिलकुल मिटा सकते हो, तुम विचारशून्य हो सकते हो। या, तुम अपने मन को एक ही विचार पर एकाग्र कर सकते हो। तुम स्वयं को वहां केंद्रित कर सकते हो। या, तुम विचारों को नदी की तरह प्रवाहित होने दे सकते हो। तुम अपने विचारों के साथ कुछ भी कर सकते हो, उन्हें बिलकुल समाप्त भी कर सकते हो, लेकिन तब भी तुम हो। तुम्हें पता चलेगा कि अब कोई विचार नहीं रहे, अंतस में एक खालीपन आ गया है; लेकिन तुम फिर भी होओगे और उस खालीपन को देखोगे।

केवल एक चीज जिसे तुम अपने से अलग नहीं कर सकते, वह तुम्हारा साक्षीत्व है। इसका अर्थ है कि तुम वही हो। तुम स्वयं को उससे अलग नहीं कर सकते। तुम बाकी हर चीज से स्वयं को अलग कर सकते हो। तुम जान सकते हो कि तुम न शरीर हो, न मन हो, लेकिन तुम यह नहीं जान सकते कि तुम अपने साक्षी नहीं हो। क्योंकि तुम जो भी करोगे वह साक्षी ही होगा। तुम साक्षी से स्वयं को अलग नहीं कर सकते। वह साक्षी ही चेतना है। और जब तक तुम उस अवस्था पर न पहुंच जाओ जहां से अब और पीछे जाना असंभव हो, तब तक तुम स्वयं तक नहीं पहुंचे।

तो ऐसे उपाय हैं जिनसे साधक संबंध काटता चला जाता है–पहले शरीर, फिर मन और फिर वह उस बिंदु पर पहुंचता है जहां कुछ नहीं छोड़ा जा सकता। उपनिषदों में वे कहते हैं, नेति–नेति। यह बड़ी गहरी विधि है— न यह, न वह। तो साधक कहता चला जाता है, 'यह मैं नहीं हूं, यह मैं नहीं हूं', जब तक कि वह ऐसी जगह न पहुंच जाए जहां यह न कहा जा सके कि 'यह मैं नहीं हूं।' केवल एक साक्षी बचता है। शुद्ध चेतना बचती है। यह शुद्ध चेतना ही प्रत्येक प्राणी है।

अस्तित्व में जो कुछ भी है इस चेतना का ही प्रतिफलन है, इसी की एक लहर, इसी का एक सघन रूप है, और कुछ भी नहीं है। लेकिन इसे अनुभव करना है। विश्लेषण सहयोगी हो सकता है, बौद्धिक समझ सहयोगी हो सकती है, लेकिन इसे अनुभव करना है कि और कुछ भी नहीं है, बस चेतना है। फिर व्यवहार भी ऐसा करो कि बस चेतना ही है।

मैंने एक झेन गुरु लिंची के बारे में सुना है। एक दिन वह अपनी झोंपड़ी

में बैठा था कि कोई उससे मिलने आया। जो आदमी मिलने आया था वह बहुत गुस्से में था—हो सकता है उसका अपनी पत्नी से, या अपने मालिक से, या किसी और से झगड़ा हुआ हो—पर वह बहुत गुस्से में था। उसने गुस्से से दरवाजा खोला, गुस्से से अपने जूते उतारकर फेंके और भीतर आकर बड़े आदर से वह लिंची के सामने झुका।

लिंची ने कहा, 'पहले जाओ और जाकर दरवाजे से तथा जूतों से क्षमा मांगो।'

उस आदमी ने बड़ी हैरानी से लिंची की ओर देखा। वहां दूसरे लोग भी बैठे थे, वे सभी हंसने लगे।

लिंची बोला, 'चुप रहो !' और उस आदमी से बोला, 'अगर तुम क्षमा नहीं मांगना चाहते हो तो यहां से चले जाओ। मुझे तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है।' वह आदमी बोला, 'दरवाजे और जूतों से माफी मांगना तो बड़ा विचित्र लगेगा।' लिंची ने कहा, 'जब तुम उन पर गुस्सा निकाल रहे थे तो विचित्र नहीं लगा। अब विचित्र लगेगा ? हर चीज में एक चेतना है। तो तुम जाओ और जब तक दरवाजा तुम्हें माफ न कर दे, मैं तुम्हें भीतर नहीं आने दूंगा।'

उस आदमी को बड़ा अजीब लगा, पर उसे जाना पड़ा। बाद में वह भी फकीर बन गया और ज्ञान को उपलब्ध हुआ। जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ तो उसने सारी कहानी सुनाई, 'जब मैं दरवाजे के सामने खड़ा होकर माफी मांग रहा था तो मुझे बड़ा विचित्र लग रहा था। लेकिन फिर मैंने सोचा कि अगर लिंची ऐसा कहता है तो इसमें जरूर कोई बात होगी। मुझे लिंची में भरोसा था। तो मैंने सोचा चाहे यह पागलपन ही क्यों न हो इसे कर ही डालो। पहले-पहले तो जो मैं दरवाजे से कह रहा था, वह झूठा था, दिखावटी था; लेकिन धीरे-धीरे मैं भाव में आने लगा, और लिंची ने कहा था कि वह सब देखेगा। और वह प्रतीक्षा कर रहा था, जब दरवाजा मुझे माफ करेगा तभी मैं भीतर जा सकता था; वरना जब तक मैं दरवाजे को मना न लेता और जूते मुझे माफ न कर देते, मुझे वहीं रुकना पड़ता। तो धीरे-धीरे मैं भाव से भर गया। मैं भूल ही गया कि बहुत से लोग मुझे देख रहे हैं, मैं लिंची के बारे में भी भूल गया—और फिर मेरा भाव वास्तविक हो गया, सच्चा हो गया। मुझे लगने लगा कि दरवाजा और जूता अपनी मनोदशा बदल रहे हैं। और जिस क्षण मुझे लगा कि दरवाजा और जूता अब खुश हैं, लिंची ने उसी समय आवाज दी कि अब मैं भीतर आ सकता हूं, मुझे माफ कर दिया गया है।'

यह घटना उसके जीवन में रूपांतरण ले आई क्योंकि पहली बार उसे पता चला कि हर चीज वास्तव में घनीभूत चेतना है। यदि तुम इसे नहीं देख पाते

तो इसका कारण यह है कि तुम अंधे हो। यदि तुम नहीं सुन पाते तो इसका कारण यह है कि तुम बहरे हो। तुम्हारे चारों ओर पदार्थ नहीं है, हर चीज घनीभूत चेतना है। समस्या तुम्हारे साथ है, तुम खुले हुए नहीं हो, संवेदनशील नहीं हो।

यह विधि कहती है, 'यह चेतना ही प्रत्येक प्राणी के रूप में है, अन्य कुछ भी नहीं है।'

इसी भाव के साथ जीओ। इसके प्रति संवेदनशील होओ। और जहां भी तुम जाओ, इसी मन और हृदय के साथ जाओ कि सब कुछ चेतना है, और कुछ भी नहीं है। देर-अबेर संसार अपना चेहरा बदल लेगा। देर-अबेर पदार्थ मिटने लगेंगे और प्राणी नजर आने लगेंगे। देर-अबेर पूरा संसार प्रकाशित हो जाएगा और तुम्हें पता चलेगा कि अभी तक तुम अपनी असंवेदनशीलता के कारण मुर्दा पदार्थ के संसार में रह रहे थे। वरना तो सब कुछ जीवंत है, न केवल जीवंत है, बल्कि चेतन है।

सब कुछ गहरे में चेतना ही है। लेकिन यदि तुम एक सिद्धांत की तरह ही इसमें विश्वास करते हो तो कुछ भी नहीं होगा। तुम्हें इसे जीवन की एक शैली बनाना पड़ेगा, जीवन का ढंग बनाना पड़ेगा, ऐसे व्यवहार करना पड़ेगा जैसे कि सब कुछ चेतन है। शुरू में तो यह 'जैसे कि' ही होगा और तुम्हें पागलपन लगेगा, लेकिन अगर तुम अपने पागलपन पर डटे ही रहो और यदि तुम पागल होने का साहस कर सको तो जल्दी ही संसार अपने रहस्य प्रकट करने लगेगा।

इस अस्तित्व के रहस्यों में प्रवेश करने का एकमात्र उपाय विज्ञान ही नहीं है। वास्तव में तो यह सबसे अपरिष्कृत ढंग है, सबसे धीमी विधि है। संत तो एक क्षण के भीतर अस्तित्व में प्रवेश कर सकता है। विज्ञान तो उतना भीतर उतरने में लाखों वर्ष लगाएगा। उपनिषद कहते हैं कि संसार माया है, कि पदार्थ केवल भासता है, लेकिन विज्ञान पांच हजार साल बाद कह सका है कि पदार्थ झूठ है। उपनिषद कहते हैं कि गहरे में यह ऊर्जा चेतना ही है, विज्ञान को अभी पांच हजार साल और लगेंगे। धर्म एक छलांग है; विज्ञान बहुत धीमी प्रक्रिया है। बुद्धि छलांग नहीं ले सकती; उसे तर्क से चलना पड़ता है—हर तथ्य पर तर्क देना पड़ता है, सिद्ध करना पड़ता है, प्रयोग करना पड़ता है—लेकिन हृदय छलांग ले सकता है।

याद रखो, बुद्धि के लिए एक प्रक्रिया जरूरी है, फिर निष्कर्ष निकलता है—पहले प्रक्रिया, फिर तर्कपूर्ण निष्पत्ति। हृदय के लिए निष्कर्ष पहले आता है, फिर प्रक्रिया आती है। यह बिलकुल विपरीत है। यही कारण है कि संत कुछ सिद्ध नहीं कर सकते। उनके पास निष्कर्ष है, पर प्रक्रिया नहीं है।

शायद तुम्हें पता न हो, शायद तुमने ध्यान न दिया हो, कि संत सदा निष्कर्षों की बात करते हैं। यदि तुम उपनिषद पढ़ो तो तुम्हें केवल निष्कर्ष ही मिलेंगे। जब पहली बार उपनिषदों को पश्चिमी भाषाओं में अनुवादित किया गया तो पश्चिमी दार्शनिक समझ ही नहीं पाए, क्योंकि उनके पीछे कोई तर्क नहीं था। उपनिषद कहते हैं, 'ब्रह्म है।' और इसके लिए कोई तर्क नहीं देते। तुम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कैसे ? क्या प्रमाण है ? किस आधार पर तुम घोषणा करते हो कि ब्रह्म है ? नहीं, उपनिषद कुछ नहीं कहते, बस निष्कर्ष देते हैं।

हृदय तत्क्षण निष्कर्ष पर पहुंच जाता है। और जब निष्कर्ष आ जाए तो तुम प्रक्रिया शुरू कर सकते हो। दर्शन का यही अर्थ है।

संत निष्कर्ष देते हैं और दार्शनिक उसकी प्रक्रिया बनाते हैं। जीसस निष्कर्ष पर पहुंचे और फिर संत अगस्तीन, थामस अकीनस ने प्रक्रिया पैदा की। वह बाद की बात है। निष्कर्ष पहले आ गया, अब तुम्हें प्रमाण जुटाने होंगे। प्रमाण संत के जीवन में है। वह इसके लिए विवाद नहीं कर सकता। वह स्वयं ही प्रमाण है, यदि तुम उसे देख सको। यदि तुम देख न सको, तब तो कोई प्रमाण नहीं है। तब धर्म व्यर्थ है।

तो इन विधियों को सिद्धांत मत बनाओ। ये सिद्धांत नहीं हैं। ये तो छलांगें हैं–अनुभव में, निष्कर्ष में।

अपने ही आंतरिक मार्गदर्शक बनो

तीसरी विधि :

108. यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो।

पहली बात, मार्गदर्शक तुम्हारे भीतर है, पर तुम उसका उपयोग नहीं करते। और इतने समय से, इतने जन्मों से तुमने उसका उपयोग नहीं किया है कि तुम्हें पता ही नहीं है कि तुम्हारे भीतर कोई विवेक भी है। मैं कास्तानेद की पुस्तक पढ़ रहा था। उसका गुरु, डान जुआन उसे एक सुंदर सा प्रयोग करने के लिए देता है। यह प्राचीनतम प्रयोगों में से एक है।

एक अंधेरी रात में, पहाड़ी रास्ते पर कास्तानेद का गुरु कहता है, 'तू भीतरी मार्गदर्शक पर भरोसा करके दौड़ना शुरू कर दे !' यह खतरनाक था। पहाड़ी रास्ता था, अनजान था, वृक्षों-झाड़ियों से भरा था, खाइयां भी थीं। वह कहीं भी गिर सकता था। वहां तो दिन में भी संभल-संभलकर चलना पड़ता था, और यह तो अंधेरी रात थी। उसे कुछ सुझाई नहीं पड़ता था। और उसका गुरु बोला, 'चल मत, दौड़ !'

उसे तो भरोसा ही न आया ! यह तो आत्महत्या करने जैसा हो गया। वह डर गया। लेकिन गुरु दौड़ा। वह बिलकुल वन्य प्राणी की तरह दौड़ता हुआ गया और वापस आ गया। और कास्तानेद को समझ नहीं आया कि वह कैसे दौड़ रहा था; और न केवल वह दौड़ रहा था बल्कि हर बार दौड़ता हुआ वह सीधा उसी के पास आता जैसे कि वह देख सकता हो। फिर धीरे-धीरे कास्तानेद ने साहस जुटाया। जब यह बूढ़ा आदमी दौड़ सकता है तो वह क्यों नहीं दौड़ सकता ! उसने कोशिश की, और धीरे-धीरे उसे लगा कि कोई आंतरिक प्रकाश उठ रहा है। फिर वह दौड़ने लगा।

तुम केवल तभी होते हो जब तुम सोचना बंद कर देते हो। जिस क्षण तुम सोचना बंद करते हो, अंतस घटित होता है। यदि तुम न सोचो तो सब ठीक है। यह ऐसे ही है जैसे कोई भीतरी मार्गदर्शक कार्य कर रहा हो। तुम्हारी बुद्धि ने तुम्हें भटकाया है। और सबसे बड़ा भटकाव यह है कि तुम अंतर्विवेक पर भरोसा नहीं कर सकते।

तो पहले तुम्हें अपनी बुद्धि को राजी करना पड़ेगा। यदि तुम्हारा विवेक कहता भी है कि आगे बढ़ो तो तुम्हें अपनी बुद्धि को राजी करना पड़ता है, और तब तुम अवसर चूक जाते हो। क्योंकि कई क्षण होते हैं, या तो तुम उनका उपयोग कर ले सकते हो, या उन्हें चूक जाओगे। बुद्धि समय लगाती है; और जब तक तुम सोचते हो विचार करते हो, तब तक अवसर हाथ से निकल जाता है। जीवन तुम्हारे लिए इंतजार नहीं करेगा। तुम्हें तत्क्षण जीना होता है। तुम्हें योद्धा बनना पड़ता है--जैसे झेन में कहते हैं--क्योंकि जब तुम रणभूमि में तलवार लेकर लड़ रहे हो तो तुम सोचते नहीं, तुम्हें बिना सोचे-विचारे लड़ना होता है।

झेन गुरुओं ने तलवार का ध्यान की विधि की तरह उपयोग किया है। और जापान में कहते हैं कि यदि दो झेन गुरु, दो ध्यानस्थ व्यक्ति तलवारों से युद्ध कर रहे हों तो परिणाम कभी निकल ही नहीं सकता। न कोई हारेगा न कोई जीतेगा, क्योंकि दोनों ही विचार नहीं कर रहे। तलवारें उनके हाथों में नहीं हैं, उनके अंतर्विवेक, विचारशून्य भीतरी मार्गदर्शक के हाथों में हैं। और इससे पहले कि दूसरा आक्रमण करे, विवेक जान लेता है और प्रतिरक्षा कर लेता है। तुम उसके बारे में सोच नहीं सकते क्योंकि समय ही नहीं है। दूसरा तुम्हारे हृदय का निशाना बना रहा है। एक ही क्षण में तलवार तुम्हारे हृदय में घुस जाएगी। इस विषय में सोचने का समय ही नहीं है कि क्या करना है। जैसे ही उसके मन में यह विचार उठता है कि 'हृदय में तलवार घुसा दो' उसी समय तुममें

विचार उठना चाहिए कि 'बचो'–उसी क्षण, बिना किसी विलंब के–केवल तभी तुम बच सकते हो। वरना तो तुम समाप्त हो जाओगे।

तो वे तलवारबाजी को ध्यान की तरह सिखाते हैं और कहते हैं, 'हर क्षण अंतर्विवेक से जीओ, सोचो मत। अंतस जो चाहे, उसे करने दो। मन के द्वारा हस्तक्षेप मत करो।'

यह बहुत कठिन है, क्योंकि हम तो अपने मन से ही इतने प्रशिक्षित हैं। हमारे स्कूल, हमारे कालेज, हमारे विश्वविद्यालय, हमारी संस्कृति, सभ्यता, सभी हमारे मस्तिष्क को भरते हैं। हमारा अपने अंतर्विवेक से संबंध टूट गया है। सब उस अंतर्विवेक के साथ ही पैदा होते हैं, लेकिन उसे काम नहीं करने दिया जाता। वह करीब-करीब अपंग हो जाता है। पर उसे पुनरुज्जीवित किया जा सकता है। यह सूत्र इसी अंतर्विवेक के लिए है।

'यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो।'

खोपड़ी से मत सोचो। सच में तो, सोचो ही मत। बस बढ़ो। कुछ परिस्थितियों में इसे करके देखो। यह कठिन होगा, क्योंकि सोचने की पुरानी आदत होगी। तुम्हें सजग रहना पड़ेगा कि सोचना नहीं है, बस भीतर से महसूस करना है कि मन में क्या आ रहा है। कई बार तुम उलझन में पड़ सकते हो कि यह अंतर्विवेक से उठ रहा है या मन की सतह से आ रहा है। लेकिन जल्दी ही तुम्हें अंतर पता लगना शुरू हो जाएगा।

जब भी कुछ तुम्हारे भीतर से आता है तो वह नाभि से ऊपर की ओर उठता है। तुम उसके प्रवाह, उसकी ऊष्णता को नाभि से ऊपर उठते हुए अनुभव कर सकते हो। जब भी तुम्हारा मन सोचता है तो वह ऊपर-ऊपर होता है, सिर में होता है और फिर नीचे उतरता है। यदि तुम्हारा मन कुछ सोचता है तो उसे नीचे धक्का देना पड़ता है। यदि तुम्हारा अंतर्विवेक कोई निर्णय लेता है तो तुम्हारे भीतर कुछ उठता है। वह तुम्हारे अंतरतम से तुम्हारे मन की ओर आता है। मन उसे ग्रहण करता है। पर वह निर्णय मन का नहीं होता, वह पार से आता है। और यही कारण है कि मन उससे डरता है। बुद्धि उस पर भरोसा नहीं कर सकती, क्योंकि वह गहरे से आता है–बिना किसी तर्क के, बिना किसी प्रमाण के बस उभर आता है।

तो किन्हीं परिस्थितियों में इसे करके देखो। उदाहरण के लिए, तुम जंगल में रास्ता भटक गए हो तो इसे करके देखो। सोचो मत, बस अपनी आंख बंद कर लो, बैठ जाओ, ध्यान में चले जाओ और सोचो मत। क्योंकि वह व्यर्थ है; तुम सोच कैसे सकते हो ? तुम कुछ जानते ही नहीं हो। लेकिन सोचने की

ऐसी आदत पड़ गई है कि तुम तब भी सोचते चले जाते हो जब सोचने से कुछ भी नहीं हो सकता। सोचा तो उसी के बारे में जा सकता है, जो तुम पहले से जानते हो। तुम जंगल में रास्ता खो गए हो, तुम्हारे पास कोई नक्शा नहीं है, कोई मौजूद नहीं है जिससे तुम पूछ लो। अब तुम क्या सोच सकते हो ? लेकिन तुम तब भी कुछ न कुछ सोचोगे। वह सोचना बस चिंता करना ही होगा, सोचना नहीं होगा। और जितनी तुम चिंता करोगे उतना ही अंतर्विवेक कम काम कर पाएगा।

तो चिंता छोड़ो, किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाओ और विचारों को विदा हो जाने दो। बस प्रतीक्षा करो, सोचो मत। कोई समस्या मत खड़ी करो, बस प्रतीक्षा करो। और जब तुम्हें लगे कि निर्विचार का क्षण आ गया है, तब खड़े हो जाओ और चलने लगो। जहां भी तुम्हारा शरीर जाए, उसे जाने दो। तुम बस साक्षी बने रहो, कोई हस्तक्षेप मत करो। खोया हुआ रास्ता बड़ी सरलता से पाया जा सकता है, लेकिन एकमात्र शर्त है कि मन के द्वारा हस्तक्षेप न हो।

ऐसा कई बार अनजाने में हुआ है। महान वैज्ञानिक कहते हैं कि जब भी कोई बड़ी खोज हुई है मन के द्वारा नहीं हुई, सदा अंतःप्रज्ञा के ही कारण हुई है।

मैडम क्यूरी गणित की एक समस्या को सुलझाने में लगी हुई थी। जो कुछ भी संभव था, उसने सब किया। फिर वह ऊब गई। कई दिन से, हफ्तों से वह उस पर कार्य कर रही थी और कुछ हल नहीं निकल रहा था, वह पागल हुई जा रही थी। हल का कोई उपाय ही नजर नहीं आ रहा था। फिर एक रात थक कर वह लेट गई और सो गई। और रात को सपने में उसका उत्तर एकदम उभर आया। वह उससे इतनी जुड़ी हुई थी कि उसका सपना टूट गया, वह जाग गई। उसी क्षण उसने उत्तर लिख डाला, क्योंकि सपने में यह तो आया नहीं था कि करना कैसे है, बस उत्तर सामने आ गया। उसने एक कागज पर उत्तर लिख लिया और फिर सो गई।

सुबह वह हैरान हुई; उत्तर बिलकुल ठीक था, पर वह जानती नहीं थी कि उसे निकाला कैसे गया था। कोई प्रक्रिया, कोई तरीका नहीं दिया हुआ था। फिर उसने प्रक्रिया खोजने की कोशिश की। अब यह आसान बात थी क्योंकि उत्तर हाथ में था और उत्तर लेकर पीछे बढ़ना सरल था। इस सपने के कारण उसने नोबेल पुरस्कार जीता। लेकिन वह सदा ही हैरान रही कि यह हुआ कैसे !

जब तुम्हारा मन थक जाता है और आगे नहीं बढ़ सकता, तो वह थक

कर रुक जाता है; थकने के उस क्षण में अंतर्विवेक इशारे दे सकता है, हल दे सकता है, कुंजियां दे सकता है। जिस व्यक्ति को मनुष्य की कोशिका की आंतरिक संरचना की खोज के लिए नोबल पुरस्कार मिला, उसने भी उसकी संरचना को एक सपने में देखा। उसने मानवीय-कोशिका की पूरी आंतरिक संरचना को सपने में देखा और सुबह उठकर उसकी पिक्चर बना दी। उसे खुद भी भरोसा नहीं था कि यह ठीक है, तो उसे कई वर्षों तक उस पर काम करना पड़ा। कई वर्ष उस पर काम करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि सपना सच्चा था।

मैडम क्यूरी के साथ ऐसा हुआ कि जब उसे अंतःप्रज्ञा की इस प्रक्रिया का पता चला तो उसने निश्चय कर लिया कि वह प्रयोग करके देखेगी। एक बार एक समस्या आ गई जिसे वह हल करना चाहती थी, तो उसने सोचा, 'इसके लिए क्यों व्यर्थ ही चिंता करूं और श्रम करूं ? बस सो जाती हूं।' वह मजे से सो गई, पर कोई हल नहीं आया। तो वह थोड़ी परेशान हुई। कई बार उसने कोशिश की, जब भी कोई समस्या आती तो वह सो जाती। लेकिन कोई हल न निकलता। पहले बुद्धि को पूरी तरह से थकाना होता है, तभी हल आता है। खोपड़ी को पूरी तरह से थका देना होता है, नहीं तो वह स्वप्न में भी चलती रहती है।

तो अब वैज्ञानिक कहते हैं कि सभी बड़ी खोजें अंतःप्रज्ञा से आती हैं, बौद्धिक नहीं होतीं। भीतरी मार्गदर्शन का यही अर्थ है।

'यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो।'

मस्तिष्क को छोड़ दो और इस अंतःप्रज्ञा में उतर जाओ। पुराने शास्त्र कहते हैं कि बाह्य गुरु केवल तुम्हें भीतर के गुरु से मिलवाने में मदद कर सकता है। बस इतना ही। एक बार बाह्य गुरु तुम्हें गुरु से मिलवा दे तो उसका काम समाप्त हो जाता है।

गुरु के द्वारा तुम सत्य तक नहीं पहुंच सकते; गुरु के द्वारा तुम बस भीतर के गुरु तक पहुंच सकते हो। और तब वह भीतर का गुरु तुम्हें सत्य तक ले जाएगा। बाह्य गुरु तो बस एक प्रतिनिधि है, एक विकल्प है। उसने अपना भीतरी मार्गदर्शक खोज लिया है और वह तुम्हारे मार्गदर्शक को देख सकता है, क्योंकि वे दोनों एक ही तल पर हैं; एक ही लय में, एक ही आयाम में हैं। यदि मैंने अपना अंतर्विवेक खोज लिया है तो मैं तुममें झांक कर तुम्हारे अंतर्विवेक को महसूस कर सकता हूं। और यदि मैं वास्तव में तुम्हारा पथ-प्रदर्शक हूं तो मेरा सारा सहयोग तुम्हें तुम्हारे अंतर्विवेक तक पहुंचाने के लिए होगा।

एक बार तुम्हारा अपने अंतर्विवेक से संबंध बन जाए तो मेरी कोई जरूरत नहीं है। अब तुम अकेले चल सकते हो। तो गुरु बस इतना ही कर सकता है कि वह तुम्हें झोंपड़ी से नाभि पर ढकेल दे, तुम्हारी तार्किक बुद्धि से तुम्हें आस्थावान मार्गदर्शक की ओर धक्का दे दे। और ऐसा केवल मनुष्यों में ही नहीं है, ऐसा पशु-पक्षियों, वृक्षों, सबके साथ होता है। सब में अंत:प्रज्ञा होती है। और अब तो कई नई बातें पता चली हैं जो बहुत रहस्यमय हैं।

बहुत सी घटनाएं हैं। उदाहरण के लिए, एक मादा मछली अंडे देते ही मर जाती है। पिता अंडों को सेता है और फिर वह भी मर जाता है। अंडे बिना माता-पिता के रहते हैं। वे परिपक्व हो जाते हैं। नई मछलियां पैदा हो जाती हैं। ये मछलियां अपने माता-पिता के बारे में कुछ नहीं जानतीं; उन्हें नहीं पता होता कि वे कहां से आई थीं। लेकिन ये मछलियां समुद्र के किसी भी हिस्से में हों, वे अंडे देने उसी जगह पहुंच जाएंगी जहां उनके माता-पिता अंडे देने आए थे। वे स्रोत पर लौट जाएंगी। ऐसा बार-बार होता रहा है। और जब भी उन्हें अंडे देने होंगे वे इसी किनारे पर लौट आएंगी, अंडे देंगी और मर जाएंगी।

तो मां-बाप और बच्चों के बीच कोई संपर्क नहीं है पर किसी तरह बच्चे जानते हैं कि उन्हें कहां जाना है, और वे कभी चूकते नहीं। और तुम उन्हें भटका नहीं सकते। ऐसा करने की कोशिश की गई है। लेकिन तुम उन्हें भटका नहीं सकते, वे स्रोत पर लौट ही जाएंगे। कोई अंतर्प्रेरणा काम कर रही है।

सोवियत रूस में वे बिल्लियों, चूहों और बहुत से छोटे जानवरों के साथ प्रयोग करते रहे हैं। एक बिल्ली को उसके बच्चे से अलग कर लिया गया और बच्चों को समुद्र में गहरे ले जाया गया; उसे पता नहीं लग सकता था कि उसके बच्चों के साथ क्या हो रहा है। हर तरह के वैज्ञानिक यंत्र बिल्ली के साथ लगा दिए गए थे, ताकि यह पता चल सके कि बिल्ली के मन में और हृदय में क्या चल रहा है। फिर उसके एक बच्चे को मारा गया, गहरे समुद्र में-एकदम से मां को पता चल गया। उसका रक्तचाप बदल गया। वह चिंतित हो गई, उसके दिल की धड़कन बढ़ गई-जैसे ही बच्चे को मारा गया, और वैज्ञानिक यंत्रों ने बताया कि उसे बड़ी पीड़ा हुई। फिर कुछ समय बाद सब कुछ सामान्य हो गया। फिर दूसरा बच्चा मारा गया, फिर परिवर्तन हुआ। और तीसरे बच्चे के साथ भी ऐसा ही हुआ। हर बार बिलकुल उसी समय ही ऐसा हुआ। क्या हो रहा था ?

अब रूसी वैज्ञानिक कहते हैं कि मां के पास एक अंतर्प्रेरणा होती है, अनुभूति का एक अंतर्केंद्र होता है, और वह बच्चों के साथ जुड़ा होता है, चाहे वे कहीं

भी हों। और वह तत्क्षण एक टेलीपैथिक संवेदना अनुभव करती है। मनुष्यों में मां इतना अनुभव नहीं कर सकती। यह बड़ी हैरानी की बात है; मनुष्य को अधिक अनुभव करना चाहिए क्योंकि वह अधिक विकसित है। लेकिन वह नहीं कर पाती क्योंकि मस्तिष्क ने सब कुछ अपने हाथों में ले लिया है और सारे आंतरिक केंद्र अपंग पड़ गए हैं।

'यह चेतना ही प्रत्येक की मार्गदर्शक सत्ता है, यही हो रहो।'

जब भी तुम किसी परिस्थिति में बहुत परेशान होओ और तुम्हें पता न चले कि उसमें से कैसे निकलना है तो सोचो मत, बस गहरे निर्विचार में चले जाओ और अपने अंतर्विवेक को अपना मार्गदर्शन करने दो। शुरू-शुरू में तो तुम्हें भय लगेगा, असुरक्षा महसूस होगी, पर जल्दी ही जब तुम हर बार ठीक निष्कर्ष पर पहुंचोगे, जब तुम हर बार ठीक द्वार पर पहुंच जाओगे, तुममें साहस आ जाएगा और तुम भरोसा करने लगोगे।

यदि यह भरोसा आता है तो उसे ही मैं श्रद्धा कहता हूं। यह वास्तव में आध्यात्मिक श्रद्धा है, अंतर्विवेक में श्रद्धा। बुद्धि तुम्हारे अहंकार का हिस्सा है। वह तो अपने आप पर ही भरोसा है। जिस क्षण तुम अपने में गहरे उतरते हो, तुम ब्रह्मांड की आत्मा में पहुंच जाते हो। तुम्हारी अंतःप्रज्ञा परम विवेक का अंश है। जब तुम अपना ही अनुसरण करते हो तो सब कुछ उलझा देते हो और तुम्हें कुछ पता नहीं चलता कि तुम क्या कर रहे हो। तुम अपने को बहुत ज्ञानी समझ सकते हो, पर हो नहीं।

ज्ञान तो हृदय से आता है, बुद्धि से नहीं। ज्ञान तुम्हारी आत्मा के अंतरतम से उठता है, मस्तिष्क से नहीं। अपनी खोपड़ी को अलग हटा कर रख दो और आत्मा का अनुसरण करो, चाहे वह जहां भी ले जाए। अगर वह खतरे में भी ले जाए तो खतरे में जाओ क्योंकि वही तुम्हारे लिए और तुम्हारे विकास के लिए मार्ग होगा। खतरे से तुम विकसित होओगे और पकोगे। यदि अंतर्विवेक तुम्हें मृत्यु की ओर भी ले जाए तो भी उसके पीछे जाओ, क्योंकि वही तुम्हारा मार्ग होगा। उसका अनुसरण करो, उसमें श्रद्धा करो और उस पर चल पड़ो।

आज इतना ही।

78

अंतःप्रज्ञा से जीना

प्रश्न-सार

1. *कुछ विधियां बहुत विकसित लोगों के लिए लगती हैं।*
2. *अंतर्विवेक को कैसे पहचानें ?*
3. *क्या अंतःप्रज्ञा से जीने वाला व्यक्ति बौद्धिक रूप से कमजोर होगा ?*

पहला प्रश्न :

इन एक सौ बारह विधियों में से कुछ विधियां ऐसे लगती हैं जैसे विधियां नहीं परिणाम हों, जैसे कि 'जागतिक चेतना बन जाओ' या 'यही एक हो रहो' आदि। ऐसा लगता है जैसे इन विधियों को उपलब्ध होने के लिए भी हमें विधियों की जरूरत है। क्या ये विधियां बहुत विकसित लोगों के लिए थीं जो कि इंगित मात्र से ही ब्रह्मांडीय बन सकते थे ?

ये विधियां बहुत विकसित लोगों के लिए नहीं थीं, बड़े निर्दोष लोगों के लिए थीं–भोले-भाले, सीधे-सादे, श्रद्धा से भरे लोगों के लिए थीं। फिर एक इशारा काफी है, एक इंगित पर्याप्त है। तुम्हें कुछ करना पड़ता है क्योंकि तुम श्रद्धा नहीं कर सकते। तुम्हें भरोसा नहीं है। जब तक तुम कुछ करो न, तुम्हारे साथ कुछ हो नहीं सकता क्योंकि तुम कृत्य में विश्वास करते हो। यदि अचानक तुम्हारे बिना किए कुछ हो जाए तो तुम बहुत भयभीत हो जाओगे और उस पर विश्वास नहीं करोगे। तुम उसे नजर-अंदाज भी कर सकते हो; हो सकता है तुम अपने मन में इसकी छाप भी न बनने दो कि कभी ऐसा भी हुआ।

जब तक तुम कुछ करो न, तुम महसूस ही नहीं कर सकते कि तुम्हें कुछ हो रहा है। यह अहंकार का ढंग है। लेकिन एक सीधे-सादे आदमी के लिए, एक निर्दोष, खुले मन के लिए बस एक सुझाव पर्याप्त है। क्यों ? क्योंकि वास्तव

में अंतरतम अस्तित्व कोई भविष्य में पाई जाने वाली वस्तु नहीं है, वह अभी और यहां है, वह तो मौजूद ही है।

जो भी पाना है वह पाया ही हुआ है, ठीक अभी इसी क्षण में तुममें मौजूद है। यदि तुम बिना किसी प्रयास के श्रद्धा कर सको तो वह प्रकट हो सकता है। इसके लिए समय का, तुम्हारे प्रयास का सवाल ही नहीं है। वह कोई बहुत दूर नहीं है जहां तुम्हें यात्रा करके जाना पड़े, तुम ही हो वह। तुम इसे परमात्मा कह सकते हो, निर्वाण कह सकते हो, या जो तुम कहना चाहो, यह तुम ही हो।

तो एक सुझाव पर भी अगर पूरी तरह से भरोसा कर लिया जाए तो यह प्रकट हो सकता है। इसीलिए श्रद्धा को इतना महत्त्व दिया गया है। यदि कोई व्यक्ति गुरु में श्रद्धा कर सके तो बस एक संकेत, एक सुझाव, एक इंगित–और सब कुछ प्रकट हो जाएगा।

मूल बात जो समझने की है वह यह है—कुछ चीजें ऐसी हैं जिन्हें तुम ठीक अभी प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि उन्हें पैदा करने में समय लगेगा। वे तुम्हारे साथ ही नहीं हैं। यदि मैं तुम्हें एक बीज दूं तो वह तत्क्षण एक वृक्ष नहीं बन सकता। समय की जरूरत होगी और तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, श्रम करना पड़ेगा। बीज एकदम से वृक्ष नहीं बन सकता। लेकिन तुम तो पहले से ही वृक्ष हो।

यह कोई बीज नहीं है जिस पर श्रम करना पड़े। यह एक वृक्ष है जो अंधेरे में छिपा है, जो ढंका है, जिसकी ओर तुम्हारा ध्यान नहीं है–बस इतना ही। तुम्हारा ध्यान न देना ही आवरण है। तुम बस उसकी ओर देख नहीं रहे। तुम कहीं और देख रहे हो इसलिए चूक रहे हो। श्रद्धा के किसी क्षण में गुरु तुम्हें बस एक इशारे से ही बता सकता है, कि यह देखो। और यदि तुम भरोसा कर सको, यदि तुम श्रद्धा से उस आयाम में देख सको तो वह तुम पर प्रकट हो जाएगा।

ये विधियां कोई विकसित लोगों के लिए नहीं हैं; ये भोले-भाले और सीधे-सादे लोगों के लिए हैं। विकसित लोग एक प्रकार से जटिल होते हैं। वे निर्दोष नहीं होते, उन्होंने श्रम किया है, कुछ पाया है और उसके पीछे उनका एक सूक्ष्म अहंकार होता है। वे बहुत कुछ जानते हैं इसलिए सरल नहीं हैं, वे श्रद्धा नहीं कर सकते। तुम्हें विवाद करना पड़ेगा और उन्हें राजी करना पड़ेगा, और फिर भी उन्हें कुछ प्रयास करना पड़ेगा।

एक निर्दोष मन से मेरा अर्थ है ऐसा मन जो विवाद नहीं करता, बिलकुल छोटे बच्चे जैसा है। बच्चा अपने पिता का हाथ पकड़ कर चलता है और उसे

कोई भय नहीं होता। पिता जहां भी ले जा रहा है ठीक ही ले जा रहा होगा। पिता जानता है तो बच्चे को इसकी चिंता करने की जरूरत नहीं है। वह भविष्य की नहीं सोचता, क्या होने वाला है इसकी उसे चिंता ही नहीं है। वह यात्रा का ही आनंद ले रहा है; परिणाम कोई समस्या नहीं है। पिता के लिए समस्या हो सकती है। वह हो सकता है भयभीत हो। हो सकता है वह सोच रहा हो कि कहीं वे रास्ता तो नहीं भूल गए हैं, कि वे ठीक रास्ते पर चल रहे हैं कि नहीं। लेकिन बच्चे के लिए यह कोई समस्या नहीं है। उसे पता है कि पिता जानता है। इतना पर्याप्त है। और जहां भी पिता जाएगा, वह उसके पीछे जाएगा, और वह इसी क्षण में आनंदित है।

एक श्रद्धायुक्त शिष्य, एक सरल मन, बच्चे की तरह है—और गुरु पिता से अधिक है। एक बार शिष्य समर्पण कर देता है तो फिर श्रद्धा करता है। फिर किसी भी क्षण जब गुरु को लगता है कि शिष्य तैयार है, कि शिष्य लयबद्ध हो गया है, तो वह बस एक संकेत दे देगा।

मैंने एक झेन गुरु बोकोजू के बारे में सुना है। उसने बुद्धत्व पाने के लिए बड़ा श्रम किया, पर कुछ भी न हो पाया। वास्तव में कभी-कभी श्रम से कुछ भी नहीं हो पाता क्योंकि श्रम अहंकार के द्वारा होता है। और कठोर संघर्ष से अहंकार और भी मजबूत हो जाता है। जो भी किया जा सकता था उसने किया, लेकिन लक्ष्य जरा भी पास न आया। बल्कि और दूर ही होता गया, जहां से उसने शुरू किया था उससे भी दूर होता गया। वह परेशान था, हैरान था। तो वह अपने गुरु के पास आया।

गुरु ने कहा, 'कुछ वर्षों के लिए सब प्रयास, सब लक्ष्य, सब गंतव्य छोड़ दो। सब कुछ भूल जाओ और मेरे पास ही क्षण-क्षण जीओ। कुछ भी मत करो। बस खाओ, सोओ, चलो, और बस मेरे पास रहो। और कोई प्रश्न मत उठाओ—बस मुझे देखो, मेरी उपस्थिति को अनुभव करो। और कोई प्रयास मत करो क्योंकि कुछ भी पाना नहीं है। इस पाने वाले मन को भूल जाओ क्योंकि कुछ पाने वाला मन सदा भविष्य में होता है, इसीलिए वह वर्तमान को चूकता चला जाता है। बिलकुल भूल ही जाओ कि तुम्हें कुछ पाना है।'

बोकोजू ने अपने गुरु में भरोसा किया। उसने गुरु के साथ ही रहना शुरू कर दिया। कुछ दिन, कुछ महीने विचार आए। विचार आते, धारणाएं आतीं, वह परेशान हो जाता और सोचता, 'मैं समय व्यर्थ गंवा रहा हूं। मैं कुछ भी नहीं कर रहा। बिना कुछ किए भला क्या हो सकता है ? यदि इतने कठोर श्रम से न हो सका तो बिना कुछ किए इतनी आसानी से और क्या हो सकता

है ?' लेकिन फिर भी उसने गुरु में श्रद्धा रखी। धीरे-धीरे मन शिथिल हो गया और गुरु की उपस्थिति में उसे एक सूक्ष्म शांति का अनुभव होने लगा, गुरु की ओर से एक मौन उस पर बरसने लगा। उसे लगा कि वह विलीन हो रहा है। कई वर्ष बीत गए। वह भूल ही गया कि वह था भी। गुरु केंद्र बन गया और वह छाया की भांति जीने लगा।

फिर चमत्कार संभव होता है, यह घटना अपने आप में ही एक चमत्कार है। एक दिन अचानक गुरु ने उसका नाम पुकारा, 'बोकोजू, तुम यहां हो ?' बस इतना ही कहा, 'बोकोजू, तुम यहां हो ?' और उसने कहा, 'हां, गुरुदेव।' और कहा जाता है कि वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। इसमें तो कोई विधि भी नहीं थी, कोई संकेत तक नहीं था; बस, 'बोकोजू, तुम यहां हो ?' उसके पूरे अस्तित्व को पुकारा गया था, 'क्या तुम यहीं हो, कहीं और नहीं घूम रहे ? कहीं और नहीं गए हुए ? क्या तुम पूरी समग्रता से यहां उपस्थित हो ?' और बोकोजू ने कहा, 'हां, गुरुदेव।' उस 'हां' में वह पूरी तरह वहां उपस्थित हो गया।

कहते हैं कि गुरु हंसने लगा और बोकोजू भी हंसने लगा और गुरु ने कहा, 'अब तुम जा सकते हो। अब तुम बाहर जाकर अपनी उपस्थिति से लोगों की मदद कर सकते हो।'

बोकोजू ने कभी कोई विधि नहीं सिखाई। वह बस इतना ही कहता, 'बस मेरे पास रहो, उपस्थित रहो।' और जब भी कोई शिष्य समस्वरता में होता वह शिष्य का नाम लेकर कहता, 'क्या तुम यहां हो ?' यही एकमात्र विधि थी।

लेकिन इस विधि के लिए तुम्हारे मन के ठहराव की, एक सरलता की जरूरत होगी। कई विधियां हैं जो सरल हैं, सरलतम हैं। जैसे, 'यही एक हो रहो।' बस एक संकेत। लेकिन यह गुरु द्वारा किसी विशेष क्षण में कहा गया होगा। 'यही एक हो रहो' सदा नहीं कहा जा सकता। यह एक विशेष लयबद्धता में कहा गया होगा जब शिष्य पूरी तरह से गुरु के साथ होगा, या पूरी तरह से अस्तित्व में लीन होगा। फिर गुरु कहता है, 'यही एक हो रहो', और अचानक पूरा अवधान बदल जाता है और अहंकार की अंतिम कड़ी भी समाप्त हो जाती है।

ये विधियां अतीत में काम करती थीं, पर अब कठिन हो गई हैं, बहुत कठिन हो गई हैं, क्योंकि तुम बहुत हिसाबी-किताबी, बहुत चालाक हो गए हो। और चालाक होना निर्दोष होने के बिलकुल विपरीत है। तुम बहुत हिसाबी हो, तुम बहुत गणित जानते हो। यह हिसाब मन में चलता रहता है—तुम जो भी करो, सदा नपा-तुला होता है, योजनाबद्ध होता है। तुम कभी निर्दोष, खुले ग्रहणशील

नहीं होते; तुम अपने में जरूरत से ज्यादा विश्वास करते हो। इसीलिए तुम चूकते चले जाते हो। ये विधियां तुम्हारे लिए तब तक सहयोगी न होंगी जब तक तुम तैयार न हो जाओ। वह तैयारी बहुत लंबी भी हो सकती है और तुममें धैर्य बिलकुल नहीं है।

यह युग मूलतः पृथ्वी पर सबसे अधैर्यवान युग है। सब जल्दबाजी में हैं, समय के प्रति जागरूक हैं, सब चाहते हैं कि सब कुछ एकदम से हो जाए। ऐसा नहीं कि किया नहीं जा सकता, तत्क्षण भी सब कुछ किया जा सकता है। लेकिन इतने अधैर्य से यह असंभव है। मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि वे बस एक ही दिन के लिए आए हैं। अगले दिन वे साईंबाबा के पास जा रहे हैं, उसके बाद वे ऋषिकेश जाएंगे और फिर कहीं और जाएंगे। फिर वे बड़े निराश होकर लौटते हैं कि भारत के पास तो देने के लिए कुछ भी नहीं है।

इस बात का सवाल नहीं है कि भारत कुछ दे सकता है या नहीं, सवाल सदा इस बात का है कि तुम ले सकते हो या नहीं। तुम इतनी जल्दी में हो और सब कुछ एकदम से चाहते हो। बिलकुल इंस्टैंट काफी की तरह तुम इंस्टैंट ध्यान और इंस्टैंट निर्वाण की बात सोचते हो। यह संभव नहीं है। निर्वाण को किसी पैकेट में नहीं दिया जा सकता, इंस्टैंट नहीं दिया जा सकता। ऐसा नहीं है कि तत्क्षण इसे प्राप्त करना असंभव है, यह तत्क्षण मिल सकता है, लेकिन तत्क्षण केवल तभी मिल सकता है जब मन में जरा भी जल्दबाजी न हो। यही समस्या है। यह तत्क्षण, इसी क्षण घट सकता है। एक क्षण की भी जरूरत नहीं है। लेकिन बस उसे, जो समय के प्रति एकदम निश्चिंत है, जो अनंत तक प्रतीक्षा कर सकता है, उसके लिए यह तत्क्षण हो सकता है।

यह विरोधाभासी लगता है, पर ऐसा ही है। यदि तुम अनंत तक प्रतीक्षा कर सको तो प्रतीक्षा करने की जरूरत ही न रहेगी। लेकिन यदि तुम एक क्षण भी प्रतीक्षा न कर सको तो तुम्हें अनंत तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि जो मन कहता है, 'अभी तत्क्षण होना चाहिए,' वह मन इस क्षण से तो हट ही गया। वह दौड़ रहा है, वह कहीं भी रुकता नहीं है, बस हमेशा चल रहा है। जो मन हमेशा ही भाग रहा है वह निर्दोष नहीं हो सकता।

हो सकता है तुम्हें इसका पता न हो, लेकिन भोले-भाले लोग सदा समय से निश्िचत होते हैं। समय उनके लिए धीरे चलता है। कहीं जाने की जल्दी नहीं है, वे दौड़ नहीं रहे। वे हर क्षण का आनंद ले रहे हैं। हर क्षण का सार

निचोड़ रहे हैं। और हर क्षण के पास देने के लिए अपना आनंद है। लेकिन तुम इतनी जल्दी में हो कि तुम्हें दिया नहीं जा सकता। जबकि तुम यहां हो, तुम्हारे हाथ भविष्य में हैं, तुम्हारा मन भविष्य में है—तुम इस क्षण को चूक जाओगे। और सदा ऐसा ही होता रहेगा—तुम 'अभी' को हमेशा ही चूक जाओगे। और 'अभी' ही एकमात्र समय है। भविष्य झूठ है, अतीत बस एक स्मृति है। अतीत अब नहीं रहा, भविष्य अभी होना है; और हमेशा जो होता है वह अभी होता है। अभी एकमात्र समय है।

तो अगर तुम थोड़े शिथिल होने को, गैर-हिसाबी होने को, बच्चों की तरह खेलने को, अभी और यहीं होने को तैयार हो जाओ तो ये सरल विधियां चमत्कार कर सकती हैं। लेकिन यह सदी बहुत समय-बोध से भरी हुई है, बहुत टाइम कांशस है। इसीलिए तुम पूछते हो, 'ऐसा लगता है इन विधियों को उपलब्ध करने के लिए भी हमें और विधियों की जरूरत है।'

नहीं, 'ये विधियां ही हैं, परिणाम नहीं। ये परिणाम जैसी लगती हैं क्योंकि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते कि वे काम कर सकती हैं। वे केवल एक विशेष मन में काम कर सकती हैं। वे दूसरे तरह के मन में काम नहीं कर सकतीं। और वास्तव में, जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा है कि ये विधियां अंततः तुम्हें ऐसी निर्दोषता में ले जाएंगी जहां घटना घट सकती है। जब घटना घटती है तो इन विधियों के कारण घटती है क्योंकि ये विधियां तुम्हें उस निर्दोषता में ले जाएंगी—यदि निर्दोषता है तो।

लेकिन अब यह कठिन है क्योंकि कहीं भी निर्दोषता सिखाई ही नहीं जाती; सब जगह हम चालाकी सिखा रहे हैं। विश्वविद्यालय तुम्हें निर्दोष बनाने के लिए नहीं हैं, वे तुम्हें चालाक, धूर्त, हिसाबी-किताबी बनाने के लिए हैं। तुम जितने चालाक हो, जीवन के संघर्ष में उतने ही सफल होओगे। यदि तुम निर्दोष हो तो बेवकूफ सिद्ध होओगे। यदि तुम निर्दोष हो तो इस प्रतियोगी संसार में कहीं खड़े न रह पाओगे।

यही समस्या है, इस प्रतियोगी संसार में हो सकता है तुम कहीं न टिक पाओ, लेकिन निर्वाण के उस अप्रतियोगी जगत में अगर तुम निर्दोष हो तो ही तुम टिक पाओगे। यदि तुम हिसाबी-किताबी हो तो निर्वाण के जगत में प्रवेश नहीं पा सकोगे, लेकिन इस संसार में सफल होओगे। और इस संसार को ही हमने अपना लक्ष्य चुना है।

पुराने विश्वविद्यालय बिलकुल भिन्न थे, उनके दृष्टिकोण बिलकुल भिन्न थे। नालंदा, तक्षशिला, वे हिसाब नहीं सिखाते थे, वे चालाकी नहीं सिखाते थे। वे

निर्दोषता सिखा रहे थे। उनके ढंग आक्सफर्ड या काशी या केम्ब्रिज से भिन्न थे। वे बिलकुल भिन्न थे, वे एक अलग तरह के मन का निर्माण कर रहे थे।

तो अक्सर ऐसा होता था कि जो व्यक्ति तक्षशिला या नालंदा में पढ़ता था वह भिक्षु या संन्यासी हो जाता था। जब तक वह विश्वविद्यालय से स्नातक होता था, संसार का त्याग कर देता था। वे विश्वविद्यालय संसार से विपरीत थे; वे तुम्हें किसी और आयाम के लिए तैयार कर रहे थे, वे तुम्हें किसी और चीज के लिए तैयार कर रहे थे। जिसे तुम इस संसार की भाषा में नहीं तौल सकते। ये विधियां उस तरह के लोगों के लिए थीं। या तो वे स्वभाव से निर्दोष थे, या वे निर्दोष होने के लिए स्वयं को तैयार कर रहे थे।

जब जीसंस ने अपने शिष्यों से कहा, 'यदि कोई तुम्हें एक गाल पर मारे तो दूसरा गाल उसके सामने कर दो,' तो वह क्या कहना चाह रहे हैं ? वह तुम्हें निर्दोष बनाना चाह रहे हैं। कोई मूर्ख ही ऐसा करेगा। जब कोई तुम्हें एक गाल पर मारता है तो हिसाबी-किताबी मन कहेगा, 'तत्क्षण उसे और जोर से मारो।' और असली हिसाबी-किताबी मन कहेगा, 'इससे पहले कि कोई तुम्हें मारे, तुम उसे मार दो।' क्योंकि आक्रमण सर्वोत्तम सुरक्षा है। मैक्यावेली से पूछो—वह सबसे चालाक मस्तिष्क है—वह कहता है, इससे पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम उस पर आक्रमण कर दो क्योंकि आक्रमण सर्वोत्तम बचाव है। एक बार किसी ने तुम पर आक्रमण कर दिया तो तुम कमजोर पड़ गए; वह तुम पर पहले ही हावी हो गया। अब मुकाबला बराबरी का न रहा। वह तुमसे आगे है। तो शत्रु को आगे मत बढ़ने दो। इससे पहले कि कोई तुम पर आक्रमण करे, तुम आक्रमण कर दो।'

यह एक हिसाबी-किताबी मन है, एक चालाक मस्तिष्क है। मध्य यूरोप में हर राजा और हर राजकुमार ने मैक्यावेली को पढ़ा था; लेकिन वह इतना चालाक आदमी था कि कोई राजा उसे काम नहीं देता था। वह पढ़ा जाता था, उसकी किताब सत्ता की राजनीति की बाइबिल थी। सब राजकुमार उसकी पुस्तक 'दि प्रिंस' पढ़ते थे और उसका अनुसरण करते थे, लेकिन कोई राजा उसे काम पर रखने को तैयार नहीं था। क्योंकि वह बड़ा चालाक आदमी था, उसे दूर ही रखना अच्छा था। वह खतरनाक था; वह बहुत ज्यादा जानता था।

वह कहता था, 'पुण्य करना अच्छा नहीं है, पर पुण्यात्मा दिखाई देना अच्छा है। पुण्यात्मा बनो मत, पर हमेशा ऐसा दिखाओ कि तुम पुण्यात्मा हो। फिर बड़ा लाभ होता है क्योंकि तब तुम दोनों ही ओर से लाभान्वित होते हो—पाप और पुण्य दोनों का लाभ उठाते हो।' यह है हिसाबी-किताबी मन। ऐसा दिखावा

करते रहो कि तुम पुण्यात्मा हो और सदा पुण्य की प्रशंसा करो, लेकिन वास्तव में कभी पुण्यात्मा मत बनो। सदा पुण्य की प्रशंसा करो, ताकि दूसरे सोचें कि तुम बड़े पुण्यात्मा हो। हमेशा पाप की निंदा करो, लेकिन पाप करने से डरो मत।

जीसस कहते हैं, 'जब कोई तुम्हें एक गाल पर मारे तो उसके सामने दूसरा गाल कर दो। और अगर कोई तुम्हारा कोट छीन ले तो उसे अपनी कमीज भी दे दो। और अगर कोई एक मील तक तुम्हें अपना बोझ ढोने को कहे तो तुम दो मील तक बोझ ढो देना।'

यह एकदम मूर्खता है, लेकिन बड़ी अर्थपूर्ण। यदि तुम इसे कर सको तो यह विधि तुम्हारे लिए है। जीसस अपने शिष्यों को तत्काल-समाधि के लिए तैयार कर रहे हैं। जरा सोचो इस बारे में। यदि तुम इतने निर्दोष हो सको, इतने श्रद्धा से भर सको कि दूसरा अगर तुम्हें मार रहा है तो तुम्हारे भले के लिए ही मार रहा होगा, तो दूसरा गाल भी उसके आगे कर दो और उसे मारने दो। दूसरे की सज्जनता में तुमने विश्वास किया, श्रद्धा की। कोई भी तुम्हारा शत्रु नहीं है। जब जीसस कहते हैं, 'अपने शत्रुओं को प्रेम करो', उनका यही अर्थ है। कोई भी तुम्हारा शत्रु नहीं है; कहीं भी शत्रु मत देखो।

इसका यह अर्थ नहीं है कि शत्रु नहीं होंगे, या ऐसे लोग नहीं होंगे जो तुम्हारा शोषण नहीं करेंगे। ऐसे लोग होंगे। वे तुम्हारा शोषण करेंगे। लेकिन शोषित हो जाओ, पर चालाक मत होओ। जरा इस आयाम से देखो—शोषित हो जाओ, चालाक मत होओ। शोषित हो जाओ, पर संदेह मत करो, अश्रद्धा मत करो, अपना भरोसा मत खोओ। यह उस बात से ज्यादा मूल्यवान है जिसके लिए दूसरे तुम्हें धोखा दे सकते हैं। कुछ भी इतना मूल्यवान नहीं है।

लेकिन हमारा मन कैसे काम करता है ? अगर एक आदमी तुम्हें धोखा दे देता है तो पूरी मनुष्यता बेईमान हो जाती है। अगर एक आदमी बेईमान है—या तुम सोचते हो कि वह बेईमान है—तो तुम किसी आदमी में भरोसा नहीं कर सकते। फिर पूरी मनुष्यता बेईमान हो जाती है। अगर एक यहूदी कंजूस है तो पूरी यहूदी जाति कंजूस हो गई। अगर एक मुसलमान धर्मांध है तो सभी मुसलमान धर्मांध हैं। केवल एक आदमी काफी है सबसे हमारा भरोसा उठा लेने के लिए।

जीसस कहते हैं, 'अगर सब भी बेईमान हों, तब भी तुम्हें भरोसा नहीं खोना चाहिए क्योंकि भरोसा उस सबसे मूल्यवान है जो बेईमान लोग अपनी बेईमानी द्वारा तुमसे छीन सकते हैं।' तो अगर तुम भरोसा खो देते हो तो वास्तव में तुम सब कुछ खो देते हो; वरना कुछ भी नहीं खोता।

ऐसे निर्दोष लोगों के लिए ये विधियां पर्याप्त हैं, वे कुछ और नहीं मागेंगे। तुम कहो, और उनके साथ ऐसा हो जाता है। कई लोग बस गुरु को सुनकर ही समाधि को उपलब्ध हो गए हैं। लेकिन अतीत में, आज के युग में नहीं।

मैंने रिंझाई की एक कहानी सुनी है। वह एक गरीब भिक्षु, एक गरीब संन्यासी था। एक रात वह अपनी झोंपड़ी में सो रहा था, तभी एक चोर घुस आया। वहां एक कंबल को छोड़कर और कुछ भी नहीं था, जो उसने ओढ़ा हुआ था। वह जमीन पर उस कंबल को ओढ़कर सो रहा था। वह बड़ी परेशानी में पड़ गया और सोचने लगा, 'बेचारा ! इतनी दूर गांव से आया है कि उसे कुछ मिल जाए और मेरे झोंपड़े में कुछ भी नहीं है। कितने दुख की बात है ! अब इसकी मदद कैसे की जाए ? बस एक यह कंबल ही है।' और वह कंबल में ही लेटा हुआ था, चोर में इतना साहस नहीं था कि कंबल उससे खींच ले। तो वह कंबल में से खिसक कर एक अंधेरे कोने में सरक गया। चोर कंबल लेकर चला गया। रात बड़ी सर्द थी, लेकिन रिंझाई खुश था कि चोर खाली हाथ नहीं गया।

फिर वह अपने झोंपड़े की खिड़की में बैठ गया। रात सर्द थी और आकाश में पूरा चांद निकला हुआ था। उसने एक छोटी सी कविता लिखी। कविता में उसने कहा, 'अगर यह चांद भी मैं उस चोर को दे सकता तो दे देता।'

ऐसा हृदय ! उसने खोया क्या ? बस एक कंबल। और उसे मिला क्या ? पूरा जगत, सब कुछ। उसे सरलता मिली, श्रद्धा मिली, प्रेम मिला। इस आदमी के लिए किसी विधि की जरूरत नहीं है। उसका गुरु कहेगा, 'बस देख, जाग, होश में आ।' और वह ऐसा ही करेगा।

दूसरा प्रश्न :

अचेतन मन और अंतर्विवेक में कैसे अंतर करें ? यह कैसे जाना जा सकता है कि अंतर्विवेक कार्य करने लगा है ?

पहली बात, फ्रायड के कारण संसार में बड़ी गलतफहमियां पैदा हुई हैं, जैसे कि यह 'अचेतन।' फ्रायड ने इसे बिलकुल गलत समझा, इसकी बिलकुल गलत व्याख्या की। और वह आधुनिक मनोविज्ञान का आधार बन चुका है। फ्रायड के लिए अचेतन का अर्थ है चेतन का दमित हिस्सा। तो जो भी बुरा है, गंदा है, असभ्य है, वह दमित हो गया है। क्योंकि समाज उसकी आज्ञा नहीं देता, इसलिए उसे भीतर दबाना पड़ता है। फ्रायड कोई संत नहीं है; उसने अपने अचेतन में प्रवेश किया है। उसने बस मरीजों को देखा है। बीमार, असामान्य,

पागल, विक्षिप्त मन के इस अध्ययन से—वह भी बाहर-बाहर से—उसने निष्कर्ष निकाला कि चेतन मन के नीचे अचेतन मन है। उस अचेतन मन में वह सब कुछ दबा पड़ा है जो बचपन से दबाया गया है, जिसकी संसार ने निंदा की है। मन ने उसकी उपस्थिति को भूल जाने के लिए उसे दबा दिया है।

लेकिन वह है, और कार्य में रत है। और वह बहुत बलशाली है- तुम्हारे चेतन को बदलता रहता है, तुम्हारे चेतन के साथ चालें चलता रहता है। चेतन अचेतन के सामने बिलकुल नपुंसक है, क्योंकि जो भी दबाया गया है वह इतना शक्तिशाली है कि समाज उसे नहीं झेल सकता। समाज ने बस उसका दमन किया है, और समाज को पता भी नहीं है कि उसका क्या किया जाए।

उदाहरण के लिए, काम वासना इतनी शक्तिशाली है कि अगर तुम उसे दबाओ नहीं तो तुम्हें पता नहीं चलेगा कि इसका करना क्या है। वह तुम्हें खतरनाक रास्तों पर ले जाएगी। और यह इतनी शक्तिशाली ऊर्जा है कि यदि इसे पूरी स्वतंत्रता दे दी जाए तो सारा समाज अराजक हो जाएगा। कोई विवाह नहीं ठहर सकेगा, कोई प्रेम नहीं ठहर सकेगा। अगर इसे मुक्त कर दिया जाए तो सब ओर अराजकता फैल जाएगी, क्योंकि तब मनुष्य पशुओं की तरह व्यवहार करने लगेगा। यदि कोई विवाह न हो, कोई परिवार न हो, तो पूरा समाज नष्ट हो जाएगा। समाज परिवार की इकाई पर निर्भर है; परिवार विवाह पर निर्भर है; विवाह काम के दमन पर निर्भर है।

तो जो भी स्वाभाविक है, शक्तिशाली है, उसे निंदित कर दिया गया है, ताकि तुम जबरदस्ती उसके लिए ग्लानि अनुभव करो और उससे लड़ते रहो। समाज ने केवल बाहर ही सिपाही नहीं बैठाए, भीतर भी सिपाही बैठा दिए हैं—तुम्हारा अंतःकरण। एक दोहरा इंतजाम है ताकि तुम बच न सको, ताकि तुम स्वाभाविक न रह सको, तुम्हें अस्वाभाविक होना ही पड़े।

अब आधुनिक मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि विक्षिप्तता सभ्यता का अंग है, कोई भी सभ्यता पागलपन के बिना नहीं हो सकती। लेकिन पागल लोग कष्ट भोग रहे हैं क्योंकि तुमने ऐसे नियम उन पर लाद दिए हैं कि उनकी नैसर्गिक प्रवृत्तियां कुचल दी गई हैं। वे अपंग हो गए हैं। ऐसा संभव है कि तुम्हारे पागल तुमसे अधिक शक्तिशाली हों, इसीलिए उनकी आंतरिक प्रवृत्तियों ने विद्रोह कर दिया है और उन्होंने अपनी बुद्धि, अपना मन, सब कुछ उतार फेंका है, इसीलिए वे पागल हो गए हैं।

समाज की एक बेहतर व्यवस्था, एक बेहतर संगठन, एक बेहतर प्रणाली, जो अधिक ज्ञान और समझ से भरी होगी, पागलों का उपयोग कर सकती है।

वे जीनियस सिद्ध हो सकते हैं, वे बड़े प्रतिभाशाली लोग सिद्ध हो सकते हैं। वे प्रतिभाशाली हैं। लेकिन उनमें इतनी ऊर्जा है कि वे अपना दमन नहीं कर सकते। और समाज उन्हें स्वतंत्र रहने की आज्ञा नहीं देता क्योंकि वे खतरनाक हैं। फ्रायड इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि समाज के लिए अचेतन एक जरूरत है, एक दमित हिस्सा अनिवार्य है।

लेकिन तंत्र या योग के लिए यह अचेतन वास्तव में अचेतन नहीं है, बस चेतन और अचेतन के बीच एक छोटी सी पर्त है। यह अवचेतन है। चेतन ने उसे नीचे दबा लिया है, पर उसके बारे में तुम जानते हो। शायद तुम इसे पहचानना न चाहो, शायद तुम इसकी ओर ध्यान न देना चाहो, क्योंकि तुम्हें भय है कि तुमने अगर ध्यान दिया तो कहीं यह ऊपर न आ जाए। तो तुमने उसे अंधेरे में धकेल दिया है, पर उसके बारे में तुम जानते तो हो। फ्रायडियन अचेतन वास्तव में अचेतन नहीं है, बस अवचेतन है। यह अंधेरी रात नहीं है, प्रकाश में है, इसे तुम देख सकते हो।

तंत्र असली अचेतन की बात करता है, जिसे तुमने नहीं दबाया है बल्कि जो तुम्हारे अंतरतम में है। और तुम्हारा चेतन बस उसका एक हिस्सा है जो प्रकाश में आ गया है, उसका दसवां हिस्सा जो प्रकाश में आ गया है, चेतन बन गया है। नौ हिस्से नीचे छिपे हुए हैं। अचेतन वास्तव में तुम्हारी जीवन-ऊर्जा का, तुम्हारे अस्तित्व का स्रोत है। तुम्हारा चेतन मन पूरे मन का दसवां हिस्सा है, और इस चेतन मन ने अपना एक केंद्र निर्मित कर लिया है—वह केंद्र है अहंकार। यह केंद्र झूठा है क्योंकि इसका पूरे मन से कोई संबंध नहीं है, यह पूरे मन का केंद्र नहीं है। यह बस चेतन हिस्से का, एक अंश का केंद्र है। अंश ने अपना केंद्र निर्मित कर लिया है और वह केंद्र माने चला जाता है कि वह पूरे अस्तित्व का केंद्र है।

नहीं, तुम्हारे पूरे मन का एक केंद्र है—वह केंद्र विवेक है। वह केंद्र अचेतन है और केवल तभी प्रकट होगा जब पांच भाग, या आधा मन प्रकाश में आ जाए। फिर वह केंद्र, जो विवेक है, प्रकट होगा। वह अचेतन में छिपा है।

तो तुम्हें अचेतन से डरने की जरूरत नहीं है। फ्रायडियन अचेतन से तुम डरे हुए हो। वह डरने की चीज है। लेकिन इस फ्रायडियन अचेतन को रेचन के समय बाहर फेंका जा सकता है। इसीलिए रेचन पर मेरा इतना जोर है। इस फ्रायडियन अचेतन को रेचन में बाहर फेंका जा सकता है—जो भी तुम करना चाहते थे और कर नहीं पाए, उसे ध्यानपूर्वक करो। किसी और के साथ कुछ मत करो, क्योंकि इससे एक शृंखला बन जाएगी और तुम नियंत्रण में नहीं रहोगे।

बस हवा में करो। यदि क्रोधित महसूस कर रहे हो तो हवा में क्रोध कर लो। अगर कामुक महसूस कर रहे हो तो उसे आकाश में फेंक दो। तुम्हें जो भी महसूस हो रहा हो, उसे भीतर से बाहर निकलने दो। उसे अभिव्यक्त करो। एक ध्यानपूर्ण रेचन तुम्हें फ्रायडियन अचेतन से मुक्त कर देगा।

जो विधि मैं सिखा रहा हूं, अगर उसका अनुसरण किया जाए, तो फ्रायडियन अचेतन समाप्त हो जाएगा। और एक बार यह फ्रायडियन अचेतन मिटे केवल तभी तुम वास्तविक अचेतन में प्रवेश कर सकते हो। अवचेतन केवल बीच में है—चेतन और अचेतन के बीच। जैसे तुम कमरे को बंद कर लो और अपना कूड़ा उसमें फेंकते जाओ, ऐसे ही मन में तुम कूड़ा इकट्ठा करते जाते हो, कचरेघर की तरह। फ्रायडियन अचेतन बस एक कचराघर है।

कूड़े को भीतर मत फेंको। मैं कहता हूं, बाहर फेंको। जब वह भीतर जाता है तो तुम विक्षिप्त हो सकते हो, पागल हो सकते हो। जब कूड़ा बाहर निकल जाएगा तो तुम ताजे हो जाओगे, युवा, निर्भार हो जाओगे।

इस युग के लिए रेचन अनिवार्य है। कोई भी बिना रेचन के अंतर्विवेक तक नहीं पहुंच सकता। और एक बार तुम गहन रेचन में पहुंच जाओ तो तुम्हें डरने की जरूरत नहीं है। फिर वास्तविक अचेतन स्वयं को प्रकट करना शुरू कर देगा; फिर वह तुम्हारे चेतन में प्रवेश कर जाएगा और तुम पहली बार अपने विशाल साम्राज्य को जानोगे। तुम इतने छोटे अंश नहीं हो, तुम्हारा एक विशाल अस्तित्व है; और इस विशाल अस्तित्व का एक केंद्र है, वह केंद्र अंतर्विवेक है।

अचेतन और अंतर्विवेक में अंतर कैसे करें ? फ्रायडियन अचेतन और अंतर्विवेक में अंतर कैसे करें ?

यदि तुम रेचन न करो तो कठिन होगा। लेकिन धीरे-धीरे तुम्हें अंतर हो सकता है क्योंकि फ्रायडियन अचेतन बस एक दमन है। यदि उद्दाम वेग से तुममें कुछ उठ रहा है तो जानना कि यह उद्दाम वेग इसीलिए है कि पहले तुमने उसे दबाया है। यदि कुछ अचानक तुममें उठे, बिना किसी वेग के, बस चुपचाप, शांति से, बिना किसी शोर के उठ आए, तो जानना कि यह तुम्हारा वास्तविक अचेतन है। अंतर्विवेक से तुम्हारी ओर कुछ आ रहा है।

लेकिन तुम तभी कुशल होओगे जब रेचन से गुजरो। फिर तुम्हें स्पष्ट पता चलेगा कि क्या हो रहा है। जब भी फ्रायडियन अचेतन से कुछ आएगा, तुम अशांत हो जाओगे, बेचैन हो जाओगे। और जब भी कुछ तुम्हारे अंतर्विवेक से आता है, उससे तुम्हें बड़ी शांति, बड़ी पवित्रता अनुभव होगी। इतना सुख, इतनी

स्थिरता मिलेगी कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम्हें स्पष्ट अनुभव होगा कि बस यही है। तुम्हारा पूरा अस्तित्व उसके साथ लय में होगा, कोई प्रतिरोध नहीं होगा। तुम्हें पता होगा कि यह सही है, यह अच्छा है, यह सत्य है, अन्यथा तो तुम्हें कोई भी विश्वास नहीं दिला सकता। फ्रायडियन अचेतन के साथ तुम कभी मौन नहीं हो सकते, तुम कभी शांत और निश्चल नहीं हो सकते; अशांत ही रहोगे। यह एक तरह का रोग है जो उठ रहा है, और उसके साथ एक संघर्ष चलेगा।

तो बेहतर होगा यदि तुम गहन रेचन करो, फिर फ्रायडियन अचेतन धीरे-धीरे शांत हो जाएगा। और जैसे नदी में बुलबुले उठते हैं, पानी की सतह तक पहुंच जाते हैं, तुम्हें लगेगा तुम्हारे अस्तित्व के तल से बुलबुले उठ रहे हैं। वे तुम्हारे चेतन मन तक आ जाएंगे। लेकिन उनका आना ही तुम्हें एक स्पष्टता दे जाएगा, एक भाव, कि इससे सही और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन इससे पहले कि यह हो सके तुम्हें फ्रायडियन अचेतन से स्वयं को मुक्त करना होगा। और यह केवल तभी हो सकता है जब तुम जैसा हो रहा है वैसा होने देने की स्थिति में हो, क्योंकि यह अंतरतम इतना अहिंसक है कि स्वयं को जबरदस्ती आरोपित नहीं करेगा। तुम्हें उसे आमंत्रित करना होगा। इसे याद रखो, वह स्वयं को आरोपित नहीं करेगा।

फ्रायडियन अचेतन स्वयं को आरोपित करना चाहेगा। हर क्षण वह स्वयं को आरोपित करने का प्रयास कर रहा है और तुम उसे पीछे धकेल रहे हो। यही अंतर है। यह स्वयं को आरोपित करना चाहता है, सक्रिय होना चाहता है, तुम्हें ले जाना चाहता है, तुम्हारा शोषण करना चाहता है। और तुम उससे बचने की कोशिश कर रहे हो, उससे लड़ रहे हो।

वास्तविक अचेतन, अंतर्विवेक, आक्रामक नहीं है। यदि तुम उसे स्वतंत्रता दो, प्रार्थनापूर्वक उसे आमंत्रित करो तो एक निमंत्रित अतिथि की तरह तुम पर प्रकट होगा। तुम्हें होने देने की स्थिति में आना होगा। केवल तभी वह आएगा। जब उसे लगेगा कि तुम तैयार हो, जब उसे लगेगा कि वह अस्वीकृत नहीं होगा, जब उसे लगेगा कि उसका स्वागत होगा, तब वह तुम्हारे पास आएगा।

तो तुम्हें दो चीजें करनी हैं—फ्रायडियन अचेतन का रेचन और अंतर्विवेक के प्रति समर्पण का प्रशिक्षण। ये दो चीजें करने से तुम्हें अंतर पता चल जाएगा। अंतर तुम्हें सिखाया नहीं जा सकता, तुम्हें पता चल जाएगा। जब तुम्हें कुछ होगा, तुम्हें पता चल जाएगा।

तुम्हें कैसे पता चलता है कि कब तुम्हारे शरीर में दर्द है और कब तुम्हारा

शरीर ठीक है ? जब तुम्हारा पूरा शरीर स्वस्थ है और सिर में दर्द हो रहा है तो तुम्हें कैसे पता चलता है ? तो तुम्हें कैसे अंतर पता चलता है ? तुम्हें बस पता चलता है। तुम बता नहीं सकते, तुम बस जानते हो—तुम्हें पता है सिर-दर्द क्या है और स्वास्थ्य क्या है।

अंतर्विवेक तुम्हें सदा स्वास्थ्य की अनुभूति देगा और फ्रायडियन अचेतन सदा सिर-दर्द की। फ्रायडियन अचेतन एक अराजकता है, एक अंतर्संघर्ष है, एक विषाद है, एक दमित पीड़ा है। तो यह जब भी प्रकट होगा, सामने आएगा, तुम्हें सब ओर से पीड़ा की अनुभूति देगा।

इस फ्रायडियन अचेतन के कारण कई चीजें पीड़ादायी हो गई हैं, जो कि स्वाभाविक रूप से पीड़ादायी नहीं हैं। उदाहरण के तौर पर, काम। क्योंकि समाज ने काम को दबाया है, वह पीड़ादायी हो गया है। नैसर्गिक जीवन की सबसे आनंदपूर्ण अनुभूतियों में से काम भी एक है। यदि तुम काम में जाते हो तो बेचैनी अनुभव करोगे, ग्लानि अनुभव करोगे, अंत में कमजोरी अनुभव करोगे। और तुम दोबारा कभी इसमें न जाने की कसम खाओगे। यह स्वाभाविक काम के कारण नहीं है, यह अचेतन के कारण है। काम पीड़ादायी हो गया है। उसे इतना दबाया गया है कि वह गंदा और पीड़ादायी हो गया है। अन्यथा यह सबसे नैसर्गिक सुख है। यदि किसी बच्चे को कभी भी न सिखाया जाए कि काम बुरा है और पाप है तो वह उसका आनंद लेगा, और हर बार वह पूरे शरीर में एक स्वास्थ्य उतरता हुआ अनुभव करेगा।

पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्य अनुभव होता है, क्योंकि स्त्रियां अधिक दमित हैं। कोई यह नहीं कहता कि लड़का कुंवारा होना चाहिए, लेकिन सभी चाहते हैं, वह लड़का भी चाहता है, कि जिस लड़की से वह विवाह करने वाला है वह कुंवारी होनी चाहिए। प्लेबॉय भी सोचते हैं कि लड़की कुंवारी होनी चाहिए। स्त्रियों के अचेतन को पुरुषों के अचेतन की अपेक्षा अधिक दबाया गया है, यही कारण है कि बहुत कम स्त्रियां ही काम के शिखर पर पहुंचती हैं। और वह भी पश्चिम में, पूर्व में तो पांच प्रतिशत से अधिक स्त्रियां काम से कोई आनन्द प्राप्त नहीं कर पातीं। पंचानबे प्रतिशत स्त्रियां तो इससे ऊब चुकी हैं।

इसीलिए तो जब साधु-संत कहते हैं कि काम पाप है तो स्त्रियां सहमत हो जाती हैं। वे संतों के पास झुंड बना लेती हैं क्योंकि बात उन्हें जमती है, कि ठीक है। क्योंकि वे इतनी दमित हैं कि उन्हें इससे कभी कोई आनंद नहीं मिला। भारत में, प्रेम करते समय, यह माना जाता है कि स्त्रियों को हिलना भी

नहीं चाहिए, बस लाश की तरह पड़े रहना चाहिए। यदि वे हिलती-डुलती हैं तो उनके पतियों को संदेह हो जाएगा कि वे काम का आनंद ले रही हैं, और यह भली स्त्रियों का लक्षण नहीं है। भली स्त्री तो वह है जो कोई रस नहीं लेती।

पूरब में कहते हैं कि अगर तुम विवाह करना चाहते हो तो किसी भली स्त्री से विवाह करो—और अगर आनंद लेना चाहते हो तो किसी बुरी स्त्री से मित्रता कर लो, क्योंकि केवल कोई बुरी स्त्री ही आनंद ले सकती है। यह दुर्भाग्य है। स्त्री से हिलने-डुलने की, सक्रिय होने की अपेक्षा नहीं है, उसे बस मुर्दे की तरह पड़े रहना है। वह आर्गाज्म के शिखर पर कैसे पहुंच सकती है, जब ऊर्जा गति ही नहीं कर रही ?

और यदि वह उसका आनंद न ले सके तो निश्चित ही पति के विरुद्ध हो जाएगी और सोचेगी कि पति बुरा है। रोज भारतीय स्त्रियां मेरे पास आती हैं और कहती हैं कि वे काम से ऊब चुकी हैं और उनके पति उनको बार-बार संभोग के लिए बाध्य करते हैं। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता, बहुत बुरा लगता है। और पतियों को इतना बुरा क्यों नहीं लगता ? स्त्रियों को ही क्यों बुरा लगता है ? इसका कारण है कि उनका अचेतन पुरुषों से अधिक काम-दमित है।

तो काम पीड़ादायी हो जाएगा। यदि तुमने उसे दबाया है तो वह एक पीड़ा बन जाएगा। कुछ भी पीड़ा बन सकता है; बस उसे दबा लो, यही एक युक्ति है, वह पीड़ा बन जाएगा। और कुछ भी आनंदपूर्ण बन सकता है; उसे बस अभिव्यक्ति दे दो, उसे दबाओ मत।

अभी तो तुम्हें बस इस फ्रायडियन अचेतन का ही पता है। तुम्हें वास्तविक अचेतन का, तंत्र जिसे अचेतन कहता है उसका कोई पता नहीं है, इसीलिए तुम भयभीत हो। और भयभीत होने के कारण तुम समर्पण नहीं कर सकते, तुम नियंत्रण नहीं छोड़ सकते। तुम्हें पता है कि अगर तुमने नियंत्रण छोड़ा तो एकदम तुम्हारी दमित प्रवृत्तियां उठ खड़ी होंगी। तत्क्षण, जो भी तुमने दबाया है, तुम्हारे मन में उठ खड़ा होगा और तुम्हें कृत्य में उतरने के लिए मजबूर करेगा। इसीलिए तुम इतने भयभीत हो।

तो पहले रेचन की जरूरत है ताकि भय जा सके। और फिर तुम समर्पण कर सकते हो। और यदि तुम समर्पण कर दो तो एक बहुत शांत शक्ति तुम्हारे चेतन की ओर बहनी शुरू हो जाएगी। और तुम्हें एक स्वास्थ्य का अनुभव होगा, तुम्हें लगेगा जैसे तुम घर पहुंच गए, तुम्हें लगेगा जैसे सब ओर सौंदर्य है, तुम अहोभाव से भर जाओगे।

'यह कैसे जाना जा सकता है कि अंतर्विवेक कार्य करने लगा है ?'

यह पहला संकेत होगा—तुम्हें अच्छा लगने लगेगा, तुम्हें स्वयं के प्रति अच्छा लगने लगेगा। याद रखो, तुम्हें हमेशा अपने बारे में बुरा ही लगता है। हर कोई अपनी निंदा कर रहा है, हर कोई सोचता है कि वह बुरा है। और जब तुम खुद सोचते हो कि तुम बुरे हो तो तुम यह कैसे सोच सकते हो कि कोई और तुम्हें प्रेम करेगा ? और जब तुम्हें कोई प्रेम नहीं करता, तुम दुःखी हो जाते हो।

लेकिन तुम स्वयं ही अपने को प्रेम नहीं करते। तुमने कभी अपने हाथ को प्रेम से नहीं छुआ, तुमने कभी अपने शरीर को प्रेम से अनुभव नहीं किया। तुमने कभी परमात्मा को धन्यवाद नहीं दिया कि उसने तुम्हें इतना सुंदर शरीर दिया है, इतनी सुंदर संरचना दी है। नहीं, तुम्हें बस बुरा लगता है। और धर्मों ने तुम्हें निंदा ही सिखाई है, यह शरीर पाप की गठरी है। तुम एक गठरी ढो रहे हो।

जब अचेतन मुक्त रहेगा, अचानक तुम पाओगे कि तुम स्वीकृत हो, तुम बुरे नहीं हो। कुछ भी बुरा नहीं है, पूरा जीवन एक गहन आशीर्वाद बन जाता है। तुम अहोभाव अनुभव करते हो। और जिस क्षण तुम धन्यभागी अनुभव करते हो, तुम्हारे आस-पास भी सभी अहोभाव से भर जाते हैं। तुम उन्हें आशीर्वाद दे सकते हो, तुम सुखी हो सकते हो। क्योंकि तुम स्वयं को निंदित समझते हो, इसीलिए तुम्हें अपने बारे में बुरा लगता है और वही तुम दूसरों के बारे में भी सोचते हो। तुम किसी दूसरे के शरीर को कैसे प्रेम कर सकते हो, जब तुम अपने ही शरीर को प्रेम नहीं करते ? यदि तुम अपने ही शरीर के विरुद्ध हो तो दूसरे के शरीर को कैसे प्रेम कर सकते हो ?

तुम निंदा ही करोगे, गहरे में तुम निंदा ही करोगे। असल में, धर्मों ने तुम्हें बस भूत-प्रेत बनने को तैयार कर दिया है। वें नहीं चाहते कि तुम शरीर से प्रेम करो, वे बस तुम्हें अशरीरी आत्माएं बनाए रखना चाहते हैं। हर चीज की निंदा करनी है—और तुमने समझ लिया है कि जीवन ऐसा ही है।

मैंने बहुत से शास्त्रों में देखा है, उनमें लिखा है कि तुम्हारे शरीर में और कुछ नहीं है, बस रक्त-मांस-मज्जा ही है—बस इसकी निंदा करने के लिए। मुझे नहीं मालूम कि जिन लोगों ने ये शास्त्र लिखे, वे क्या चाहते थे। क्या वे चाहते थे कि इसमें सोना भरा हो ? चांदी भरी हो ? हीरे भरे हों ? या कुछ और ? रक्त की निंदा क्यों है ? रक्त में क्या बुराई है ? रक्त तो जीवन है ! लेकिन उन्होंने निंदा की है और हमने निंदा स्वीकार कर ली है। वे निश्चित पागल रहे होंगे, विक्षिप्त रहे होंगे।

जैन हमेशा कहते हैं कि उनके तीर्थंकरों ने कभी मल-मूत्र का त्याग नहीं

किया। ये बुरी चीजें हैं। लेकिन मूत्र बुरा क्यों है ? मूत्र की जगह तुम और क्या करना चाहते हो ? और इसमें बुरा क्या है ? लेकिन यह बड़ी बुरी बात है। और मनोवैज्ञानिक कहते हैं क्योंकि पुरुष में काम-केंद्र और मूत्रांग एक ही है, इसलिए काम निंदित है। और स्त्रियों में काम-केंद्र बीच में है, एक तरफ मल-त्याग का केंद्र है दूसरी तरफ मूत्र-त्याग का, इसीलिए काम अच्छा नहीं हो सकता यदि वह दो गंदे बिंदुओं के बीच में हो। काम की निंदा इसीलिए हुई है क्योंकि मल की निंदा है। लेकिन हम निंदा को स्वीकार कर लेते हैं, और जब स्वीकार कर लेते हैं तो समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।

विक्षिप्त लोगों द्वारा तुम्हारे सारे शरीर की निंदा की गई है। हो सकता है उन्होंने शास्त्र लिखे हों, पर इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। हो सकता है, वे बड़े महान नेता रहे हों। विक्षिप्त लोग हमेशा ही नेता होते हैं, इतने धर्मांध होने के कारण ही वे महान नेता हैं, क्योंकि उन्हें तुरंत ही अनुयायी मिल जाते हैं।

और दुनिया में हमेशा ऐसे लोग होते हैं जो धर्मांधता की पूजा करते हैं। कोई भी अगर बड़े जोर से कुछ कहता है तो लोग उसके पांव में गिर जाते हैं और कहते हैं कि यही असली नेता है। और हो सकता है कि वह बस विक्षिप्त हो, पागल हो। इन विक्षिप्त लोगों ने तुम्हारी निंदा की है, और तुमने उन्हें स्वीकार कर लिया है, तुम उनके द्वारा संस्कारित हो गए हो।

जब अचेतन तुममें बहेगा तो एक सूक्ष्म स्वास्थ्य उतर जाएगा। तुम्हें अच्छा लगेगा—जैसे सब कुछ स्वच्छ हो गया हो और सब कुछ दिव्य हो गया हो। तुम्हारा शरीर दिव्य से आता है और तुम्हारा रक्त भी, तुम्हारा मूत्र भी। सब कुछ दिव्य है। जब अचेतन तुममें बहता है तो सब कुछ दिव्य हो जाता है, आध्यात्मिक हो जाता है। कुछ भी बुरा नहीं है, कुछ भी निंदनीय नहीं है। यह तुम्हारा भाव होगा और तब तुम उड़ने लगोगे। तुम इतने हलके हो जाओगे कि तुम्हारे पांव जमीन पर नहीं पड़ेंगे। फिर तुम्हारे सिर पर कोई बोझ नहीं होगा। फिर तुम छोटी-छोटी बातों में भी बड़ा आनंद ले सकते हो। फिर हर सामान्य वस्तु सुंदर हो जाती है। लेकिन वह सौंदर्य तुम्हारा ही दिया हुआ है। तुम जो भी छुओगे सोना हो जाएगा, क्योंकि गहरे में तुम आनंद से भरे हुए हो।

यह पहली घटना तुम्हारे साथ घटेगी—अपने बारे में तुम्हें अच्छा लगने लगेगा। और जब अचेतन तुम्हारे चेतन में बहने लगेगा तो दूसरी बात यह घटेगी कि तुम संसार-उन्मुख कम हो जाओगे, कम बौद्धिक हो जाओगे और अधिक समग्र हो जाओगे। फिर जब तुम सुखी होओगे तो तुम बस इतना ही नहीं कहोगे कि तुम सुखी हो, तुम नाचोगे। बस इतना कहना कि 'मैं सुखी हूं' बड़ा नपुंसक

है, अर्थहीन है। मैं ऐसे लोगों को देखता हूं जो कहते हैं, 'मैं सुखी हूं।' लेकिन जरा उनके चेहरे देखो ! मैं ऐसे लोगों को जानता हूं, जो कहते हैं, 'मैं आपसे प्रेम करता हूं', लेकिन उनका शरीर कुछ भी अभिव्यक्त नहीं कर रहा। शब्द मुर्दा हैं, लेकिन हमने उन्हें जीवन के विकल्प के रूप में मान लिया है।

जब अचेतन तुममें बहता है तो यह अंतर होगा—तुम अपने समग्र अस्तित्व से जीओगे। जब तुम सुखी होओगे, तुम नाचोगे। तब तुम बस इतना ही नहीं कहोगे कि मैं सुखी हूं, तुम सुखी होओगे। यह अंतर है। तुम यह नहीं कहोगे कि मैं सुखी हूं; लेकिन यह कहने की जरूरत नहीं है, क्योंकि तुम सुखी होगे ही। फिर किसी को यह कहने की जरूरत नहीं रहेगी कि मैं तुमसे प्रेम करता हूं, तुम प्रेम हो जाओगे। तुम्हारा पूरा अस्तित्व इस भाव को प्रकट करेगा, तुम प्रेम से थिरकोगे। जो भी पास से गुजरेगा वह अनुभव करेगा कि तुम प्रेम करते हो; किसी को तुम्हारा हाथ भी छू जाएगा तो उसे लगेगा कि कोई सूक्ष्म ऊर्जा उसमें प्रवेश कर गई। तुम्हारी उपस्थिति में एक ऊष्णता होगी, एक सुख होगा।

यह दूसरी बात होगी—तुम समग्र हो जाओगे। जब विवेक तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा, तुम समग्र हो जाओगे।

तीसरा प्रश्न :

जब अंतःप्रज्ञा काम करने लगती है तो क्या उस अंतःप्रज्ञा, उस अंतर्विवेक के प्रति समर्पण ही एकमात्र उपाय है ? क्या अंतःप्रज्ञा के द्वारा जीता हुआ व्यक्ति सदा सफल होता है ? आप सफलता और असफलता का मूल्यांकन कैसे करते हैं ? क्या यह सत्य नहीं है कि अंतःप्रज्ञा से जीने वाला व्यक्ति बौद्धिक रूप से कमजोर हो जाएगा ?

अंतस को सक्रिय करने का एकमात्र उपाय समर्पण ही है।

'क्या अंतःप्रज्ञा के द्वारा जीता हुआ व्यक्ति सदा सफल होता है ?'

नहीं, लेकिन वह सदा सुखी होता है, चाहे वह सफल हो या न हो। और अंतःप्रज्ञा से न जीता हुआ व्यक्ति सदा सुखी होता है चाहे वह सफल हो या न हो। सफलता कसौटी नहीं है क्योंकि सफलता कई चीजों पर निर्भर करती है। सुख है कसौटी, क्योंकि सुख केवल तुम पर निर्भर करता है। हो सकता है तुम सफल न हो सको क्योंकि दूसरे प्रतिद्वंद्वी भी होंगे। तुम चाहे अंतःप्रज्ञा से कार्य कर रहे हो, दूसरे हो सकता है कि अधिक धूर्तता से, चालाकी से, हिसाब से, हिंसा से कार्य कर रहे हों। शायद तुम सफल न हो सको।

कौन कह सकता है कि जीसस सफल हुए ? सूली कोई सफलता नहीं है, सबसे बड़ी असफलता है। एक व्यक्ति जो मात्र तैंतीस वर्ष का हो, उसे सूली लग जाए, यह किस तरह की सफलता है ? कोई उनके बारे में नहीं जानता था। बस थोड़े से अनपढ़ गंवार लोग उनके शिष्य थे। उनकी कोई पद-प्रतिष्ठा, कोई ताकत नहीं थी। यह किस तरह की सफलता है ? सूली को सफलता नहीं कहा जा सकता।

लेकिन वे ख़ुश थे। वे पूर्णतः आनंदित थे, जब उन्हें सूली पर चढ़ाया गया, तब भी। और उनको सूली देने वाले वर्षों जीवित रहे, पर वे दुखी रहे। तो वास्तव में सूली पर कौन था ? सवाल यह है। जिन्होंने जीसस को सूली पर चढ़ाया, क्या वे सूली पर थे, या जीसस, जिन्हें चढ़ाया गया ? वह तो ख़ुश थे। तुम सुख को कैसे सूली पर चढ़ा सकते हो ? वह आनंदित थे। तुम आनंद को कैसे सूली पर चढ़ा सकते हो ? तुम शरीर को तो मार सकते हो पर आत्मा को नहीं मार सकते। जिन्होंने उन्हें सूली पर चढ़ाया वे जीवित रहे, लेकिन उनका जीवन और कुछ नहीं बस एक लंबी घिसटने वाली सूली थी–दुख, घुटन और पीड़ा।

तो पहली बात, मैं यह नहीं कहता कि तुम अंतर्विवेक का अनुसरण करोगे तो सदा सफल होओगे–उन अर्थों में जिनमें संसार सफलता को मानता है; लेकिन जिन अर्थों में बुद्ध या जीसस सफलता मानते हैं उन अर्थों में तुम सफल होओगे। लेकिन वह सफलता तुम्हारे सुख, तुम्हारे आनंद से नापी जाती है। जो भी हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है, तुम सुखी रहोगे। चाहे संसार कहे कि तुम असफल रहे, चाहे संसार तुम्हें सफल कहे, हीरो बना दे, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। चाहे कुछ भी हो, तुम सुखी रहोगे; तुम आनंदित रहोगे। मेरे देखे, आनंद ही सफलता है, इसीलिए मैं कहता हूं कि तुम हमेशा सफल होओगे।

लेकिन तुम्हारे लिए आनंद सफलता नहीं है, तुम्हारे लिए सफलता कुछ और है। चाहे वह दुख ही हो। चाहे तुम्हें पता हो कि सफलता दुख लाएगी, तुम सफलता ही चाहोगे। राजनेताओं से पूछो, वे दुख में हैं। मैंने एक भी राजनेता नहीं देखा जो सुखी हो, वे दुखी हैं; और फिर भी ऊंची कुर्सी पर पहुंचने का प्रयास कर रहे हैं, सीढ़ी पर ऊंचे से ऊंचे चढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। और जो ऊपर हैं वे भी दुखी हैं, और यह वे जानते हैं। लेकिन सफलता मिले तो हम दुखी होने के लिए तैयार हैं।

तो हमारे लिए सफलता क्या है ? हमारे लिए सफलता है अहंकार की तृप्ति, आनंद नहीं। बस इतना ही कि लोग तुम्हें कहेंगे सफल हो गए। चाहे तुमने सब

खो दिया हो, चाहे तुमने अपनी आत्मा खो दी हो; चाहे तुमने वह सारी निर्दोषता खो दी हो जो तुम्हें आनंद देती है; शायद तुमने सारी शांति, सारा मौन खो दिया हो जो तुम्हें परमात्मा तक ले जाता है; शायद तुमने सब खो दिया हो और बस पागल हो गए हो—लेकिन संसार यही कहेगा कि तुम सफल हो गए हो।

संसार के लिए अहंकार का तृप्त होना ही सफलता है; मेरे लिए ऐसा नहीं है। मेरे लिए आनंदित होना सफलता है—चाहे कोई तुम्हारे बारे में जानता हो या न जानता हो। इसका कोई सवाल ही नहीं है कि कोई तुम्हें जानता है या नहीं, चाहे तुम बिलकुल अज्ञात, अनसुने, अनदेखे जीते हो। लेकिन यदि तुम आनंदित हो तो तुम सफल हो।

तो इस अंतर को याद रखो क्योंकि कई लोग होंगे जो अंतःप्रज्ञा से जीना चाहेंगे, अंतर्विवेक को खोजना चाहेंगे, ताकि संसार में सफल हो सकें। उनके लिए अंतर्विवेक एक विक्षिप्तता बन जाएगा। पहली बात तो वे उसे खोज ही न पाएंगे। दूसरे, अगर वे खोज भी लें तो वे दुखी रहेंगे। क्योंकि उनका लक्ष्य है संसार की ओर से एक प्रत्यभिज्ञा, अहंकार की तृप्ति—आनंद नहीं।

अपने मन में स्पष्ट कर लो, सफलता-उन्मुख नहीं बनना है। सफलता संसार में सबसे बड़ी असफलता है। तो सफल होने का प्रयास मत करो, वरना तुम असफल हो जाओगे। आनंदित होने की सोचो। हर क्षण और-और आनंदित होने की सोचो। फिर चाहे पूरा संसार कहे कि तुम असफल हो, लेकिन तुम असफल नहीं होओगे। तुम सब कुछ पा लोगे।

बुद्ध अपने मित्रों, परिजनों, पत्नी, पिता, शिक्षकों और समाज की नजरों में असफल थे, पूरी तरह असफल थे। बस एक भिखारी बन गए थे। यह किस तरह की सफलता है ? वह महान सम्राट हो सकते थे—उनमें वे सब गुण थे, उनके पास व्यक्तित्व था, उनके पास प्रतिभा थी। वे महान सम्राट बन सकते थे, लेकिन बस एक भिखारी बन गए। वह असफल थे, निश्चित ही। लेकिन मैं तुम्हें कहता हूं कि वह असफल नहीं थे। यदि वे सम्राट बन जाते तो असफल होते क्योंकि वे वास्तविक जीवन से चूक जाते। बोधिवृक्ष के नीचे उन्होंने जो पाया वह वास्तविक था और जो खोया वह अवास्तविक था।

वास्तविक के साथ तुम अंतर्जीवन में सफल होते हो; अवास्तविक के साथ...मैं नहीं जानता। यदि तुम अवास्तविक में सफल होना चाहते हो तो उन लोगों के मार्ग का अनुसरण करो जो चालाकी, धूर्तता, प्रतियोगिता, ईर्ष्या, हिंसा से काम कर रहे हैं। फिर उनके मार्ग पर चलो, अंतर्विवेक तुम्हारे लिए नहीं है। यदि तुम संसार में कुछ पाना चाहते हो तो अंतर्विवेक की मत सुनो। लेकिन

तत्क्षण तुम्हें लगेगा कि चाहे तुम पूरा संसार भी जीत गए, तुमने स्वयं को खो दिया।

जीसस कहते हैं, 'और अगर कोई मनुष्य अपनी आत्मा को खोकर सारा संसार भी पा लेता है तो उसे क्या मिला ?'

तुम सफल किसे कहोगे—सिकंदर महान को या सूली पर चढ़े जीसस को ?

तो यदि—और यह 'यदि' भलीभांति समझने जैसा है—यदि तुम संसार में उत्सुक हो तो अंतर्विवेक तुम्हारे लिए नहीं है। यदि तुम अस्तित्व के आंतरिक आयाम में उत्सुक हो तो अंतर्विवेक, और केवल अंतर्विवेक ही, तुम्हारी सहायता कर सकता है।

आज इतना ही।

79

शून्यता का दर्शन

सूत्र

109. अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो—सर्वथा रिक्त।

110. हे गरिमामयी, लीला करो। यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतुक करता है।

111. हे प्रिये, ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व पर ध्यान दो। फिर दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको।

112. आधारहीन, शाश्वत, निश्चल आकाश में प्रविष्ट होओ।

ये विधियां रिक्तता से संबंधित हैं। ये सर्वाधिक कोमल, सर्वाधिक सूक्ष्म हैं, क्योंकि खालीपन की परिकल्पना भी असंभव प्रतीत होती है। बुद्ध ने इन चारों विधियों का अपने शिष्यों और भिक्षुओं के लिए प्रयोग किया है। और इन चारों विधियों के कारण ही वे बिलकुल गलत समझ लिए गए। इन चारों विधियों के कारण ही भारत की धरती से बौद्ध धर्म पूरी तरह उखड़ गया।

बुद्ध कहते थे कि परमात्मा नहीं है। यदि परमात्मा है तो तुम पूरी तरह खाली नहीं हो सकते। हो सकता है तुम न रहो पर परमात्मा तो रहेगा ही, दिव्य तो रहेगा ही। और तुम्हारा मन तुम्हें धोखा दे सकता है, क्योंकि हो सकता है तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे मन की ही चाल हो। बुद्ध कहते थे कि कोई आत्मा नहीं है, क्योंकि यदि आत्मा हो तो तुम अपने अहंकार को उसके पीछे छिपा सकते हो। यदि तुम्हें लगे कि तुममें कोई आत्मा है तो तुम्हारे अहंकार का छूटना कठिन हो जाएगा। तब तुम पूरी तरह खाली नहीं हो पाओगे क्योंकि तुम तो रहोगे ही।

इन चारों विधियों की भूमिका तैयार करने के लिए ही बुद्ध ने सब कुछ नकार दिया। वे कोई नास्तिक नहीं थे, बस नास्तिक लगते हैं, क्योंकि उन्होंने

कहा कि कोई परमात्मा नहीं है, कोई आत्मा नहीं है, इस अस्तित्व में कुछ भी सार-तत्त्व नहीं है, अस्तित्व एक खालीपन है। लेकिन यह सब इन विधियों की भूमिका तैयार करने के लिए ही था। एक बार तुम इस रिक्तता में प्रविष्ट हो गए तो तुमने सब कुछ जान लिया। तुम उसे दिव्य कह सकते हो, परमात्मा कह सकते हो, आत्मा कह सकते हो, या जो भी तुम चाहो कह सकते हो। लेकिन सत्य में तुम तभी प्रवेश कर सकते हो जब तुम पूर्णतया खाली हो जाओ। पीछे कुछ भी नहीं बचना चाहिए।

हिंदुओं को लगा कि बुद्ध धर्म को नष्ट कर रहे हैं, अधार्मिकता सिखा रहे हैं। और जिन लोगों ने उन्हें सुना वे भी समझ नहीं पाए। क्योंकि जब भी तुम कहीं जाते हो तो कुछ खोजने के लिए ही जाते हो, तुम कभी खालीपन की तलाश में नहीं जाते। तो जो लोग उन्हें सुनने गए थे वे कुछ खोज रहे थे—निर्वाण, मोक्ष, परा-जगत, स्वर्ग, सत्य—लेकिन कुछ ढूंढ़ रहे थे। वे अपनी परम अभिलाषा—सत्य की खोज—को पूरा करने आए थे। यह अंतिम कामना है। और जब तक तुम पूरी तरह कामना से मुक्त न हो जाओ, तुम सत्य को नहीं जान सकते। उसे जानने की शर्त ही पूर्णतया कामना-रहित हो जाना है।

तो एक बात निश्चित है, तुम सत्य की कामना नहीं कर सकते। यदि तुम उसकी कामना करते हो तो तुम्हारी कामना ही उसमें बाधा बन जाएगी। बुद्ध से पहले ऐसे गुरु हुए जो सिखाते थे, 'कामना मत करो, कामना से मुक्त हो जाओ।' लेकिन वे लोग बात कर रहे थे परमात्मा की, परमात्मा के राज्य की, स्वर्ग की, मोक्ष की, परम मुक्ति की, और कह रहे थे, 'कामना से मुक्त हो जाओ।' बुद्ध को लगता था कि यदि कुछ भी पाने को है तो तुम कामना से मुक्त नहीं हो सकते। तुम दिखावा कर सकते हो कि तुम कामना से मुक्त हो, लेकिन वह दिखावा, वह कामनामुक्ति भी किसी कामना से ही आ रही है। वह झूठ है।

सभी गुरु कहते हैं कि तुम कामना के द्वारा परम आनंद प्राप्त नहीं कर सकते। और परम आनंद तुम प्राप्त करना चाहते हो, तो तुम कामना-रहित होना शुरू कर देते हो, कामना से मुक्त होने का प्रयास करने लगते हो, ताकि तुम परम आनंद पा सको। लेकिन कामना तो बनी ही है। कामना के कारण ही तुम कामना से मुक्त होना चाहते हो।

तो बुद्ध ने कहा कि कोई परमात्मा ही नहीं है जिसे पाना है। तुम पाना चाहो भी तो पाने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए कामना से ही मुक्त हो जाओ। कहीं कोई मोक्ष नहीं है, कोई लक्ष्य नहीं है, जीवन अर्थहीन और लक्ष्यहीन है।

उनका यह कथन सुंदर है, अद्‌भुत है—किसी ने इस तरह से प्रयास ही नहीं

किया। उन्होंने वे सब लक्ष्य नष्ट कर दिए ताकि कामना से मुक्त होने में तुम्हारी सहायता की जा सके। यदि कोई लक्ष्य हो तो तुम कामना से कैसे मुक्त हो सकते हो ? और यदि तुम कामना-रहित नहीं हो तो तुम लक्ष्य को प्राप्त नहीं हो सकते। यही विरोधाभास है। उन्होंने सब लक्ष्य नष्ट कर डाले, इसलिए नहीं कि कोई लक्ष्य नहीं है, लक्ष्य तो है और तुम पा भी सकते हो। लेकिन यदि तुम उन्हें पाना चाहो, यदि तुम उन्हें पाने की कामना करो तो फिर यह असंभव हो जाता है। पहली शर्त ही यह है कि तुम कामना-रहित होओ, तब परम घटना घटती है।

तो बुद्ध कहते हैं कि कामना करने के लिए कुछ भी नहीं है, कामना-मात्र ही व्यर्थ है। सब कामनाएं छोड़ दो। और जब कोई कामना न रहेगी, तुम रिक्त हो जाओगे।

जरा कल्पना करो, यदि तुममें कोई कामना न हो तो तुम क्या होओगे ? तुम और कुछ नहीं बस कामनाओं की गठरी हो। यदि सब कामनाएं समाप्त हो जाएं तो तुम भी समाप्त हो जाओगे। ऐसा नहीं कि तुम नहीं रह जाओगे, तुम रहोगे, लेकिन एक रिक्तता की भांति। तुम एक खाली कक्ष की तरह होओगे— जिसमें कोई नहीं है, बस एक शून्य है। बुद्ध ने इस शून्य को अनात्मा, अनत्ता कहा है। तुम किसी केंद्र का अनुभव नहीं करोगे कि 'मैं हूं' बस 'हूं-भाव' होगा, उसके साथ कोई 'मैं' नहीं होगा। क्योंकि 'मैं' और कुछ नहीं बस इकट्ठी की हुई, घनीभूत कामनाओं का जोड़ है; बहुत सी कामनाएं घनीभूत होकर तुम्हारा 'मैं' बन गई हैं।

यह ऐसा ही है जैसे विज्ञान में होता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि यदि तुम पदार्थ का विश्लेषण करो तो पदार्थ और कुछ नहीं बस अणुओं से बना है; और अणुओं को जोड़ने के लिए कुछ भी नहीं है, हर अणु एक रिक्त स्थान से घिरा हुआ है। यदि तुम्हारे हाथ में कोई पत्थर है तो वह पत्थर नहीं है, बस ऊर्जा के अणु हैं और दो अणुओं के बीच अनंत आकाश है। एक चट्टान भी ठोस नहीं है, उसमें बहुत खाली जगह है। वे कहते हैं कि जल्दी ही वह खाली जगह, वह स्पेस हम किसी भी वस्तु में से निकाल पाने में सक्षम हो जाएंगे।

एच० जी० वेल्स ने एक कहानी लिखी है। इक्कीसवीं सदी में, एक बड़े स्टेशन पर एक यात्री कुली को बुला रहा है। दूसरे यात्री जो उसी के डिब्बे में यात्रा कर रहे हैं समझ नहीं पा रहे, क्योंकि उसके पास सिगरेट की डिब्बी और माचिस को छोड़कर और कुछ भी सामान नहीं है। वही उसका कुल सामान है। और वह कुलियों को आवाज दे रहा है। बड़ी भीड़ इकट्ठी हो जाती है और

एक यात्री पूछता है, 'क्यों ? कुली को क्यों बुला रहे हो ? तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है। यह माचिस और सिगरेट की डिब्बी तुम स्वयं ही उठा सकते हो। इन दो दर्जन कुलियों का तुम क्या करोगे ?' वह यात्री हंसता है और कहता है, 'जरा यह माचिस उठा कर देखो, यह माचिस साधारण नहीं है। एक रेलवे इंजन इसमें ठूंसा हुआ है।'

जल्दी ही यह भी संभव होगा। आकाश, स्पेश खींचा जा सकता है और फिर दोबारा वापस डाला जा सकता है। और इंजन फिर से अपना आकार ले लेगा। फिर बड़ी चीजें बिना कठिनाई के इधर-उधर लाई जा सकेंगी। भार तो वही रहेगा, लेकिन आकार, आकृति छोटी से छोटी होती चली जाएगी। एक माचिस में एक रेलवे इंजन आ सकेगा। लेकिन उसका भार वही रहेगा, क्योंकि स्पेश में कोई भार नहीं होता। तुम स्पेस को निकाल सकते हो, लेकिन भार नहीं। भार तो वही रहेगा, क्योंकि भार अणुओं के कारण है, स्पेस के कारण नहीं।

वे कहते हैं कि पूरी पृथ्वी एक सेब के आकार में सघनीभूत की जा सकती है, लेकिन भार वही रहेगा। और यदि तुम इन अणुओं को बिखरा दो; यदि तुम पहले एक अणु निकालो, फिर दूसरा और फिर तीसरा; यदि तुम सब अणुओं को निकाल लो तो पीछे कुछ भी नहीं रह जाएगा। तो पदार्थ केवल भासता है।

बुद्ध ने मनुष्य के मन का विश्लेषण और भी सरल तरीके से किया है, वह महानतम वैज्ञानिकों में से एक हैं। बुद्ध कहते हैं कि तुम्हारा अहंकार और कुछ नहीं बस कामनाएं हैं; वे कामनाएं ही तुम्हारा निर्माण करती हैं। यदि तुम एक-एक करके सभी कामनाएं निकालते चले जाओ तो एक क्षण आएगा जब कोई कामना शेष नहीं रह जाएगी। तुम समाप्त हो जाओगे, बस आकाश, खाली स्पेस रह जाएगा। और बुद्ध कहते हैं कि यही निर्वाण है। यही तुम्हारे व्यक्तित्व का पूरी तरह समाप्त हो जाना है; तुम नहीं रहे।

और बुद्ध कहते हैं कि यही मौन है—जब तक तुम पूरी तरह मिट न जाओ, मौन तुम पर नहीं उतर सकता। बुद्ध कहते हैं कि तुम मौन नहीं हो सकते क्योंकि तुम्हीं समस्या हो; तुम शांत नहीं हो सकते क्योंकि तुम्हीं रोग हो; और तुम कभी आनंदित नहीं हो सकते क्योंकि तुम्हीं बाधा हो। आनंद तो किसी भी क्षण उतर सकता है पर तुम बाधा हो। जब तुम नहीं होते तो आनंद होता है; जब तुम नहीं होओगे तो शांति होगी; जब तुम नहीं होओगे तो मौन होगा। जब तुम्हारी अंतरात्मा पूर्णतया रिक्त होती है तो वह रिक्तता ही आनंद होती है। यही कारण है कि बुद्ध की शिक्षाओं को शून्यवाद कहा गया है।

ये चार विधियां आत्मा—या तुम कह सकते हो अनात्मा—की इसी अवस्था को प्राप्त करने के लिए हैं। इन दोनों में कोई अंतर नहीं है। तुम इसे विधायक नाम दे सकते हो, जैसे हिंदुओं और जैनों ने इसे आत्मा कहा है; या तुम इसे अधिक उचित लेकिन नकारात्मक नाम दे सकते हो, जैसे बुद्ध ने इसे अनत्ता कहा है। यह तुम पर निर्भर करता है। लेकिन तुम उसे जो भी कहो, वह कुछ है नहीं जिसे तुम कोई नाम दे सको, कुछ कह कर पुकार सको, वह बस अनंत आकाश है, स्पेस है।

यही कारण है कि मैं कहता हूं ये परम विधियां हैं, सर्वाधिक सूक्ष्म और सर्वाधिक कठिन विधियां हैं—लेकिन बहुत अद्‌भुत भी हैं। और यदि तुम इन चारों में से किसी एक विधि पर भी काम कर सको तो तुम अप्राप्य को प्राप्त कर लोगे।

अपने शरीर को रिक्त अनुभव करो

पहली विधि :

109. अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो—सर्वथा रिक्त।

अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो, लेकिन भीतर सब कुछ रिक्त हो। यह सुंदरतम विधियों में से एक है। किसी भी ध्यानपूर्ण मुद्रा में, अकेले, शांत होकर बैठ जाओ, तुम्हारी रीढ़ की हड्डी सीधी रहे और पूरा शरीर विश्रांत, जैसे कि सारा शरीर रीढ़ की हड्डी पर टंगा हो। फिर अपनी आंखें बंद कर लो। कुछ क्षण के लिए विश्रांत से विश्रांत अनुभव करते चले जाओ, लयबद्ध होने के लिए कुछ क्षण ऐसा करो। और फिर अचानक अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर त्वचा की दीवारें मात्र है और भीतर कुछ भी नहीं है, घर खाली है, भीतर कोई नहीं है। कई बार तुम विचारों को गुजरते हुए देखोगे, विचारों के मेघों को विचरते पाओगे, लेकिन ऐसा मत सोचो कि वे तुम्हारे हैं। तुम हो ही नहीं। बस ऐसा सोचो कि वे रिक्त आकाश में घूम रहे हैं, वे किसी के भी नहीं हैं, उनकी कोई जड़ें नहीं हैं।

वास्तव में ऐसा ही है—विचार केवल आकाश में घूमते मेघों के समान हैं। न तो उनकी कोई जड़ें हैं, न आकाश से उनका कोई संबंध है, वे बस आकाश में इधर से उधर घूमते रहते हैं। वे आते हैं और चले जाते हैं, और आकाश अस्पर्शित, अप्रभावित बना रहता है। अनुभव करो कि तुम्हारा शरीर बस त्वचा

की दीवारें है और भीतर कोई भी नहीं है। विचार जारी रहेंगे, पुरानी आदत, पुरानी लय, पुराने सहयोग के कारण विचार आते रहेंगे। लेकिन इतना ही सोचो कि वे आकाश में घूमते हुए आधारहीन मेघ हैं। वे तुम्हारे नहीं हैं, वे किसी के भी नहीं हैं। भीतर कोई भी नहीं है जिससे वे संबंधित हों, तुम तो रिक्त हो।

यह कठिन होगा, लेकिन केवल पुरानी आदतों के कारण कठिन होगा। तुम्हारा मन किसी विचार को पकड़कर उससे जुड़ना चाहेगा, उसके साथ बहना, उसका आनंद लेना, उसमें रमना चाहेगा। थोड़ा रुको ! कहो कि न तो यहां बहने के लिए कोई है, न लड़ने के लिए कोई है, इस विचार के साथ कुछ भी करने के लिए कोई नहीं है।

कुछ ही दिनों में, या कुछ हफ्तों में, विचार कम हो जाएंगे, वे कम से कम होते जाएंगे। बादल छंटने लगेंगे, या यदि वे आएंगे भी तो बीच-बीच में मेघ-रहित आकाश के बड़े अंतराल होंगे जब कोई भी विचार न होगा। एक विचार गुजर जाएगा, फिर कुछ समय के लिए दूसरा विचार नहीं आएगा। फिर दूसरा विचार आएगा और फिर एक अंतराल होगा। उन अंतरालों में ही तुम पहली बार जानोगे कि रिक्तता क्या है। और उसकी एक झलक ही तुम्हें इतने गहन आनंद से भर जाएगी कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

असल में, इसके बारे में कुछ भी कहना असंभव है, क्योंकि भाषा में जो भी कहा जाएगा वह तुम्हारी ओर इशारा करेगा और तुम हो ही नहीं। यदि मैं कहूं कि तुम सुख से भर जाओगे तो यह बेतुकी बात होगी। तुम तो होगे ही नहीं, तो मैं कैसे कह सकता हूं कि तुम सुख से भर जाओगे ? सुख होगा। तुम्हारी त्वचा की चारदीवारी में आनंद का स्पंदन होगा, लेकिन तुम नहीं होओगे। एक गहन मौन तुम पर उतर आएगा, क्योंकि यदि तुम ही नहीं हो तो कोई भी अशांति पैदा नहीं कर सकता।

तुम सदा यही सोचते हो कि कोई और तुम्हें अशांत कर रहा है। सड़क से गुजरते हुए ट्रैफिक की आवाज, चारों ओर खेलते हुए बच्चे, रसोईघर में काम करती हुई पत्नी—हर कोई तुम्हें अशांत कर रहा है।

कोई तुम्हें अशांत नहीं कर रहा है, तुम ही अशांति के कारण हो। क्योंकि तुम हो, इसलिए कुछ भी तुम्हें अशांत कर सकता है। यदि तुम नहीं हो तो अशांति आएगी और तुम्हारी रिक्तता को बिना छुए गुजर जाएगी। तुम ऐसे हो कि सब कुछ बहुत जल्दी तुम्हें छू जाता है, एक घाव जैसे हो; कुछ भी तुम्हें तत्क्षण चोट पहुंचा जाता है।

मैंने एक वैज्ञानिक कहानी सुनी है। तीसरे विश्वयुद्ध के बाद ऐसा हुआ कि सब मर गए, अब पृथ्वी पर कोई भी नहीं था बस वृक्ष और पहाड़ियां ही बची थीं। एक बड़े वृक्ष ने सोचा कि चलो खूब शोर करूं, जैसा कि वह पहले किया करता था। वह एक बड़ी चट्टान पर गिर पड़ा, जो भी किया जा सकता था उसने सब किया, लेकिन कोई शोर नहीं हुआ। क्योंकि शोर के लिए तुम्हारे कानों की जरूरत है, आवाज के लिए तुम्हारे कानों की जरूरत है। यदि तुम नहीं हो तो आवाज पैदा नहीं की जा सकती। यह असंभव है।

मैं यहां बोल रहा हूं। यदि यहां कोई न हो तो मैं बोलता रह सकता हूं, लेकिन आवाज पैदा नहीं होगी। लेकिन मैं आवाज पैदा कर सकता हूं क्योंकि मैं स्वयं तो उसे सुन ही सकता हूं। यदि सुनने के लिए कोई भी न हो तो आवाज पैदा नहीं की जा सकती, क्योंकि आवाज तुम्हारे कानों की प्रतिक्रिया है।

यदि पृथ्वी पर कोई भी न हो तो सूरज उग सकता है, लेकिन प्रकाश नहीं होगा। यह बात अजीब लगती है। हम ऐसा सोच भी नहीं सकते क्योंकि हम तो सदा ही सोचते हैं कि सूरज उगेगा और प्रकाश हो जाएगा। लेकिन तुम्हारी आंखें चाहिए, तुम्हारी आंखों के बिना सूरज प्रकाश पैदा नहीं कर सकता। वह उगता रह सकता है, लेकिन सब व्यर्थ होगा, क्योंकि उसकी किरणें रिक्तता से ही गुजरेंगी। कोई भी नहीं होगा जो प्रतिक्रिया कर सके और कह सके कि यह प्रकाश है।

प्रकाश तुम्हारी आंखों के कारण है। तुम प्रतिक्रिया करते हो। ध्वनि तुम्हारे कानों के कारण है। तुम प्रतिक्रिया करते हो। तुम क्या सोचते हो, किसी बगीचे में एक गुलाब का फूल खिला है, लेकिन यदि उधर से कोई भी न गुजरे तो क्या उसमें सुगंध होगी ? अकेला गुलाब ही सुगंध पैदा नहीं कर सकता। असंभव है। तुम और तुम्हारी नाक जरूरी है, कोई होना चाहिए जो प्रतिक्रिया कर सके और कह सके कि यह सुगंध है, यह गुलाब की सुगंध है। चाहे गुलाब कितनी ही कोशिश करे, बिना किसी नाक के वह गुलाब न होगा।

तो अशांति वास्तव में सड़क पर नहीं है, वह तुम्हारे अहंकार में है। तुम्हारा अहंकार प्रतिक्रिया करता है और कहता है कि यह अशांति है। यह तुम्हारी व्याख्या है। कभी किसी दूसरी स्थिति में तुम उसका आनंद भी ले सकते हो, तब वह अशांति नहीं होगी। किसी दूसरे मनोभाव में तुम उसका आनंद लोगे और तब तुम कहोगे, 'कितना सुंदर, क्या संगीत है !' लेकिन किसी उदासी के क्षण में संगीत भी अशांति बन जाएगा।

लेकिन यदि तुम नहीं हो, बस एक स्पेस है, एक रिक्तता है, तब न तो अशांति

हो सकती है न संगीत। सब कुछ बस तुमसे होकर गुजर जाएगा, बिलकुल अनजाना, क्योंकि अब कोई घाव नहीं है जो प्रतिक्रिया करे, भीतर कोई नहीं है जो प्रत्युत्तर दे; किसी अहंकार का निर्माण भी नहीं होगा। इसी को बुद्ध निर्वाण कहते हैं।

और यह विधि तुम्हारी सहायता कर सकती है।

'अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो—सर्वथा रिक्त।'

किसी भी निष्क्रिय अवस्था में बैठ जाओ, कुछ भी न करो क्योंकि जब भी तुम कुछ करते हो तो कर्ता बीच में आ जाता है। वास्तव में कोई कर्ता नहीं है। केवल क्रिया के कारण ही तुम समझते हो कि कर्ता है। बुद्ध को समझ पाना इसीलिए कठिन है। केवल भाषा के कारण ही समस्याएं खड़ी हुई हैं।

हम कहते हैं कि व्यक्ति चल रहा है। यदि हम इस वाक्य का विश्लेषण करें तो इसका अर्थ हुआ कि कोई है जो चल रहा है। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि कोई चल नहीं रहा, बस चलने की क्रिया हो रही है। तुम हंस रहे हो। भाषा के कारण ऐसा लगता है कि जैसे कोई है जो हंस रहा है। बुद्ध कहते हैं कि हंसी तो हो रही है, लेकिन भीतर कोई नहीं है जो हंस रहा है।

जब तुम हंसते हो, इसे स्मरण करो और खोजो कि कौन हंसता है। तुम कभी किसी को न पाओगे। बस हंसी मात्र है, उसके पीछे कोई हंसने वाला नहीं है। जब तुम उदास हो तो भीतर कोई नहीं है जो उदास है, बस उदासी है। उसको देखो। बस उदासी है। यह एक प्रक्रिया है—हंसी, सुख, दुख; इनके पीछे कोई मौजूद नहीं है।

केवल भाषा के कारण ही हम द्वैत में सोचते हैं। यदि कुछ होता है तो हम कहते हैं कि कोई होना चाहिए जिसने किया, कोई कर्ता होना चाहिए। हम क्रिया को अकेले नहीं सोच सकते। लेकिन क्या तुमने कभी कर्ता को देखा है ? क्या तुमने कभी उसे देखा है जो हंसता है ?

बुद्ध कहते हैं कि जीवन है, जीवन की प्रक्रिया है, लेकिन भीतर कोई भी नहीं है जो जीवंत है। और फिर मृत्यु होती है, लेकिन कोई मरता नहीं। बुद्ध के लिए तुम बंटे हुए नहीं हो। भाषा द्वैत निर्मित करती है। मैं बोल रहा हूं। ऐसा लगता है कि मैं कोई हूं जो बोल रहा है। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि केवल बोलना हो रहा है, बोलने वाला कोई नहीं है। यह एक प्रक्रिया है, जो किसी से संबंधित नहीं है।

लेकिन हमारे लिए यह कठिन है क्योंकि हमारा मन द्वैत में गहरा जमा हुआ

है। हम जब भी किसी क्रिया की बात सोचते हैं तो हम भीतर किसी कर्ता के बारे में सोचते हैं। यही कारण है कि ध्यान के लिए कोई शांत, निष्क्रिय मुद्रा अच्छी है क्योंकि तब तुम खालीपन में अधिक सरलता से उतर सकते हो।

बुद्ध कहते हैं, 'ध्यान करो मत, ध्यान में होओ।'

अंतर बड़ा है। मैं दोहराता हूं, बुद्ध कहते हैं, 'ध्यान करो मत, ध्यान में होओ।' क्योंकि यदि तुम ध्यान करते हो तो कर्ता बीच में आ गया, तुम यही सोचते रहोगे कि तुम ध्यान कर रहे हो। तब ध्यान एक कृत्य बन गया। बुद्ध कहते हैं, 'ध्यान में होओ।' इसका अर्थ है पूरी तरह निष्क्रिय हो जाओ, कुछ भी मत करो, मत सोचो कि कहीं कोई कर्ता है।

इसीलिए कई बार जब कर्ता क्रिया में खो जाता है तो तुम अचानक सुख का एक स्फुरण अनुभव करते हो। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि तुम क्रिया में खो गए। नृत्य में ऐसा एक क्षण आता है जब नृत्य रह जाता है और नर्तक खो जाता है, तब तत्क्षण एक आशीर्वाद, एक सौंदर्य, एक आनंद बरस उठता है। नर्तक एक अज्ञात आनंद से भर उठता है। क्या हुआ ? केवल क्रिया ही रह गई और कर्ता विलीन हो गया।

युद्ध-भूमि में सैनिक कई बार बड़े गहन आनंद को उपलब्ध हो जाते हैं। यह सोच पाना भी कठिन है क्योंकि वे मृत्यु के इतने निकट होते हैं कि किसी भी क्षण वे मर सकते हैं। शुरू-शुरू में तो वे भयभीत हो जाते हैं, भय से कांपते हैं, लेकिन तुम रोज-रोज लगातार कांपते और भयभीत नहीं रह सकते। धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है, मनुष्य मृत्यु को स्वीकार कर लेता है, तब भय समाप्त हो जाता है।

और जब मृत्यु इतनी करीब हो और जरा सी चूक से मृत्यु घटित हो सकती है तो कर्ता भूल जाता है और केवल कर्म रह जाता है, केवल क्रिया रह जाती है। और वे क्रिया में इतने गहरे डूब जाते हैं कि वे सतत याद नहीं रख सकते कि 'मैं हूं'। वह 'मैं हूं' तो परेशानी खड़ी करेगा। तुम चूक जाओगे। तुम क्रिया में पूरे नहीं हो पाओगे। और जीवन दांव पर लगा है, इसलिए तुम द्वैत को नहीं ढो सकते। कृत्य समग्र हो जाता है। और जब भी कृत्य समग्र होता है तो अचानक तुम पाते हो कि तुम इतने आनंदित हो जितने तुम पहले कभी भी न थे।

योद्धाओं ने आनंद के इतने गहरे झरनों का अनुभव किया है कि साधारण जीवन तुम्हें कभी नहीं दे सकता। शायद यही कारण हो कि युद्ध इतने आकर्षित करते हैं। और शायद यही कारण हो कि क्षत्रिय ब्राह्मणों से अधिक मोक्ष को उपलब्ध हुए हैं; क्योंकि ब्राह्मण हमेशा सोचते ही रहते हैं, बौद्धिक ऊहापोह

में उलझे रहते हैं। जैनों के चौबीस तीर्थंकर, राम, कृष्ण, बुद्ध, सभी क्षत्रिय थे, सभी योद्धा थे। उन्होंने उच्चतम शिखर को छुआ है।

किसी दुकानदार को कभी इतने ऊंचे शिखर छूते नहीं सुना गया। वह इतनी सुरक्षा में जीता है कि वह द्वैत में जी सकता है। वह जो भी करता है कभी पूरा-पूरा नहीं होता। लाभ कोई समग्र कृत्य नहीं हो सकता। तुम उसका आनंद ले सकते हो, लेकिन वह कोई जीवन-मृत्यु का सवाल नहीं हो सकता। तुम उसके साथ खेल सकते हो, लेकिन कुछ भी दांव पर नहीं लगा है। वह एक खेल है। दुकानदारी एक खेल ही है, धन का खेल है। खेल कोई कोई बहुत खतरनाक बात नहीं है, इसलिए दुकानदार सदा कुनकुना रहता है। एक जुआरी भी दुकानदार से अधिक आनंद को उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि जुआरी खतरे में उतरता है। उसके पास जो कुछ है वह दांव पर लगा देता है। पूरे दांव के उस क्षण में कर्ता खो जाता है।

शायद यही कारण है कि जुए में इतना आकर्षण है, युद्ध में इतना आकर्षण है, जहां तक मैं समझता हूं, जो भी कुछ आकर्षक है कहीं उसके पीछे कुछ आनंद भी छिपा होगा, कहीं अज्ञात का कोई इशारा छिपा होगा, कहीं जीवन के गहन रहस्य की झलक छिपी होगी। अन्यथा कुछ भी आकर्षक नहीं हो सकता।

निष्क्रियता...और ध्यान में तुम जो मुद्रा लो वह शांत होनी चाहिए। भारत में हमने सबसे निष्क्रिय आसन, सबसे शांत मुद्रा विकसित की है, सिद्धासन। और इसका सौंदर्य यह है कि सिद्धासन की मुद्रा में, जिसमें बुद्ध बैठे हैं, शरीर गहनतम निष्क्रियता की अवस्था में होता है। लेट कर भी तुम इतने क्रियाशून्य नहीं होते; सोते समय भी तुम्हारी मुद्रा निष्क्रिय नहीं होती, क्रियाशील होती है।

सिद्धासन इतना शांत क्यों होता है ? कई कारण हैं। इस मुद्रा में शरीर की विद्युत-ऊर्जा एक वर्तुल में घूमती है। शरीर एक विद्युतीय वर्तुल होता है—जब वर्तुल पूरा हो जाता है तो ऊर्जा शरीर में चक्राकार घूमने लगती है, बाहर नहीं निकलती। अब यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध तथ्य है कि कई मुद्राओं में तुम्हारे शरीर से ऊर्जा बाहर निकलती रहती है। जब शरीर ऊर्जा को बाहर फेंकता है तो उसे लगातार ऊर्जा पैदा करनी पड़ती है, वह सक्रिय रहता है। शरीर-तंत्र को लगातर कार्य करना पड़ता है क्योंकि तुम ऊर्जा फेंक रहे हो। जब ऊर्जा शरीर से बाहर निकल रही है तो उसे पूरा करने के लिए भीतर से शरीर को सक्रिय होना पड़ता है। तो सबसे शांत मुद्रा वह होगी जब कोई ऊर्जा बाहर नहीं निकल रही।

अब पाश्चात्य देशों में, विशेषकर इंग्लैंड में वे रोगियों का इलाज उनके

शरीर के विद्युतीय वर्तुल बनाकर करने लगे हैं। कई अस्पतालों में इन विधियों का उपयोग होता है, और वे बहुत सहयोगी हैं। व्यक्ति फर्श पर तारों के एक जाल पर लेट जाता है। तारों का वह जाल बस उसके शरीर की विद्युत का एक वर्तुल बनाने के लिए होता है। बस आधा घंटा ही पर्याप्त है—और वह इतना विश्रांत, इतना ऊर्जा से भरा हुआ, इतना शक्तिशाली अनुभव करेगा कि वह विश्वास भी नहीं कर पाएगा कि जब वह आया था तो इतना कमजोर था।

सभी पुरानी सभ्यताओं में लोग रात को एक विशेष दिशा में सोते थे, ताकि ऊर्जा बाहर न बहे। क्योंकि पृथ्वी में एक चुंबकीय शक्ति है; उस चुंबकीय शक्ति का उपयोग करने के लिए तुम्हें एक विशेष दिशा में लेटना पड़ेगा, तब पृथ्वी की शक्ति सारी रात तुम्हें चुंबकत्व में रखेगी। यदि तुम इससे विपरीत लेटे हुए हो तो वह शक्ति तुमसे संघर्ष में रहेगी और तुम्हारी ऊर्जा नष्ट होगी।

कई लोग सुबह बड़ा तनाव, बड़ी कमजोरी अनुभव करते हैं। ऐसा होना नहीं चाहिए, क्योंकि नींद तुम्हें तरो-ताजा करने के लिए, तुम्हें अधिक ऊर्जा देने के लिए है। लेकिन कई लोग हैं जो रात सोते समय ऊर्जा से भरे होते हैं, पर सुबह वे लाश की तरह होते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं, पर यह भी उनमें से एक कारण हो सकता है कि वे गलत दिशा में सोए हैं। यदि वे पृथ्वी के चुंबकत्व के विपरीत लेटे हुए हैं तो वे बुझा-बुझा महसूस करेंगे।

तो अब वैज्ञानिक कहते हैं कि शरीर का अपना एक विद्युत यंत्र है और ऐसे आसन हो सकते हैं जिनमें ऊर्जा संरक्षित हो। और उन्होंने सिद्धासन में बैठे हुए कई योगियों का अध्ययन किया है। उस अवस्था में शरीर न्यूनतम ऊर्जा बाहर फेंकता है; ऊर्जा संरक्षित रहती है। जब ऊर्जा संरक्षित होती है तो आंतरिक यंत्रों को कार्य नहीं करना पड़ता, किसी क्रिया की कोई जरूरत ही नहीं रहती। इसलिए शरीर अक्रिय होता है। इस अक्रियता में, तुम सक्रिय अवस्था से अधिक रिक्त हो सकते हो।

इस सिद्धासन की मुद्रा में तुम्हारी रीढ़ की हड्डी और पूरा शरीर सीधा होता है। अब कई अध्ययन हुए हैं। जब तुम्हारा शरीर पूरी तरह सीधा होता है तो तुम पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से न्यूनतम प्रभावित होते हो। यही कारण है कि जब तुम किसी असुविधाजनक मुद्रा में बैठते हो—जिसे तुम असुविधाजनक कहते हो—वह असुविधाजनक इसीलिए होती है क्योंकि तुम्हारा शरीर अधिक गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित हो रहा है। यदि तुम सीधे बैठे हुए हो तो गुरुत्वाकर्षण न्यूनतम प्रभावी होता है, क्योंकि वह मात्र तुम्हारी रीढ़ की हड्डी को खींच सकता है और कुछ भी नहीं।

इसीलिए तो खड़े रहकर सोना कठिन है। शीर्षासन में, सिर के बल खड़े होकर सोना तो लगभग असंभव ही है। सोने के लिए तुम्हें लेटना पड़ता है। क्यों ? क्योंकि तब धरती का खिंचाव तुम पर अधिकतम होता है, और अधिकतम खिंचाव तुम्हें अचेतन कर देता है। न्यूनतम खिंचाव तुम्हें जगाता है; अधिकतम खिंचाव अचेतन कर देता है। सोने के लिए तुम्हें लेटना पड़ता है, ताकि पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण तुम्हारे सारे शरीर को छुए और उसकी प्रत्येक कोशिका को खींचे। तब तुम अचेतन हो जाते हो।

पशु मनुष्य से अधिक अचेतन होते हैं, क्योंकि वे सीधे खड़े नहीं हो सकते। विकासवादी, इवोल्यूशनिस्ट कहते हैं कि मनुष्य इसीलिए विकसित हो सका क्योंकि वह दो पांवों पर सीधा खड़ा हो सका। गुरुत्वाकर्षण का खिंचाव कम होने के कारण वह थोड़ा अधिक चैतन्य हो पाया।

सिद्धासन में गुरुत्वाकर्षण शक्ति न्यूनतम होती है। शरीर निष्क्रिय और क्रिया-रहित होता है, भीतर से बंद होता है। स्वयं में एक संसार बन जाता है। न कुछ बाहर जाता है, न कुछ भीतर आता है। आंखें बंद हैं, हाथ जुड़े हुए हैं—पांव जुड़े हुए हैं ऊर्जा वर्तुल में गति करती है। और जब भी ऊर्जा वर्तुल में गति करती है, वह एक आंतरिक लय, एक आंतरिक संगीत निर्मित करती है। जितना तुम उस संगीत को सुनते हो, उतने ही तुम विश्रांत अनुभव करते हो।

'अपने निष्क्रिय रूप को त्वचा की दीवारों का एक रिक्त कक्ष मानो'—बिलकुल जैसे कोई खाली कमरा होता है—'सर्वथा रिक्त।'

उस रिक्तता में गिरते जाओ। एक क्षण आएगा जब तुम अनुभव करोगे कि सब कुछ समाप्त हो गया; कि अब कोई भी नहीं बचा, घर खाली है, घर का स्वामी मिट गया, तिरोहित हो गया। उस अंतराल में, जब तुम नहीं होओगे तो परमात्मा प्रकट होगा। जब तुम नहीं होते, परमात्मा होता है। जब तुम नहीं होते, आनंद होता है। इसलिए मिटने का प्रयास करो। भीतर से मिटने का प्रयास करो।

सक्रियता में लीलापूर्ण रहो

दूसरी विधि :

110. हे गरिमामयी, लीला करो। यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतुक करता है।

यह दूसरी विधि लीला के आयाम पर आधारित है। इसे समझें। यदि तुम

निष्क्रिय हो तब तो ठीक है कि तुम गहन रिक्तता में, आंतरिक गहराइयों में उतर जाओ। लेकिन तुम सारा दिन रिक्त नहीं हो सकते और सारा दिन क्रियाशून्य नहीं हो सकते, तुम्हें कुछ तो करना ही पड़ेगा। सक्रिय होना एक मूल आवश्यकता है, अन्यथा तुम जीवित नहीं रह सकते। जीवन का अर्थ ही है सक्रियता। तो तुम कुछ घंटों के लिए तो निष्क्रिय हो सकते हो, लेकिन चौबीस घंटे में बाकी समय तुम्हें सक्रिय रहना पड़ेगा।

और ध्यान तुम्हारे जीवन की शैली होनी चाहिए, उसका एक हिस्सा नहीं। अन्यथा पाकर भी तुम उसे खो दोगे। यदि एक घंटे के लिए तुम निष्क्रिय हो तो तेईस घंटे के लिए तुम सक्रिय होओगे। सक्रिय शक्तियां अधिक होंगी और निष्क्रियता में तुम जो भी पाओगे वे उसे नष्ट कर देंगी। सक्रिय शक्तियां उसे नष्ट कर देंगी। और अगले दिन फिर वही करोगे—तेईस घंटे तुम कर्ता को इकट्ठा करते रहोगे और एक घंटे के लिए तुम्हें उसे छोड़ना पड़ेगा। यह कठिन होगा।

तो कार्य और कृत्य के प्रति तुम्हें दृष्टिकोण बदलना होगा। इसीलिए यह दूसरी विधि है। कार्य को खेल समझना चाहिए, कार्य नहीं। कार्य को लीला की तरह, एक खेल की तरह लेना चाहिए। इसके प्रति तुम्हें गंभीर नहीं होना चाहिए, बस ऐसे ही जैसे बच्चे खेलते हैं। यह निष्प्रयोजन है, कुछ भी पाना नहीं है, बस कृत्य का ही आनंद लेना है।

यदि कभी-कभी तुम खेलो तो अंतर तुम्हें स्पष्ट हो सकता है। जब तुम कार्य करते हो तो अलग बात होती है। तुम गंभीर होते हो, बोझ से दबे होते हो, उत्तरदायी होते हो, चिंतित होते हो, परेशान होते हो, क्योंकि परिणाम तुम्हारा लक्ष्य होता है। स्वयं कार्य मात्र ही आनंद नहीं देता, असली बात भविष्य में, परिणाम में होती है। खेल में, वास्तव में कोई परिणाम नहीं होता। खेलना ही आनंदपूर्ण होता है। और तुम चिंतित नहीं होते, खेल कोई गंभीर बात नहीं है। यदि तुम गंभीर दिखाई भी पड़ते हो तो वह बस दिखावा होता है। खेल में तुम प्रक्रिया का ही आनंद लेते हो।

कार्य में प्रक्रिया का आनंद नहीं लिया जाता, लक्ष्य, परिणाम महत्त्वपूर्ण होता है। प्रक्रिया को किसी न किसी तरह झेलना पड़ता है। कार्य करना पड़ता है क्योंकि परिणाम पाना होता है। यदि परिणाम को तुम इसके बिना भी पा सकते तो तुम क्रिया को एक ओर सरका देते और परिणाम पर कूद पड़ते।

लेकिन खेल में तुम ऐसा नहीं करोगे, यदि परिणाम को तुम बिना खेले पा सको तो परिणाम व्यर्थ हो जाएगा। उसका महत्त्व ही प्रक्रिया के कारण है। उदाहरण के लिए, दो फुटबाल की टीमें खेल के मैदान में हैं, बस एक सिक्का

उछाल कर वे तय कर सकते हैं कि कौन जीतेगा और कौन हारेगा। इतने श्रम, इतनी लंबी प्रक्रिया से क्यों गुजरना ? इसे बड़ी सरलता से एक सिक्का उछाल कर तय किया जा सकता है। परिणाम सामने आ जाएगा। एक टीम जीत जाएगी और दूसरी टीम हार जाएगी। उसके लिए मेहनत क्या करनी ?

लेकिन तब कोई अर्थ नहीं रह जाएगा, कोई मतलब नहीं रह जाएगा। परिणाम अर्थपूर्ण नहीं है, प्रक्रिया का ही अर्थ है। यदि न कोई जीते और न कोई हारे तब भी खेल का मूल्य है। उस कृत्य का ही आनंद है।

लीला के इस आयाम को तुम्हारे पूरे जीवन में जोड़ना है—तुम जो भी कर रहे हो, उस कृत्य में इतने समग्र हो जाओ कि परिणाम असंगत हो जाए। शायद वह आ भी जाए, उसे आना ही होगा, लेकिन वह तुम्हारे मन में न हो। तुम बस खेल रहे हो और आनंद ले रहे हो।

कृष्ण का यही अर्थ है जब वे अर्जुन को कहते हैं कि भविष्य परमात्मा के हाथ में छोड़ दे। तेरे कर्मों का फल परमात्मा के हाथ में है, तू तो बस कर्म कर। यही सहज कृत्य लीला बन जाता है। यही समझने में अर्जुन को कठिनाई होती है, क्योंकि वह कहता है कि यदि यह सब लीला ही है तो हत्या क्यों करें ? युद्ध क्यों करें ? वह समझ सकता है कि कार्य क्या है, पर वह यह नहीं समझ सकता कि लीला क्या है। और कृष्ण का पूरा जीवन ही एक लीला है।

तुम इतना गैर-गंभीर व्यक्ति कहीं और नहीं ढूंढ़ सकते। उनका पूरा जीवन ही एक लीला है, एक खेल है, एक अभिनय है। वे सब चीजों का आनंद ले रहे हैं, लेकिन उनके प्रति गंभीर नहीं है। वे सघनता से सब चीजों का आनंद ले रहे हैं, पर परिणाम के विषय में बिलकुल भी चिंतित नहीं हैं। जो होगा वह असंगत है।

अर्जुन के लिए कृष्ण को समझना कठिन है। क्योंकि वह हिसाब लगाता है, वह परिणाम की भाषा में सोचता है। वह गीता के आरंभ में कहता है, 'यह सब असार लगता है। दोनों ओर मेरे मित्र संबंधी लड़ने के लिए तैयार खड़े हैं। कोई भी जीते, नुकसान ही होगा, क्योंकि मेरा परिवार, मेरे संबंधी, मेरे मित्र ही नष्ट होंगे। यदि मैं जीत भी जाऊं तो भी कोई अर्थ नहीं होगा क्योंकि अपनी विजय मैं किसे दिखाऊंगा ? विजय का अर्थ ही तभी होता है जब मित्र, संबंधी, परिजन उसका आनंद लें। लेकिन कोई भी न होगा, केवल लाशों के ऊपर विजय होगी। कौन उसकी प्रशंसा करेगा ? कौन कहेगा कि अर्जुन, तुमने बड़ा काम किया ! तो चाहे मैं जीतूं, चाहे मैं हारूं, सब असार लगता है, सारी बात ही बेकार है।'

वह पलायन करना चाहता है। वह बहुत गंभीर है। और जो भी हिसाब-किताब लगाता है वह उतना ही गंभीर होगा। गीता की पृष्ठभूमि अद्भुत है—युद्ध सबसे गंभीर घटना है। तुम उसके प्रति खेलपूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि जीवन-मरण का प्रश्न है, लाखों जानों का प्रश्न है, तुम खेलपूर्ण नहीं हो सकते। और कृष्ण आग्रह करते हैं कि वहां भी तुम्हें खेलपूर्ण होना है। तुम यह मत सोचो कि अंत में क्या होगा, बस अभी और यहीं जीओ। तुम बस योद्धा का अपना खेल पूरा करो। फल की चिंता मत करो क्योंकि परिणाम तो परमात्मा के हाथों में है। और इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता कि परिणाम परमात्मा के हाथों में है या नहीं। असली बात यह है कि परिणाम तुम्हारे हाथों में नहीं है। तुम्हें उसे नहीं ढोना है। यदि तुम उसे ढोते हो तो तुम्हारा जीवन ध्यानपूर्ण नहीं हो सकता।

यह दूसरी विधि कहती है—'हे गरिमामयी, लीला करो।'

अपने पूरे जीवन को लीला बन जाने दो।

'यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा अनंत रूप से कौतुक करता है।'

तुम्हारा मन अनवरत खेलता चला जाता है। पूरी प्रक्रिया एक खाली कमरे में चलते हुए स्वप्न जैसी है। ध्यान में अपने मन को कौतुक करते हुए देखना होता है, बिलकुल ऐसे ही जैसे बच्चे खेलते हैं और ऊर्जा के अतिरेक से कूदते-फांदते हैं। इतना ही पर्याप्त है। विचार उछल रहे हैं, कौतुक कर रहे हैं, बस एक लीला है। उनके प्रति गंभीर मत होओ। यदि कोई बुरा विचार भी आता है तो ग्लानि से मत भरो, या यदि कोई शुभ विचार उठता है—कि तुम मानवता की सेवा करना चाहते हो और पूरे संसार को बदल डालना चाहते हो और तुम पृथ्वी पर स्वर्ग उतार लाना चाहते हो—तो इसके कारण तुम अधिक अहंकार से मत भर जाओ, ऐसा मत सोचो कि तुम बहुत महान हो गए हो। केवल उछलता हुआ मन है। कभी नीचे जाता है, कभी ऊपर आता है। यह तो बस ऊर्जा का बहता हुआ अतिरेक है जो भिन्न-भिन्न रूप और आकार ले रही है। मन तो उमड़कर बहता हुआ एक झरना मात्र है, और कुछ भी नहीं।

खेलपूर्ण होओ। शिव कहते हैं—'हे गरिमामयी, लीला करो।'

खेलपूर्ण होने का अर्थ होता है कि वह कृत्य का आनंद ले रहा है, कृत्य ही स्वयं में पर्याप्त है, पीछे किसी लाभ की आकांक्षा नहीं है; वह कोई हिसाब नहीं लगा रहा है। जरा एक दुकानदार की ओर देखो, वह जो भी कर रहा है उसमें लाभ-हानि का हिसाब लगा रहा है, कि इससे मिलेगा क्या। एक ग्राहक

आता है, ग्राहक कोई व्यक्ति नहीं बस एक साधन है। उससे क्या कमाया जा सकता है, कैसे उसका शोषण किया जा सकता है, गहरे में वह हिसाब लगा रहा है कि क्या कहना है, क्या करना है। बस शोषण के लिए वह हर चीज का हिसाब लगा रहा है। उसे इस आदमी से कुछ लेना-देना नहीं है, बस सौदे से मतलब है, किसी और चीज से नहीं। उसे बस भविष्य से, लाभ से मतलब है।

पूर्व में देखो—गांवों में अभी भी दुकानदार बस लाभ ही नहीं कमाते और ग्राहक बस खरीदने ही नहीं आते। वे सौदे का आनंद लेते हैं। मुझे अपने दादा की याद है, वह कपड़ों के दुकानदार थे। और मैं तथा मेरे परिवार के लोग हैरान थे, क्योंकि इसमें उन्हें बहुत मजा आता था। घंटों-घंटों ग्राहकों के साथ यह खेल चलता। यदि कोई चीज दस रुपए की होती तो वह उसके पचास रुपए मांगते और वह जानते थे कि यह झूठ है। और उनके ग्राहक भी जानते थे कि वह चीज दस रुपए के आस-पास की होनी चाहिए और वे दो रुपए से शुरू करते, फिर घंटों तक लंबी बहस होती। मेरे पिता और चाचा गुस्सा होते कि 'यह क्या हो रहा है ? आप सीधे-सीधे कीमत क्यों नहीं बता देते ?' लेकिन उनके भी अपने ही ग्राहक थे। जब वे लोग आते तो पूछते, 'दादा कहां हैं ? क्योंकि उनके साथ तो खेल हो जाता है। चाहे हमें एक-दो रुपए कम-ज्यादा देने पड़ें, इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता !'

उन्हें इसमें आनंद आता, वह कृत्य ही अपने आप में आनंद था। दो लोग बात कर रहे हैं, दोनों खेल रहे हैं और दोनों जानते हैं कि यह एक खेल है, क्योंकि स्वभावतः एक निश्चित मूल्य ही संभव था।

पश्चिम में अब मूल्यों को निश्चित कर दिया गया है। क्योंकि लोग अधिक हिसाबी और लाभ-उन्मुख हो गए हैं, समय क्यों व्यर्थ करना ? जब बात को मिनटों में निपटाया जा सकता है तो कोई जरूरत नहीं है। तुम सीधे-सीधे निश्चित मूल्य लिख सकते हो। घंटों तक क्यों जद्दोजहद करना ? लेकिन तब सारा खेल खो जाता है और एक दिनचर्या रह जाती है। इसे तो मशीनें भी कर सकती हैं। दुकानदार की जरूरत ही नहीं है, न ग्राहक की जरूरत है।

मैंने एक मनोविश्लेषक के संबंध में सुना है कि वह इतना व्यस्त था और उसके पास इतने मरीज आते थे कि हर किसी से व्यक्तिगत संपर्क रख पाना कठिन था। तो वह अपने टेप रिकार्डर में मरीजों के लिए सब संदेश भर देता था जो स्वयं उनसे कहना चाहता था।

एक बार ऐसा हुआ कि एक बहुत अमीर मरीज का सलाह के लिए मिलने

का समय था। मनोविश्लेषक एक होटल में भीतर जा रहा था। अचानक उसने उस मरीज को वहां बैठे देखा। तो उसने पूछा, 'तुम यहां क्या कर रहे हो ? इस समय तो तुम्हें मेरे पास आना था।' मरीज ने कहा, 'मैं भी इतना व्यस्त हूं कि मैंने अपनी बातें टेप रिकार्डर में भर दी हैं। दोनों टेप रिकार्डर आपस में बातें कर रहे हैं। जो आपको मुझसे कहना है वह मेरे टेप रिकार्डर में भर गया है और जो मुझे आपको कहना है वह मेरे टेप रिकार्डर से आपके टेप रिकार्डर में रिकार्ड हो गया है। इससे समय भी बच गया है और हम दोनों खाली हैं।'

यदि तुम बहुत हिसाबी हो जाओ तो व्यक्ति समाप्त होते जाते हैं और मशीनें आती जाती हैं। भारत के गांवों में अभी भी मोल-तोल होता है, यह एक खेल है और रस लेने जैसा है। तुम खेल रहे हो। दो प्रतिभाओं के बीच एक खेल चलता है और दोनों व्यक्ति गहरे संपर्क में आते हैं। लेकिन फिर समय नहीं बचता। खेलने से तो कभी भी समय की बचत नहीं हो सकती। और खेल में तुम समय की चिंता भी नहीं लेते। तुम चिंतामुक्त होते हो और जो भी होता है उसी समय तुम उसका रस लेते हो। खेलपूर्ण होना ध्यान प्रक्रियाओं के गहनतम आधारों में से एक है। लेकिन हमारा मन दुकानदार है, हमें उसके लिए प्रशिक्षित किया गया है। तो जब हम ध्यान भी करते हैं तो परिणाम उन्मुख होते हैं। और चाहे जो भी हो, तुम असंतुष्ट ही रहोगे।

मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं, 'हां, ध्यान तो गहरा हो रहा है। मैं अधिक आनंदित हो रहा हूं, अधिक मौन और शांत अनुभव कर रहा हूं, लेकिन और कुछ भी नहीं हो रहा।'

और क्या नहीं हो रहा ? मैं जानता हूं ऐसे लोग एक दिन आएंगे और पूछेंगे, 'हां, मुझे निर्वाण का अनुभव तो हो रहा है, पर और कुछ नहीं हो रहा है ! मैं आनंदित हूं, पर और कुछ नहीं हो रहा !' और क्या चाहिए ? वह कोई लाभ ढूंढ़ रहा है, और जब तक कोई बहुत ठोस लाभ उसके हाथों में नहीं आ जाता, जिसे वह बैंक में जमा कर सके, वह संतुष्ट नहीं हो सकता। मौन और आनंद इतने अदृश्य हैं कि तुम उन पर मालकियत नहीं कर सकते, तुम उन्हें किसी को दिखा नहीं सकते।

रोज मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं कि वे उदास हैं। वे किसी ऐसी चीज की आशा कर रहे हैं जिसकी आशा दुकानदारी में भी नहीं होनी चाहिए। और ध्यान में वे उसकी आशा कर रहे हैं ! दुकानदार, हिसाबी-किताबी मन ध्यान के भी बीच में आ जाता है-इससे क्या लाभ हो सकता है ?

दुकानदार खेलपूर्ण नहीं होता। और यदि तुम खेलपूर्ण नहीं हो तो तुम ध्यान

में नहीं उतर सकते। अधिक से अधिक खेलपूर्ण होते जाओ। खेल में समय व्यतीत करो। बच्चों के साथ खेलना ठीक रहेगा। यदि कोई और न भी हो तो तुम कमरे में अकेले उछल-कूद कर सकते हो, नाच सकते हो। और खेल सकते हो, आनंद ले सकते हो।

लेकिन तुम्हारा मन कहता रहेगा, 'क्या कर रहे हो, समय बरबाद कर रहे हो ? इतने समय में तुम कुछ कमा सकते हो। तुम कुछ कर सकते हो। और तुम बस उछल रहे हो, नाच रहे हो, गा रहे हो, तुम क्या कर रहे हो ? क्या तुम पागल हो गए हो ?'

यह प्रयोग करके देखो। दुकानदारी में से जितना समय निकाल सको, निकाल कर जरा खेल में लगाओ, जो भी चाहो करो। चित्र बना सकते हो, सितार बजा सकते हो—तुम्हें जो भी अच्छा लगे—लेकिन खेलपूर्ण होओ। किसी लाभ की आकांक्षा मत करो, भविष्य की ओर मत देखो, वर्तमान की ओर देखो। और तब तुम भीतर भी खेलपूर्ण हो सकते हो। तब तुम अपने विचारों पर उछल सकते हो, उनके साथ खेल सकते हो, उन्हें इधर-उधर फेंक सकते हो, उनके साथ नाच सकते हो, लेकिन उनके प्रति गंभीर नहीं होओगे।

दो प्रकार के लोग हैं। एक वे जो मन के संबंध में पूर्णतया अचेत हैं। उनके मन में जो भी होता है उसके प्रति वे मूर्च्छित होते हैं, उन्हें नहीं पता कि कहां उनका मन उन्हें भटकाए जा रहा है। यदि मन की किसी भी चाल के प्रति तुम सचेत हो सको तो तुम हैरान होओगे कि मन में क्या हो रहा है।

मन एसोसिएशन से चलता है। राह पर एक कुत्ता भौंकता है। भौंकना तुम्हारे मस्तिष्क तक पहुंचता है और वह कार्य करना शुरू कर देता है। कुत्ते के इस भौंकने को लेकर तुम संसार के अंत तक जा सकते हो। हो सकता है कि तुम्हें किसी मित्र की याद आ जाए जिसके पास एक कुत्ता है। अब यह कुत्ता तो तुम भूल गए पर वह मित्र तुम्हारे मन में आ गया। और उसकी एक पत्नी है जो बहुत सुंदर है—अब तुम्हारा मन चलने लगा। अब तुम संसार के अंत तक जा सकते हो और तुम्हें पता नहीं चलता कि एक कुत्ता तुम पर चाल चल गया; वह बस भौंका तुम्हें रास्ते पर ले आया, तुम्हारे मन ने दौड़ना शुरू कर दिया।

तुम्हें बड़ी हैरानी होगी यह जानकर कि वैज्ञानिक इस बारे में क्या कहते हैं। वे कहते हैं कि यह मार्ग तुम्हारे मन में सुनिश्चित हो जाता है। यदि यही कुत्ता इसी परिस्थिति में दोबारा भौंके तो तुम इसी पर चल पड़ोगे—वही मित्र, वही कुत्ता, वही सुंदर पत्नी। दोबारा उसी रास्ते पर तुम घूम जाओगे।

अब मनुष्य के मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड डालकर उन्होंने कई प्रयोग किए हैं।

वे मस्तिष्क में एक विशेष स्थान को छूते हैं और एक विशेष स्मृति उभर आती है। अचानक तुम पाते हो कि तुम पांच वर्ष के हो, एक बगीचे में खेल रहे हो, तितलियों के पीछे दौड़ रहे हो। फिर पूरी की पूरी श्रृंखला चली आती है—तुम्हें अच्छा लग रहा है; हवा, बगीचा, सुगंध, सब कुछ जीवंत हो उठता है। वह मात्र स्मृति ही नहीं होती, तुम उसे दोबारा जीते हो। फिर इलेक्ट्रोड वापस निकाल लिया जाता है और स्मृति रुक जाती है। यदि इलेक्ट्रोड पुनः उसी स्थान को छू ले तो पुनः वही स्मृति शुरू हो जाती है—तुम पुनः पांच साल के हो जाते हो, उसी बगीचे में, उसी तितली के पीछे दौड़ने लगते हो, वही सुगंध और वही घटना-चक्र शुरू हो जाता है। जब इलेक्ट्रोड निकाल लिया जाता है तब स्मृति समाप्त हो जाती है; लेकिन इलेक्ट्रोड को वापस उसी जगह रख दो तो स्मृति वापस आ जाती है।

यह ऐसे ही है जैसे यांत्रिक रूप से कुछ स्मरण कर रहे हो। और पूरा क्रम एक निश्चित जगह से प्रारंभ होता है और निश्चित परिणति पर समाप्त होता है; फिर पुनः प्रारंभ से शुरू होता है। ऐसे ही जैसे तुम टेप रिकार्डर में कुछ भर देते हो। तुम्हारे मस्तिष्क में लाखों स्मृतियां हैं, लाखों कोशिकाएं स्मृतियां इकट्ठा कर रही हैं, और यह सब यांत्रिक है।

मनुष्य के मस्तिष्क के साथ किए गए ये प्रयोग अद्‌भुत हैं और इनसे बहुत कुछ पता चलता है। स्मृतियां बार-बार दोहरायी जा सकती हैं। एक प्रयोगकर्ता ने एक स्मृति को तीन सौ बार दोहराया और स्मृति वही की वही रही-वह संगृहीत थी। जिस व्यक्ति पर यह प्रयोग किया गया उसे तो बड़ा विचित्र लगा क्योंकि वह उस प्रक्रिया का मालिक नहीं था, वह कुछ भी नहीं कर सकता था। जब इलेक्ट्रोड उस स्थान को छूता तो स्मृति शुरू हो जाती और उसे देखना पड़ता।

तीन सौ बार दोहराने पर वह साक्षी बन गया। स्मृति को तो वह देखता रहा, पर इस बात के प्रति वह जाग गया कि वह और उसकी स्मृति अलग-अलग हैं। यह प्रयोग ध्यानियों के लिए बहुत सहयोगी हो सकता है, क्योंकि जब तुम्हें पता चलता है कि तुम्हारा मन और कुछ नहीं बस तुम्हारे चारों ओर एक यांत्रिक संग्रह है तो तुम उससे अलग हो जाते हो।

इस मन को बदला जा सकता है। अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि देर-अबेर हम उन केंद्रों को काट डालेंगे जो तुम्हें विषाद और संताप देते हैं, क्योंकि बार-बार एक ही स्थान छुआ जाता है और पूरी की पूरी प्रक्रिया को दोबारा जीना पड़ता है।

मैंने कई शिष्यों के साथ प्रयोग किए हैं। वही बात दोहराओ और वे बार-बार उसी दुष्चक्र में गिरते जाते हैं, जब तक कि वे इस बात के साक्षी न हो जाएं कि यह एक यांत्रिक प्रक्रिया है। तुम्हें इस बात का पता है कि यदि तुम अपनी पत्नी से हर सप्ताह वही-वहीं बात कहते रहो तो वह क्या प्रतिक्रिया करेगी। सात दिन में जब वह भूल जाए तो फिर वही बात कहो—वही प्रतिक्रिया होगी।

इसे रिकार्ड कर लो, प्रतिक्रिया हर बार वही होगी। तुम भी जानते हो, तुम्हारी पत्नी भी जानती है, एक ढांचा निश्चित है। और यही चलता रहता है, एक कुत्ता भी भौंक कर तुम्हारी प्रक्रिया की शुरुआत कर सकता है। कहीं कुछ छू जाता है, इलेक्ट्रोड प्रवेश कर जाता है, तुमने एक यात्रा शुरू कर दी है।

यदि तुम जीवन में खेलपूर्ण हो तो भीतर तुम मन के साथ भी खेलपूर्ण हो सकते हो। फिर ऐसा समझो जैसे टेलीविजन के पर्दे पर तुम कुछ देख रहे हो—तुम उसमें सम्मिलित नहीं हो, बस एक द्रष्टा हो, एक दर्शक हो। तो देखो और उसका आनंद लो। न कहो अच्छा है, न कहो बुरा है, न निंदा करो, न प्रशंसा करो, क्योंकि वे गंभीर बातें हैं।

यदि तुम्हारे पर्दे पर कोई नग्न स्त्री आ जाती है तो यह मत कहो कि यह गलत है, कि कोई शैतान तुम पर चाल चल रहा है। कोई शैतान तुम पर चाल नहीं चल रहा, इसे ऐसे देखो जैसे फिल्म के पर्दे पर कुछ देख रहे हो।

और इसके प्रति खेल का भाव रखो। उस स्त्री से कहो कि प्रतीक्षा करो। उसे बाहर धकेलने की कोशिश मत करो, क्योंकि जितना तुम उसे बाहर धकेलोगे उतना ही वह भीतर घुसेगी—अब महिलाएं तो हठी होती हैं। और उसका पीछा भी मत करो। यदि तुम उसके पीछे जाते हो तो भी तुम मुश्किल में पड़ोगे। न उसके पीछे जाओ, न उससे लड़ो, यही नियम है। बस देखो और खेलपूर्ण रहो। बस हेलो या नमस्कार कर लो और देखते रहो, और उससे बेचैन मत होओ। उस स्त्री को इंतजार करने दो।

जैसे वह आई थी वैसे ही अपने आप चली जाएगी, वह अपनी मर्जी से चलती है। उसका तुमसे कोई लेना-देना नहीं है, वह बस तुम्हारे स्मृतिपट पर है। किसी परिस्थिति वश वह चली आई, बस एक चित्र की भांति। उसके प्रति खेलपूर्ण रहो।

यदि तुम अपने मन के साथ खेल सको तो वह शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा, क्योंकि मन केवल तभी हो सकता है जब तुम गंभीर होओ। गंभीरता बीच की कड़ी है, सेतु है।

'हे गरिमामयी, लीला करो। यह ब्रह्मांड एक रिक्त खोल है जिसमें तुम्हारा मन अनंत रूप से कौतुक करता है।'

ज्ञान और अज्ञान के पार

तीसरी विधि :

111. हे प्रिये, ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व पर ध्यान दो। फिर दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको।

'ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व पर ध्यान दो।'

जीवन के विधायक पहलू पर ध्यान करो और फिर ध्यान को नकारात्मक पहलू पर ले जाओ, फिर दोनों को छोड़ दो क्योंकि तुम दोनों ही नहीं हो।

'फिर दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको।'

इसे इस तरह देखो—जन्म पर ध्यान दो। एक बच्चा पैदा हुआ, तुम पैदा हुए। फिर तुम बढ़ते हो, जवान होते हो–इस पूरे विकास पर ध्यान दो। फिर तुम बूढ़े हो जाते हो और मर जाते हो। बिलकुल आरंभ से, उस क्षण की कल्पना करो जब तुम्हारे पिता और माता ने तुम्हें धारण किया था और मां के गर्भ में तुमने प्रवेश किया था। बिलकुल पहला कोष्ठ। वहां से अंत तक देखो, जहां तुम्हारा शरीर चिता पर जल रहा है और तुम्हारे संबंधी तुम्हारे चारों ओर खड़े हुए हैं। फिर दोनों को छोड़ दो, वह जो पैदा हुआ और वह जो मरा। फिर दोनों को छोड़ दो और भीतर देखो, वहां तुम हो, जो न कभी पैदा हुआ और जो न कभी मरेगा।

'ज्ञान और अज्ञान, अस्तित्व और अनस्तित्व ... फिर दोनों को छोड़ दो ताकि तुम हो सको।'

यह तुम किसी भी विधायक-नकारात्मक घटना से कर सकते हो। तुम यहां बैठे हो, मैं तुम्हारी ओर देखता हूं, मेरा तुमसे संबंध होता है; जब मैं अपनी आंखें बंद कर लेता हूं तो तुम नहीं रहते और मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं हो पाता। फिर संबंध और असंबंध दोनों को छोड़ दो। तुम रिक्त हो जाओगे। क्योंकि जब तुम ज्ञान और अज्ञान दोनों का त्याग कर देते हो तो तुम रिक्त हो जाते हो।

दो तरह के लोग हैं—कुछ ज्ञान से भरे हैं और कुछ अज्ञान से भरे हैं। ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि हम जानते हैं; उनका अहंकार उनके ज्ञान से बंधा हुआ है। और ऐसे लोग हैं जो कहते हैं, 'हम अज्ञानी हैं', वे अपने अज्ञान से भरे हुए हैं। वे कहते हैं, 'हम अज्ञानी हैं, हम कुछ नहीं जानते।' एक ज्ञान से बंधा हुआ

है दूसरा अज्ञान से, लेकिन दोनों के पास कुछ है, दोनों कुछ ढो रहे हैं।

ज्ञान और अज्ञान दोनों को हटा दो, ताकि तुम दोनों से अलग हो सको, न अज्ञानी, न ज्ञानी। विधायक और नकारात्मक दोनों को हटा दो। फिर तुम कौन हो ? अचानक वह 'कौन' तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएगा। तुम उस अद्वैत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओगे जो दोनों के पार है। विधायक और नकारात्मक दोनों को छोड़कर तुम रिक्त हो जाओगे। तुम कुछ भी नहीं रहोगे, न ज्ञानी और न अज्ञानी। घृणा और प्रेम दोनों को छोड़ दो, मित्रता और शत्रुता दोनों को छोड़ दो। और जब दोनों ध्रुव छूट जाते हैं, तुम रिक्त हो जाते हो।

और यह मन की एक चाल है—वह छोड़ सकता है, लेकिन दोनों को एक साथ नहीं। एक चीज को छोड़ सकता है। तुम अज्ञान को छोड़ सकते हो, फिर तुम ज्ञान से चिपक जाओगे। तुम पीड़ा को छोड़ सकते हो, फिर तुम सुख को पकड़ लोगे। तुम शत्रुओं को छोड़ दोगे तो मित्रों को पकड़ लोगे। और ऐसे लोग भी हैं जो बिलकुल उलटा करेंगे—वे मित्रों को छोड़कर शत्रुओं को पकड़ लेंगे, प्रेम को छोड़कर घृणा को पकड़ लेंगे, धन को छोड़कर निर्धनता को पकड़ लेंगे और ज्ञान तथा शास्त्रों को छोड़कर अज्ञान से चिपक जाएंगे। ये लोग बड़े त्यागी कहलाते हैं। तुम जो कुछ भी पकड़े हो वे उसे छोड़कर विपरीत को पकड़ लेते हैं, लेकिन पकड़ते वे भी हैं।

पकड़ ही समस्या है। क्योंकि यदि तुम कुछ भी पकड़े हो तो तुम रिक्त नहीं हो सकते। पकड़ो मत। इस विधि का यही संदेश है। किसी भी विधायक या नकारात्मक चीज को मत पकड़ो क्योंकि न पकड़ने से ही तुम स्वयं को खोज पाओगे। तुम तो हो ही, पर पकड़ के कारण छिपे हुए हो। पकड़ छोड़ते ही तुम उघड़ जाओगे, प्रकट हो जाओगे।

भीतर के आकाश में प्रवेश करो

चौथी विधि :

112. आधारहीन, शाश्वत, निश्चल आकाश में प्रविष्ट होओ।

इस विधि में आकाश के, स्पेस के तीन गुण दिए गए हैं। आधारहीन—आकाश में कोई आधार नहीं हो सकता। शाश्वत—वह कभी समाप्त नहीं हो सकता। निश्चल—वह सदा ध्वनि-रहित व मौन होगा। इस आकाश में प्रवेश करो, यह तुम्हारे भीतर ही है।

लेकिन मन सदा आधार खोजता है। मेरे पास लोग आते हैं और मैं उनसे

कहता हूं, 'आंखें बंद करके मौन बैठो और कुछ भी मत करो।' और वे कहते हैं, 'हमें कोई अवलंबन दो, सहारा दो, सहारे के लिए कोई मंत्र दो, क्योंकि हम खाली बैठ नहीं सकते।' खाली बैठना कठिन है। यदि मैं उन्हें कोई मंत्र दे दूं तो ठीक है, वे मंत्र दोहराते रह सकते हैं। तब सरल है।

आधार के होते तुम कभी रिक्त नहीं हो सकते। यही कारण है कि वह सरल है। कुछ न कुछ होना चाहिए, तुम्हारे पास करने के लिए कुछ न कुछ होना चाहिए। करते रहने से कर्ता बना रहता है; करते रहने से तुम भरे रहते हो—चाहे तुम ओंकार से भरे हो, ओम से भरे हो, राम से भरे हो, जीसस से, आवमारिया से, किसी भी चीज से—किसी भी चीज से भरे हो, लेकिन तुम भरे हो। तब तुम ठीक रहते हो। मन खालीपन का विरोध करता है। वह सदा किसी चीज से भरा रहना चाहता है, क्योंकि जब तक यह भरा है तब तक चल सकता है। यदि वह रिक्त हुआ तो समाप्त हो जाएगा। रिक्तता में तुम अ-मन को उपलब्ध हो जाओगे। यही कारण है कि मन आधार की खोज करता है।

यदि तुम अंतर-आकाश, इनर स्पेस में प्रवेश करना चाहते हो तो आधार मत खोजो। सब सहारे—मंत्र, परमात्मा, शास्त्र—जो भी तुम्हें सहारा देता है वह सब छोड़ दो। यदि तुम्हें लगे कि किसी चीज से तुम्हें सहारा मिल रहा है तो उसे छोड़ दो और भीतर आ जाओ—आधारहीन।

यह भयपूर्ण होगा; तुम भयभीत हो जाओगे। तुम वहां जा रहे हो जहां तुम पूरी तरह खो सकते हो। हो सकता है तुम वापस ही न आओ क्योंकि वहां सब सहारे खो जाएंगे। किनारे से तुम्हारा संपर्क छूट जाएगा और नदी तुम्हें कहां ले जाएगी, किसी को पता नहीं। तुम्हारा आधार खो सकता है। तुम एक अनंत खाई में गिर सकते हो। इसलिए तुम्हें भय पकड़ता है और तुम आधार खोजने लगते हो। चाहे वह झूठा ही आधार क्यों न हो, तुम्हें उससे राहत मिलती है। झूठा आधार भी मदद देता है क्योंकि मन को कोई अंतर नहीं पड़ता कि आधार झूठा है या सच्चा है, कोई आधार होना चाहिए।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आया। वह ऐसे घर में रहता था जहां उसे लगता था कि भूत-प्रेत हैं, और वह बहुत चिंतित था। चिंता के कारण उसका भ्रम बढ़ने लगा। चिंता से वह बीमार पड़ गया, कमजोर हो गया। उसकी पत्नी ने कहा, 'यदि तुम इस घर में जरा और रुके तो मैं तो जा रही हूं।' उसके बच्चों को एक संबंधी के घर भेजना पड़ा।

वह आदमी मेरे पास आया और बोला, 'अब तो बहुत मुश्किल हो गई है, मैं उन्हें साफ-साफ देखता हूं। रात वे चलते हैं, पूरा घर भूतों से भरा हुआ है।

आप मेरी मदद करें।'

तो मैंने उसे अपना एक चित्र दिया और कहा, 'इसे ले जाओ। अब उन भूतों से मैं निपट लूंगा। तुम बस आराम से सो जाओ, तुम्हें चिंता करने की जरूरत नहीं है। उनसे मैं निपट लूंगा, उन्हें मैं देख लूंगा। अब यह मेरा काम है और तुम बीच में मत आना। अब तुम्हें चिंता नहीं करनी है।

वह अगले ही दिन आया और बोला, 'बड़ी राहत मिली, मैं आराम से सोया! आपने तो चमत्कार कर दिया !' और मैंने कुछ भी नहीं किया, बस एक आधार दिया। आधार से मन भर गया। वह खाली न रहा; वहां कोई उसके साथ था।

सामान्य जीवन में तुम कई झूठे सहारों को पकड़े रहते हो, पर वे मदद करते हैं; और जब तक तुम स्वयं शक्तिशाली न हो जाओ, तुम्हें उनकी जरूरत होगी। इसीलिए मैं कहता हूं कि यह परम विधि है–कोई आधार नहीं।

बुद्ध मृत्युशय्या पर थे और आनंद ने उनसे पूछा, 'आप हमें छोड़कर जा रहे हैं, अब हम क्या करेंगे ? हम कैसे उपलब्ध होंगे ? हम अब आगे कैसे बढ़ेंगे ? जब आप ही चले जाएंगे तो हम जन्मों-जन्मों तक अंधकार में भटकते रहेंगे, हमारा मार्गदर्शन करने के लिए कोई भी नहीं रहेगा, प्रकाश तो विदा हो रहा है।'

तो बुद्ध ने कहा, 'तुम्हारे लिए यह अच्छा रहेगा। जब मैं नहीं रहूंगा तो तुम अपना प्रकाश स्वयं बनोगे। अकेले चलो, कोई सहारा मत खोजो, क्योंकि सहारा ही अंतिम बाधा है।'

और ऐसा ही हुआ। आनंद संबुद्ध नहीं हुआ था। चालीस वर्ष से वह बुद्ध के साथ था, वह निकटतम शिष्य था, बुद्ध की छाया की भांति था, उनके साथ चलता था, उनके साथ रहता था; उसका बुद्ध के साथ सबसे लंबा संपर्क था। चालीस वर्ष तक बुद्ध की करुणा उस पर बरसती रही थी। लेकिन कुछ भी न हुआ। आनंद सदा की भांति अज्ञानी ही रहा। और जिस दिन बुद्ध ने शरीर छोड़ा उसके दूसरे ही दिन आनंद संबुद्ध हो गया–दूसरे ही दिन।

वह आधार ही बाधा था। जब बुद्ध न रहे तो आनंद कोई आधार न खोज सका। यह कठिन है। यदि तुम किसी बुद्ध के साथ रहो और वह बुद्ध चला जाए, तो कोई भी तुम्हें सहारा नहीं दे सकता। अब कोई भी ऐसा न रहेगा जिसे तुम पकड़ सको। जिसने किसी बुद्ध को पकड़ लिया वह संसार में किसी और को न पकड़ पाएगा। यह पूरा संसार खाली होगा। एक बार तुमने किसी बुद्ध के प्रेम और करुणा को जान लिया हो तो कोई प्रेम, कोई करुणा उसकी तुलना नहीं कर सकती। एक बार तुमने उसका स्वाद ले लिया तो और कुछ भी स्वाद

लेने जैसा न रहा।

तो चालीस वर्ष में पहली बार आनंद अकेला हुआ। किसी भी सहारे को खोजने का कोई उपाय ही न रहा। उसने परम सहारे को जाना था; अब छोटे-छोटे सहारे किसी काम के न थे। दूसरे दिन ही वह संबुद्ध हो गया। वह निश्चित ही आधारहीन, शाश्वत, निश्चल अंतर-आकाश में प्रवेश कर गया होगा।

तो स्मरण रखो, कोई सहारा खोजने का प्रयास मत करो। आधारहीन हो जाओ। यदि इस विधि को करने का प्रयास कर रहे हो तो आधारहीन हो जाओ। यही कृष्णमूर्ति सिखा रहे हैं, 'आधारहीन हो जाओ, किसी गुरु को मत पकड़ो, किसी शास्त्र को मत पकड़ो। किसी भी चीज को पकड़ो ही मत।'

सब गुरु यही करते रहे हैं। हर गुरु का सारा प्रयास ही यह होता है कि पहले वह तुम्हें अपनी ओर आकर्षित करे, ताकि तुम उससे जुड़ने लगो। और जब तुम उससे जुड़ने लगते हो, जब तुम उसके निकट और घनिष्ठ होने लगते हो, तब वह जानता है कि पकड़ छुड़ानी होगी। और अब तुम किसी और को नहीं पकड़ सकते—यह बात ही खतम हो गई। तुम किसी और के पास नहीं जा सकते—यह बात असंभव हो गई। तब वह पकड़ को काट डालता है और अचानक तुम आधारहीन हो जाते हो। शुरू-शुरू में तो बड़ा दुख होगा। तुम रोओगे और चिल्लाओगे और चीखोगे, और तुम्हें लगेगा कि सब कुछ खो गया। तुम दुख की गहनतम गहराइयों में गिर जाओगे। लेकिन वहां से व्यक्ति उठता है, अकेला और आधारहीन।

'आधारहीन, शाश्वत, निश्चल आकाश में प्रविष्ट होओ।'

उस आकाश का न कोई आदि है न कोई अंत। और वह आकाश पूर्णतः शांत है, वहां कुछ भी नहीं है—कोई आवाज भी नहीं, कोई बुलबुला तक नहीं, सब कुछ निश्चल है।

वह बिंदु तुम्हारे ही भीतर है। किसी भी क्षण तुम उसमें प्रवेश कर सकते हो। यदि तुममें आधारहीन होने का साहस है तो इसी क्षण तुम उसमें प्रवेश कर सकते हो। द्वार खुला है। निमंत्रण सबके लिए है। लेकिन साहस चाहिए—अकेले होने का, रिक्त होने का, मिट जाने का और मरने का। और यदि तुम अपने भीतर आकाश में मिट जाओ तो तुम ऐसे जीवन को पा लोगे जो कभी नहीं मरता, तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे।

आज इतना ही।

80

पूर्णता एवं शून्यता का एक ही अर्थ है

प्रश्न-सार

1. *यदि भीतर शून्य है तो इसे आत्मा क्यों कहते हैं ?*
2. *बुद्ध पुरुष निर्णय कैसे लेता है ?*
3. *संत लोग शांत जगहों पर ही क्यों रहते हैं ?*
4. *आप कैसे जानते हैं कि चेतना शाश्वत है ?*
5. *मेरे बुद्धत्व से संसार में क्या फर्क पड़ेगा ?*

पहला प्रश्न :

आपने कहा कि हमारे भीतर वास्तव में कोई भी नहीं है। बस एक शून्य है, एक रिक्तता है। परंतु फिर आप इसे प्रायः आत्मा अथवा केंद्र कह कर क्यों पुकारते हैं ?

आत्मा या अनात्मा, ना-कुछ या सब कुछ, विरोधाभासी लगते हैं, पर दोनों का एक ही अर्थ है। पूर्ण और शून्य का एक ही अर्थ है। शब्दकोश में वे विपरीत हैं, पर जीवन में नहीं। इसे इस तरह समझो—यदि मैं कहूं कि मैं सबको प्रेम करता हूं या मैं कहूं कि मैं किसी को भी प्रेम नहीं करता तो इसका एक ही अर्थ होगा। यदि मैं किसी एक व्यक्ति को ही प्रेम करूं तभी अंतर पड़ेगा। यदि मैं सबको प्रेम करूं तो वह किसी को भी प्रेम न करने जैसा ही है। फिर कोई अंतर नहीं है। अंतर सदा मात्रा में होता है, सापेक्ष होता है। और ये दोनों ही दो अतियां हैं, उनमें कोई मात्रा नहीं है। पूर्ण और शून्य की कोई मात्रा नहीं होती। इसलिए तुम पूर्ण को शून्य और शून्य को पूर्ण कह सकते हो।

इसीलिए तो कुछ बुद्ध पुरुषों ने अंतर-आकाश को शून्य कहा है, अनात्मा कहा है; और कुछ ने उसे ब्रह्म कहा है, आत्मा कहा है। यह उसे अभिव्यक्त

करने के दो ढंग हैं। एक विधायक ढंग है, दूसरा नकारात्मक ढंग है। या तो तुम्हें सब सम्मिलित कर लेना है या सब हटा देना है; तुम किसी सापेक्ष रूप में उसे अभिव्यक्त नहीं कर सकते। एक आत्यंतिक अभिव्यक्ति चाहिए। दोनों विपरीत ध्रुव आत्यंतिक हैं।

लेकिन ऐसे भी प्रज्ञा पुरुष हुए हैं जो मौन ही रह गए हैं। उन्होंने कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि तुम जो भी कहो—चाहे आत्मा कहो, चाहे अनात्मा कहो—जिस क्षण तुम उसे एक नाम देते हो, एक शब्द देते हो, उस समय तुम गलती कर रहे हो क्योंकि उसमें तो दोनों ही समाहित हैं।

उदाहरण के लिए यदि तुम कहो कि 'परमात्मा जीवंत है' या 'परमात्मा जीवन है' तो उसका कोई अर्थ नहीं होगा, क्योंकि फिर मृत्यु कौन है ? उसमें सब कुछ समाहित है। उसमें मृत्यु भी उतनी ही परिपूर्ण होगी जितना कि जीवन है। अन्यथा मृत्यु किसकी होगी ? और यदि मृत्यु किसी और की है और जीवन परमात्मा का है, तो फिर तो दो परमात्मा हो गए। और फिर ऐसी-ऐसी समस्याएं खड़ी होंगी जिन्हें सुलझाया नहीं जा सकता।

परमात्मा जीवन और मृत्यु दोनों ही होना चाहिए। परमात्मा स्रष्टा और संहारक दोनों ही होना चाहिए। यदि तुम कहो कि परमात्मा स्रष्टा है, तो फिर संहारक कौन है ? यदि तुम कहो कि परमात्मा अच्छा है, तो फिर बुरा कौन है ? इसी कठिनाई के कारण ईसाइयों, पारसियों और अन्य कई धर्मों ने परमात्मा के साथ-साथ एक शैतान का निर्माण भी कर लिया है, नहीं तो बुराई किसकी होगी ? उन्होंने शैतान का निर्माण कर लिया है।

लेकिन इससे कुछ हल नहीं हुआ, बस समस्या को जरा पीछे धकेल दिया गया। क्योंकि यह भी पूछा जा सकता है, 'शैतान को किसने बनाया ?' अगर परमात्मा ने शैतान को बनाया है तो फिर उसी की जिम्मेवारी है। और शैतान यदि स्वतंत्र है, परमात्मा से उसका कुछ लेना-देना नहीं है तो फिर वह भी एक परमात्मा हो गया, परम-शक्ति बन गया। और अगर परमात्मा ने शैतान को बनाया ही नहीं है तो उसे नष्ट कैसे कर सकता है ? असंभव है फिर। दार्शनिक इस प्रश्न के कुछ उत्तर देते हैं, परंतु वे उत्तर और प्रश्न खड़े कर देते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि परमात्मा ने आदम को बनाया, और फिर वह बुरा हो गया। उसे बाहर निकाल दिया गया। उसने परमात्मा की अवज्ञा की और उसे स्वर्ग से निकाल दिया गया। यह बार-बार पूछा जाता रहा है कि आदम बुरा क्यों हो गया ? उसकी संभावना परमात्मा ने ही उसमें निर्मित की होगी; बुरा होने की, गुमराह होने की, अवज्ञा करने की संभावना उसी ने निर्मित की

होगी। यदि कोई संभावना ही नहीं थी, कोई अंतर्निहित प्रवृत्ति ही नहीं थी तो फिर आदम कैसे गुमराह हुआ ? परमात्मा ने ही वह प्रवृत्ति पैदा की होगी। और यदि बुराई की प्रवृत्ति उसमें थी तो एक बात निश्चित है कि उससे बाहर आने की, उससे संघर्ष करने की प्रवृत्ति इतनी प्रबल नहीं थी, बुराई की प्रवृत्ति अधिक प्रबल थी। किसने यह प्रबलता पैदा की ? परमात्मा के अतिरिक्त और कोई भी जिम्मेवार नहीं हो सकता।

फिर तो पूरी बात ही नासमझी की लगती है। परमात्मा आदम को बनाता है, उसमें बुराई की प्रवृत्ति पैदा करता है जिसे वह नियंत्रित नहीं कर सकता; फिर वह भटक जाता है; फिर उसे सजा मिलती है। सजा परमात्मा को मिलनी चाहिए, आदम को नहीं ! या तुम्हें यह स्वीकार करना होगा कि परमात्मा के साथ–साथ कोई दूसरी शक्ति भी है। और फिर दूसरी शक्ति परमात्मा से अधिक प्रबल होनी चाहिए, क्योंकि बुराई आदम को लुभा सकती है, और परमात्मा उसे नहीं बचा सकता ! शैतान उसे भटका सकता है, वश में कर सकता है, और परमात्मा उसकी रक्षा नहीं कर सकता ! शैतान परमात्मा से अधिक बलशाली मालूम होता है।

अमेरिका में अभी हाल ही में एक नया चर्च बना है जिसे शैतान का चर्च कहते हैं। जैसे वेटिकन में पोप है, वैसे ही उनका भी प्रमुख पादरी है। और वे कहते हैं कि इतिहास सिद्ध करता है कि शैतान ही असली परमात्मा है। और उनकी बात जंचती है। वे कहते हैं, 'तुम्हारे परमात्मा, भलाई के परमात्मा की सदा हार हुई है और शैतान सदा विजयी हुआ है। इतिहास इसे प्रमाणित करता है। तो ऐसे कमजोर परमात्मा की पूजा क्यों करते हो जो तुम्हारी रक्षा भी नहीं कर सकता ? इससे तो बेहतर है कि अधिक बलशाली परमात्मा की पूजा करो जो तुम्हें वश में कर सकता है लेकिन तुम्हारी रक्षा भी कर सकता है, क्योंकि अधिक बलशाली है।' शैतान के चर्च को मानने वालों की संख्या अब बढ़ रही है। और वे तर्कसंगत लगते हैं। इतिहास भी यही कहता है।

परमात्मा के नकारात्मक अंश के अस्वीकार के कारण यह द्वैत की समस्या खड़ी हुई है। भारत में हमने दूसरे ध्रुव का निर्माण ही नहीं किया। हम कहते हैं कि परमात्मा दोनों है—स्रष्टा भी, संहारक भी, भला भी और बुरा भी। इसे सोच पाना भी कठिन है क्योंकि जब हम कहते हैं 'परमात्मा' तो हम उसके बुरे होने की कल्पना भी नहीं कर सकते। लेकिन भारत में हमने अस्तित्व के गहनतम रहस्य में प्रवेश करने का प्रयास किया है, वह है अद्वैत। कैसे भी हो, भलाई और बुराई, जीवन और मृत्यु, विधायक और निषेधात्मक कहीं न कहीं

मिलते हैं। और वह मिलन-स्थल ही अस्तित्व है, अद्वैत है।

तुम उस मिलन-स्थल को क्या कहोगे ? या तो तुम विधायक भाषा प्रयोग करोगे या नकारात्मक, क्योंकि भाषा हमारे पास है ही नहीं। यदि तुम विधायक भाषा प्रयोग करो तो उसे आत्मा कहोगे, परमात्मा कहोगे, ब्रह्म कहोगे। और यदि नकारात्मक भाषा उपयोग करते हो तो निर्वाण, शून्य, अनात्मा कहोगे। दोनों में से कुछ भी कह सकते हो, दोनों का एक ही अर्थ है। वह दोनों है और तुम्हारी आत्मा भी दोनों है। कभी मैं उसे आत्मा कह देता हूं, कभी शून्य। यदि विधायक तुम्हें अच्छा लगता है तो आत्मा कहो। यदि नकार अच्छा लगता है तो अनात्मा कह लो। तुम पर निर्भर करता है। जो भी तुम्हें अच्छा लगे, जो भी तुम्हें परिपक्वता दे, तुम्हारा विकास करे, उसी नाम से पुकारो।

दो तरह के लोग हैं : एक वे जो नकारात्मक के साथ किसी तरह की निकटता अनुभव नहीं कर सकते, और दूसरे वे जो विधायक के साथ कोई लगाव नहीं रख सकते। बुद्ध निषेधात्मक प्रकृति के हैं, उन्हें विधायक के साथ कोई तालमेल अनुभव नहीं होता, निषेधात्मक ही उन्हें जंचता है। वह निषेधात्मक भाषा का उपयोग करते हैं। शंकर का निषेधात्मक से कोई लगाव नहीं बनता। वह परम सत्य की चर्चा विधायक भाषा में करते हैं। दोनों एक ही बात कहते हैं। बुद्ध उसे शून्य कहते हैं और शंकर उसे ब्रह्म कहते हैं। लेकिन वे दोनों एक ही बात कह रहे हैं।

शंकर के सबसे बड़े आलोचक रामानुज ने कहा है कि शंकर एक प्रच्छन्न बौद्ध हैं। वे हिंदू नहीं हैं, बस दिखाई पड़ते हैं क्योंकि विधायक भाषा का उपयोग करते हैं। जहां बुद्ध कहते हैं शून्य, वे कहते हैं ब्रह्म, बाकी सब वही है। रामानुज ने कहा है कि शंकर ने हिंदू धर्म को बड़ी हानि पहुंचायी है, क्योंकि जरा सी तरकीब से वह बौद्ध धर्म को पीछे के दरवाजे से अंदर ले आए हैं। बस जहां भी निषेधात्मक भाषा का प्रयोग हुआ है वहां उन्होंने विधायक भाषा उपयोग कर ली है। रामानुज ने उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध कहा है। और एक तरह से यह सही भी है, क्योंकि अंतर तो कुछ भी नहीं है, संदेश एक ही है।

तो यह तुम पर निर्भर करता है। यदि तुम्हें मौन के साथ, शून्य के साथ निकटता अनुभव होती है तो आत्मा को शून्य कह लो; और अगर उससे सामीप्य नहीं बनता, भय लगता है, तो शून्य को आत्मा कह लो। लेकिन तब तुम्हारी विधियां भिन्न होंगी। यदि तुम्हें रिक्तता से, एकांत से, शून्य से भय लगता है तो जिन चार विधियों की बात मैंने कल रात की, वे तुम्हारे लिए बहुत उपयोगी न होंगी, उन्हें भूल जाओ। और भी विधियां हैं जिनकी मैंने चर्चा की है। फिर

तुम विधायक विधियों का उपयोग करो।

लेकिन यदि तुम तैयार हो और तुममें साहस है आधारहीन होने का, शून्य में अकेले प्रवेश करने का, बिलकुल मिट जाने का, तो ये चार विधियां तुम्हारे लिए बहुत सहयोगी होंगी। यह तुम पर निर्भर करता है।

दूसरा प्रश्न :

यदि एक बुद्ध पुरुष के भीतर परिपूर्ण शून्यता ही है तो ऐसा कैसे प्रतीत होता है कि वह निर्णय ले रहा है, चुनाव कर रहा है, पसंद-नापसंद का भेद कर रहा है, हां या न कह रहा है ?

यह विरोधाभासी लगेगा। एक बुद्ध पुरुष यदि मात्र शून्यता ही है तो बात हमारे लिए विरोधाभासी हो जाती है। फिर वह हां या न कैसे कहता है ? फिर वह चुनाव कैसे करता है ? फिर वह किसी चीज को पसंद और किसी चीज को नापसंद कैसे करता है ? वह बोलता कैसे है ? वह चलता कैसे है ? वह कैसे जीवित है ?

हमारे लिए यह कठिनाई है; लेकिन बुद्ध पुरुष के लिए कोई कठिनाई नहीं है, सब कुछ शून्यता से होता है, बुद्ध पुरुष चुनाव नहीं करता। हमें यह चुनाव लगता है, लेकिन बुद्ध पुरुष बस सीधे एक दिशा में चलता है। वह दिशा शून्य से ही उठती है।

यह ऐसे ही है जैसे तुम टहल रहे हो, और अचानक तुम्हारे सामने एक कार आ जाती है और तुम्हें लगता है कि दुर्घटना हो जाएगी। तुम फिर निर्णय नहीं लेते कि क्या करना है। क्या तुम निर्णय लेते हो ? निर्णय तुम कैसे ले सकते हो ? तुम्हारे पास समय ही नहीं है। निर्णय लेने में समय लगता है। तुम्हें सोच-विचार करना पड़ेगा, नापना-तौलना पड़ेगा, कि इस तरफ कूदना है या उस तरफ। नहीं, तुम निर्णय नहीं लेते, बस छलांग लगा देते हो। यह छलांग कहां से आती है ? तुम्हारे और छलांग के बीच कोई विचार प्रक्रिया नहीं है। बस अचानक तुम्हें पता चलता है कि कार तुम्हारे सामने है और तुम छलांग लगा देते हो। छलांग पहले लगती है सोचते तुम बाद में हो, उस क्षण तुम उसी शून्यता से कूद पड़ते हो। तुम्हारा पूरा अस्तित्व बिना निर्णय के छलांग लगा देता है।

याद रखो, निर्णय सदा अंश का ही हो सकता है, पूर्ण का नहीं। निर्णय का अर्थ है कि कोई द्वंद्व था, तुम्हारा एक हिस्सा कह रहा था कि 'ऐसा करो'

और एक हिस्सा कह रहा था कि 'ऐसा मत करो' इसीलिए निर्णय की जरूरत पड़ी। तुम्हें निर्णय करना पड़ा, तर्क-वितर्क करना पड़ा और एक हिस्से को दबाना पड़ा। निर्णय का यही अर्थ होता है। जब तुम्हारी पूर्णता प्रकट होती है तो निर्णय की जरूरत नहीं होती, कोई और विकल्प ही नहीं होता।

एक बुद्ध पुरुष स्वयं में पूर्ण होता है, पूर्णतया शून्य होता है। तो जो भी होता है उस पूर्णता से आता है, किसी निर्णय से नहीं। यदि वह हां कहता है तो वह कोई उसका चुनाव नहीं है—उसके सामने 'न' कहने का कोई विकल्प ही नहीं था। 'हां' उसके पूरे अस्तित्व का प्रतिसंवेदन है। यदि वह 'न' कहता है तो 'न' उसके पूरे अस्तित्व का प्रतिसंवेदन है। यही कारण है कि बुद्ध पुरुष कभी पश्चात्ताप नहीं कर सकता।

तुम सदा पश्चात्ताप करोगे। तुम जो भी करो, उससे कोई अंतर नहीं पड़ता, तुम जो भी करो, पछताओगे। तुम किसी स्त्री से विवाह करना चाहते हो, यदि 'हां' का निर्णय लोगे तो पछताओगे और 'न' का निर्णय लोगे तो भी पछताओगे। क्योंकि तुम जो भी निर्णय लेते हो वह आंशिक निर्णय है, दूसरा हिस्सा सदा ही उसके विरुद्ध रहता है। यदि तुम निर्णय लो कि 'हां', मैं इस स्त्री से विवाह करूंगा।' तो तुम्हारा एक हिस्सा कहेगा, 'अरे ऐसा मत करो, पछताओगे।' तुम पूरे नहीं हो।

जब कठिनाइयां आती हैं ... और कठिनाइयां तो आएंगी ही क्योंकि दो बिलकुल भिन्न लोग एक साथ रहने लगे। झगड़े होंगे, मालकियत का संघर्ष चलेगा, राजनीति चलेगी, तब तुम्हारा दूसरा हिस्सा कहेगा, 'देखा ! मैंने क्या कहा था ? मैं बार-बार कह रहा था कि ऐसा मत करो और तुम करके बैठ गए।' और ऐसा नहीं है कि अगर तुमने दूसरे हिस्से की मानी होती तो तुम न पछताते। नहीं ! पश्चात्ताप तो होता ही, क्योंकि तब तुमने किसी और स्त्री से विवाह किया होता और उससे झगड़ा-फसाद हुआ होता। तब दूसरा हिस्सा कहता, 'मैं तो पहले ही कह रहा था कि पहले वाली स्त्री से विवाह कर लो। तुम मौका चूक गए। एक स्वर्ग हाथ से निकल गया और नर्क से तुमने शादी कर ली।'

चाहे कुछ भी हो, तुम पछताओगे, क्योंकि तुम्हारा निर्णय कभी पूर्ण नहीं होता। सदा एक अंश के विपरीत निर्णय होता है, वह अंश बदला लेगा। तो तुम चाहे जो भी निर्णय लो, अच्छा करो तो पछताओगे और बुरा करो तो पछताओगे। अगर तुम अच्छा करोगे तो तुम्हारे मन का एक हिस्सा सोचेगा कि एक मौका हाथ से निकल गया। बुरा करोगे तो ग्लानि से भर जाओगे।

बुद्ध पुरुष कभी नहीं पछताता। सच में तो वह कभी पीछे मुड़ कर देखता

ही नहीं। पीछे देखने को कुछ और है ही नहीं। जो भी होता है उसकी समग्रता से होता है।

तो पहली बात समझने की यह है कि वह कभी चुनाव नहीं करता। चुनाव उसके शून्य में घटता है; वह कभी निर्णय नहीं करता। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह अनिर्णय में होता है। वह पूर्णतः निश्चित होता है, लेकिन कभी निर्णय नहीं करता। मुझे समझने की कोशिश करो। निर्णय उसके शून्य में घटित होता है। यही उसके पूरे प्राणों की आवाज है। वहां और कोई स्वर नहीं होता।

यदि तुम कहीं जा रहे हो और तुम्हारे रास्ते में सांप आ जाता है तो तुम अचानक छलांग लगाकर हट जाते हो, बस इतना ही। तुम कोई निर्णय नहीं लेते। तुम किसी गुरु से सलाह नहीं लेते। तुम लाइब्रेरी में किताबें देखने नहीं जाते कि जब रास्ते में कोई सांप आ जाए तो क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए, क्या विधि है। तुम बस छलांग लगा देते हो। और याद रखो कि वह छलांग तुम्हारे पूरे अस्तित्व से आ रही है, यह कोई निर्णय नहीं है। तुम्हारे समग्र अस्तित्व ने ऐसा किया है। बस इतना ही है, इससे रत्तीभर भी अधिक नहीं है।

तुम्हें ऐसा लगता है कि बुद्ध पुरुष चुनाव कर रहा है, निर्णय ले रहा है, क्योंकि तुम हर क्षण यही कर रहे हो। और जिस बात का तुम्हें पता ही न हो वह तुम समझ नहीं सकते। एक बुद्ध पुरुष बिना निर्णय के, बिना प्रयास के, बिना चुनाव के सब कुछ करता है, वह चुनाव-रहित जीता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम उसे भोजन और पत्थर दो तो वह पत्थर खाने लगेगा। वह भोजन ही खाएगा। तुम्हें ऐसा लगेगा जैसे उसने निर्णय लिया है कि वह पत्थर नहीं खाएगा, परंतु उसने कोई निर्णय नहीं लिया है। यह तो मूर्खता की बात है। उसे ऐसा भाव ही नहीं हुआ। वह भोजन ले लेता है। यह कोई निर्णय नहीं है। कोई मूढ़ ही निर्णय करेगा कि भोजन खाना है या पत्थर। मूढ़-मन निर्णय करते हैं; बुद्ध-मन बस कृत्य करते हैं। और जो मन जितना ही मूढ़ होगा उसे निर्णय करने में उतनी ही मुश्किल होगी। चिंता का यही अर्थ है।

चिंता क्या है ? दो विकल्प हैं और दोनों के बीच चुनाव का कोई उपाय नहीं है, और मन कभी इधर जाता है, कभी उधर जाता है—यही चिंता है। चिंता का अर्थ है कि तुम्हें चुनाव करना है और निर्णय लेना है, पर ले नहीं पा रहे। तो तुम चिंतित हो, परेशान हो, दुष्चक्र में पड़े हो। बुद्ध पुरुष कभी चिंतित नहीं होता, वह अखंड होता है।

इसे समझने की कोशिश करो। वह बंटा हुआ नहीं है। वह विभाजित नहीं है, वह खंडित व्यक्तित्व नहीं है। लेकिन तुम तो एक भीड़ हो; न केवल दो,

बल्कि बहुत सारे लोग तुममें रह रहे हैं, बहुत सारी आवाजें हैं, पूरी एक भीड़ है। बुद्ध पुरुष एक अखंड इकाई है, वह एक है, यूनिवर्स है। तुम अनेक हो, मल्टीवर्स हो।

दूसरी बात समझने की यह है कि तुम जो भी करते हो उसे करने से पहले तुम सोचते-विचारते हो। बुद्ध पुरुष जो भी करता है उसके लिए कोई सोच-विचार नहीं करता। बस वह सहज करता है।

याद रखो, सोचने की जरूरत इसीलिए पड़ती है क्योंकि तुम्हारे पास देखने के लिए आंखें नहीं हैं। सोचना एक विकल्प है। यह ऐसे ही है जैसे कोई अंधा आदमी लकड़ी से अपना रास्ता टटोल रहा हो अंधा आदमी आंख वालों से पूछेगा कि वे कैसे अपना रास्ता टटोलते हैं, कैसी लकड़ियों का उपयोग करते हैं। और आंख वाले तो हंसने लगेंगे, वे कहेंगे कि उन्हें लकड़ियों की जरूरत ही नहीं है, उनके पास आंखें हैं। उन्हें पता है कि दरवाजा कहां है, उसके लिए टटोलने की जरूरत ही नहीं है। और वे कभी इस बारे में सोचते ही नहीं कि दरवाजा कहां है। उन्हें दिखाई पड़ता है और वे दरवाजे से निकल जाते हैं।

लेकिन अंधे को तो भरोसा ही नहीं आ सकता कि दरवाजों में से सीधे-सीधे भी निकला जा सकता है। पहले तुम्हें सोचना पड़ेगा कि दरवाजा कहां है। पहले तुम्हें पता करना पड़ेगा। कोई हो तो तुम्हें उससे पूछना पड़ेगा कि दरवाजा कहां है। और तुम्हें दिशा भी बता दी जाए तो भी अपनी लकड़ी से टटोलना पड़ेगा, और फिर भी कई गड्ढे आ सकते हैं। लेकिन अगर तुम्हारे पास आंखें हैं तो बाहर जाने के लिए बस तुम्हें देखना पड़ता है—तुम सोचते नहीं कि दरवाजा कहां है, तुम निर्णय नहीं लेते। तुम बस देखते हो कि वह रहा दरवाजा और उसमें से निकल जाते हो। तुम यह नहीं सोचते कि यह दरवाजा है। तुम बस उसका उपयोग करते हो।

अज्ञानी मन और ज्ञानी मन के साथ भी यही स्थिति है। ज्ञानी मन बस देखता है। सब कुछ स्पष्ट है। उसके पास एक स्पष्टता है। उसका पूरा अस्तित्व ही प्रकाश है। वह बस देखता है और कृत्य करता है, कभी सोचता नहीं। तुम्हें सोचना पड़ता है क्योंकि तुम्हारे पास आंखें नहीं हैं। केवल अंधे सोचते हैं। उन्हें सोचना पड़ता है क्योंकि उनके पास आंखें नहीं हैं। उन्हें वैकल्पिक आंखों की जरूरत है, जो सोचने से आती हैं।

मैं कभी नहीं कहता कि बुद्ध या महावीर या जीसस महान विचारक हैं। वह कहना नासमझी होगी। वे बिलकुल भी विचारक नहीं हैं। वे द्रष्टा हैं, विचारक नहीं। उनके पास आंखें हैं, वे देख सकते हैं और उस देखने से कृत्य कर सकते

हैं। एक बुद्ध से जो निकलता है वह उनके शून्य से निकलता है, विचारों भरे मन से नहीं। वह शून्य आकाश से निकलता है। वह शून्य का ही प्रतिसंवेदन है।

हमारे लिए यह कठिन है क्योंकि हमें तो ऐसा कुछ भी नहीं होता। हमें सोचना पड़ता है। यदि हमसे कोई प्रश्न पूछे तो हमें उसके बारे में सोचना पड़ता है, और फिर भी तुम्हें पक्का नहीं होता कि तुम जो कह रहे हो वही उत्तर है। एक बुद्ध सीधे उत्तर देता है; वह सोचता नहीं। तुम उससे प्रश्न पूछते हो, और उसका शून्य प्रतिसंवेदित होता है। वह प्रतिसंवेदन कोई सोच-विचार नहीं है, वह एक समग्र प्रतिसंवेदन है। उसका पूरा अस्तित्व उसमें होता है।

इसीलिए तो तुम किसी बुद्ध से संगीत की, कंसिस्टेंसी की मांग नहीं कर सकते। विचारक कंसिस्टेंट हो सकते हैं—विचारक को कंसिस्टेंट होना ही पड़ता है—लेकिन बुद्ध पुरुष कभी कंसिस्टेंट नहीं हो सकता, क्योंकि हर क्षण परिस्थिति बदल जाती है। और हर क्षण उसके शून्य से ही कुछ घटित होता है। उसे यह भी पता नहीं होता कि कल उसने क्या कहा था। हर प्रश्न एक नया उत्तर पैदा कर देता है। यह प्रश्नकर्ता पर निर्भर करता है।

बुद्ध एक गांव में आते हैं। एक आदमी पूछता है, 'क्या परमात्मा है ?' बुद्ध कहते हैं, 'नहीं।' दोपहर को दूसरा आदमी आता है और पूछता है, 'क्या परमात्मा है ?' बुद्ध कहते हैं, 'हां।' फिर शाम को एक तीसरा आदमी पूछता है, 'क्या परमात्मा है ?' और बुद्ध मौन रहते हैं। एक ही दिन में—सुबह में नहीं, दोपहर को हां, शाम को मौन—न हां, न ना।

बुद्ध का शिष्य, आनंद, बहुत परेशान हुआ। उसने तीनों उत्तर सुने थे। रात जब सब सो गए तो उसने बुद्ध से पूछा, 'क्या मैं आपसे एक प्रश्न पूछ सकता हूं ? एक ही दिन में आपने एक ही प्रश्न का तीन तरह से उत्तर दिया, और वह भी न केवल अलग-अलग ढंग से बल्कि बिलकुल विपरीत। मेरा मन हैरान है। यदि आप मुझे उत्तर नहीं देंगे तो मैं सो नहीं पाऊंगा। आपका अभिप्राय क्या है ? सुबह आप हां कहते हैं, दोपहर को नहीं कहते हैं, शाम को मौन रह जाते हैं। और प्रश्न एक ही था।'

बुद्ध ने कहा, 'लेकिन प्रश्नकर्ता तो अलग थे। और अलग-अलग प्रश्नकर्ता एक ही प्रश्न कैसे पूछ सकते हैं ?' यह सचमुच बड़ी गहरी और सुंदर बात है। उन्होंने कहा, 'अलग-अलग प्रश्नकर्ता एक ही प्रश्न कैसे पूछ सकते हैं ? प्रश्न एक जीवंत अस्तित्व से उठता है, वह उसका विकास है। यदि अस्तित्व ही भिन्न हो तो प्रश्न वही कैसे हो सकता है ? सुबह जब मैंने कहा हां तो

जो आदमी पूछ रहा था वह नास्तिक था। वह मुझसे पुष्टि करवाने आया था कि परमात्मा नहीं है। और मैं उसकी नास्तिकता की पुष्टि कर सकता था, क्योंकि वह उसके कारण ही कष्ट में था। और मैं उसके कष्ट का हिस्सा नहीं बन सकता था, मैं उसकी मदद करना चाहता था। इसीलिए मैंने कहा कि हां, परमात्मा है। इस तरह मैंने उसकी तथाकथित नास्तिकता को नष्ट करने का प्रयास किया। दोपहर को जो दूसरा आदमी आया, वह आस्तिक था और अपनी आस्तिकता के कारण कष्ट में था। मैं उसे हां नहीं कह सकता था। क्योंकि वह उसके लिए प्रमाण बन जाता–उसी के लिए वह आया था। तब वह जाता और कहता कि हां, जो मैं कहता था वही ठीक था। बुद्ध भी ऐसा ही कहते हैं। और वह आदमी गलत था। मैं किसी भ्रांत आदमी की भ्रांति में सहयोग नहीं दे सकता। तो मुझे उसके मन को तोड़ने और नष्ट करने के लिए न कहना पड़ा। और शाम को जो आदमी आया था वह दोनों में से कुछ भी नहीं था। वह सीधा-सादा आदमी था और किसी बात के लिए मेरा समर्थन लेने नहीं आया था। उसकी कोई विचारधारा नहीं थी; वह वास्तव में धार्मिक आदमी था। तो मुझे मौन रहना पड़ा। मैंने उसे कहा, इस प्रश्न के बारे में मौन रह जाओ, इसके बारे में सोचो मत। यदि मैंने हां कहा होता तो गलत होता! क्योंकि वह कोई धारणा खोजने नहीं आया था। यदि मैंने न कहा होता तो गलत होता, क्योंकि वह कोई अपनी नास्तिकता मनवाने नहीं आया था। वह विचारों में, धारणाओं में, व्याख्याओं में उत्सुक नहीं था; वह वास्तव में एक धार्मिक आदमी था। उसके सामने मैं एक शब्द भी कैसे बोल सकता था ? मुझे मौन रहना पड़ा। और उसने मेरे मौन को समझा। जब वह वापस गया तो उसकी धार्मिकता और गहरी हो चुकी थी।'

बुद्ध ने कहा, 'तीन आदमी एक ही बात नहीं पूछ सकते। उनके शब्द वही हो सकते हैं, यह दूसरी बात है। प्रश्न यही थे, क्या परमात्मा है ? उनकी संरचना एक ही थी। लेकिन जिस अस्तित्व से प्रश्न उठ रहा था वह बिलकुल अलग था। तो उनके अलग-अलग मतलब थे; उनके मूल्य अलग थे; शब्दों के साथ उनके अर्थ अलग थे।'

मुझे याद आता है, एक शाम मुल्ला नसरुद्दीन अपने घर लौटा। सारा दिन वह एक फुटबाल मैच में लगा रहा था। वह फुटबाल का बड़ा शौकीन था। शाम जब वह घर में घुसा, उसकी पत्नी अखबार पढ़ रही थी। वह बोली, 'देखो नसरुद्दीन, तुम्हारे लिए एक खबर है। इसमें लिखा है कि एक आदमी ने फुटबाल मैच का सीजन टिकट खरीदने के लिए अपनी पत्नी बेच डाली। तुम भी फुटबाल के बड़े शौकीन हो, पर मैं यह सोच भी नहीं सकती कि तुम भी ऐसा कर सकते

हो, या कि कर सकते हो ? क्या तुम भी मुझे फुटबाल मैच के एक सीजन टिकट के बदले में बेच सकते थे ?'

नसरुद्दीन ने गंभीरता से सोचा और फिर बोला, 'निश्चित ही मैं ऐसा न करता, क्योंकि यह तो हद हो गई, यह तो अपराध है। सीजन तो आधा समाप्त भी हो चुका।'

हर मन के अपने स्रोत हैं। हो सकता है तुम उन्हीं शब्दों का प्रयोग करो, पर तुम भिन्न हो इसलिए उनके अर्थ भी भिन्न होंगे।

फिर बुद्ध ने एक और बात कही और वह और भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने कहा, 'आनंद, तू क्यों परेशान है ? तेरा तो कोई लेना-देना ही नहीं था। तुझे तो सुनना ही नहीं चाहिए क्योंकि एक भी उत्तर तुझे नहीं दिया गया था। तुझे तो निष्पक्ष बने रहना चाहिए, नहीं तो तू पागल हो जाएगा। मेरे साथ मत घूम क्योंकि मैं तो बहुत तरह के लोगों से मिलूंगा। और जो भी मैं कहता हूं अगर तू वह सब सुनता है तो तू पागल हो जाएगा। तू मुझे छोड़ दे। या फिर याद रख कि मुझे तभी सुन जब मैं तुझसे कुछ कहूं, अन्यथा कुछ मत सुन। जो मैं कह रहा हूं उससे तेरा कोई मतलब नहीं है। न यह तुझे कहा गया था, न यह तेरा प्रश्न था। तो तू क्यों चिंता करता है ? तेरा कोई संबंध ही न था। किसी ने पूछा, किसी और ने उत्तर दे दिया। तू बेकार में इसकी चिंता क्यों करता है ? यदि तेरे पास भी वही प्रश्न है तो तू पूछ और मैं उत्तर दे दूंगा। लेकिन याद रख, मेरे उत्तर प्रश्नों के नहीं, प्रश्नकर्ताओं के लिए होते हैं। मैं प्रतिसंवेदित होता हूं। मैं उस व्यक्ति को देखता हूं, उसके पार देखता हूं, वह पारदर्शी हो जाता है, और वही मेरा प्रतिसंवेदन है। प्रश्न महत्त्वपूर्ण नहीं है; प्रश्नकर्ता ही महत्त्वपूर्ण है।'

तुम किसी बुद्ध पुरुष से संगति की मांग नहीं कर सकते। केवल अज्ञानी लोग ही संगत हो सकते हैं, क्योंकि उन्हें देखना नहीं होता, वे बस कुछ धारणाओं का पालन करते रहते हैं। वे मृत धारणाओं को एक तरह से ढोते रहते हैं। सारा जीवन वे उसे ढोते रहेंगे और उसके प्रति संगत बने रहेंगे। वे मूर्ख हैं इसीलिए वे संगत रह सकते हैं। वे जीवित नहीं हैं, मुर्दा हैं। जीवंतता कभी एक जैसी नहीं हो सकती। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह गलत है, जीवंतता में भी एक संगति होती है, परंतु बहुत गहरे में, सतह पर नहीं।

बुद्ध तीनों उत्तरों में संगत हैं, लेकिन उनकी संगति उत्तरों में नहीं है। उनकी संगति सहायता के प्रयास में है, वह पहले आदमी की भी सहायता करना चाहते थे, दूसरे आदमी की भी सहायता करना चाहते थे और तीसरे आदमी की भी

सहायता करना चाहते थे। तीनों के लिए ही करुणा थी, प्रेम था। वह उनकी सहायता करना चाहते थे, यह उनकी संगति थी। लेकिन यह बड़ी गहन धारा है। उनके शब्द भिन्न हैं, उनके उत्तर भिन्न हैं, पर उनकी करुणा वही है।

तो जब एक बुद्ध पुरुष बोलता है, उत्तर देता है, तो वह उत्तर उसके शून्य का, उसके अस्तित्व का समग्र प्रतिसंवेदन होता है। वह तुम्हें प्रतिध्वनित करता है, तुम्हें प्रतिबिंबित करता है, वह एक दर्पण है। उसका अपना कोई चेहरा नहीं है। तुम्हारा चेहरा उसके हृदय में प्रतिबिंबित हो जाता है।

तो अगर कोई मूर्ख बुद्ध से मिलने आता है तो वह मूर्ख से मिलेगा–बुद्ध तो दर्पण मात्र हैं–और वह आदमी जाकर अफवाह फैला देगा कि बुद्ध तो मूर्ख हैं। उसने स्वयं को बुद्ध में देख लिया। यदि कोई संवेदनशील, समझदार, परिपक्व, प्रौढ़ व्यक्ति आता है तो वह बुद्ध में कुछ और देख लेगा–वह अपना चेहरा देखेगा। और कोई उपाय भी नहीं है। जो लोग पूर्णतः शून्य हैं उनमें तुम दर्पण देख लेते हो। फिर तुम जो भी साथ ले जाओ वह तुम्हारी ही व्याख्या है।

पुराने शास्त्रों में कहा गया है कि जब तुम किसी बुद्ध पुरुष के पास जाओ तो बिलकुल मौन रहो। सोचो मत, वरना तुम उससे मिलने का अवसर चूक जाओगे। बस मौन रहो। सोचो मत। उसे पचाओ। लेकिन उसे मस्तिष्क से समझने की कोशिश मत करो। पचाओ उसे, पीओ उसे, अपने पूरे अस्तित्व को उसके प्रति खुलने दो, उसे अपने भीतर जाने दो, लेकिन उसके बारे में सोचो मत, क्योंकि यदि तुम सोचते हो तो तुम्हारा मन ही प्रतिध्वनित होगा। अपने पूरे अस्तित्व को उसकी उपस्थिति में स्नान करने दो। केवल तभी तुम्हें उसकी झलक मिलेगी कि किस तरह के अस्तित्व, किस तरह की घटना के संपर्क में तुम आ गए हो।

बुद्ध के पास बहुत से लोग आए और गए। वे अपनी धारणाएं साथ लेकर गए और जाकर उन्होंने वही धारणाएं फैलाईं। बहुत ही थोड़े से लोग उन्हें समझ पाए। और ऐसा ही होना भी चाहिए, क्योंकि तुम अपने अनुसार ही समझ सकते हो। यदि तुम मिटने और बदलने और रूपांतरित होने को राजी हो, केवल तभी तुम समझ सकते हो कि एक बुद्ध पुरुष क्या है, एक जाग्रत चेतना क्या है।

तीसरा प्रश्न :

आपने कहा कि शोरगुल और व्यवधान बाहर संसार में नहीं हैं, बल्कि हमारे अपने ही अहंकार और मन के कारण हैं। लेकिन संत और रहस्यदर्शी हमेशा शांत और निर्जन स्थानों पर ही क्यों रहते हैं ?

क्योंकि वे अभी तक संत एवं रहस्यदर्शी नहीं हैं। वे अभी भी खोज रहे हैं, श्रम कर रहे हैं। वे साधक हैं, सिद्ध नहीं। वे अभी पहुंचे नहीं हैं। शोरगुल उन्हें व्यवधान देगा, भीड़ उन्हें व्यवधान देगी। भीड़ उन्हें वापस अपने तल पर खींचेगी। वे अभी भी कमजोर हैं, उन्हें सुरक्षा चाहिए। उनमें अभी आत्म-विश्वास नहीं है। उन्हें लोभ पकड़ सकता है। उन्हें एकांत निर्जन में अपनी रक्षा करनी पड़ती है, जहां वे विकसित और मजबूत हो सकें। जब वे मजबूत हो जाएंगे तो कोई समस्या न रहेगी।

महावीर जंगलों में चले गए। बारह वर्ष तक वह अकेले और मौन रहे, न किसी से बात की न गांवों-शहरों में गए। फिर वह संबुद्ध हुए। तब वह संसार में वापस आ गए। बुद्ध छह वर्ष तक बिलकुल मौन में रहे। फिर वह संसार में आ गए। जीसस, या मोहम्मद, या कोई भी, जब वे साधन में होते हैं तो उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता होती है, जब वे सिद्ध हो जाते हैं तो कोई समस्या नहीं रहती।

तो यदि तुम किसी संत को भीड़ में जाने से भयभीत पाओ तो समझना कि अभी वह बच्चा ही है, अभी वह बढ़ रहा है। वरना कोई संत भीड़ में जाने से क्यों डरेगा ? भीड़-भाड़ से, शोरगुल से, संसार से, सांसारिक चीजों से उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता। उसके चारों ओर का पागलपन उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसको कुछ छू नहीं सकता। वह अपने ढंग से जी सकता है; उसका शून्य जहां जीना चाहे, वहीं जी सकता है।

लेकिन प्रारंभ में अकेले होना, सुंदर प्राकृतिक वातावरण में होना बेहतर है। तो ऐसा मत सोचो कि तुम शोरगुल वाली बंबई में रहते हो इसलिए तुम संत हो, या प्रौढ़ हो गए हो और सिद्ध हो गए हो। यदि तुम विकसित होना चाहते हो तो तुम्हें भी कभी-कभी कुछ समय के लिए एकांत में जाना पड़ेगा। भीड़ से बाहर, संसार की चिंताओं, संसार के संबंधों, संसार की चीजों से परे-किसी ऐसे स्थान पर जहां तुम अकेले हो सको और दूसरे तुम्हें परेशान न कर सकें।

अभी तो तुम्हें परेशान किया जा सकता है, पर एक बार तुममें बल आ जाए, एक बार तुम्हें कोई आंतरिक शक्ति मिल जाए, एक बार तुम सुस्पष्ट हो जाओ

और तुम्हें पता लग जाए कि अब कोई तुम्हारे आंतरिक केंद्र को नहीं हिला सकता तो तुम कहीं भी जा सकते हो। तब पूरा संसार एकांत है, तब जहां भी तुम जाओ जंगल ही है। तब मौन का आकाश तुम्हारे साथ चलता है क्योंकि तुम उसके रचयिता हो। तब अपने चारों ओर तुम एक आंतरिक मौन निर्मित कर लेते हो और जहां भी तुम जाते हो, तुम मौन में ही होते हो। कोई उस मौन में प्रवेश नहीं कर सकता। कोई शोर उसमें व्यवधान नहीं डाल सकता।

लेकिन जब तक तुम केंद्रित नहीं हुए हो तब तक यह मत मानो कि तुम अशांत नहीं होओगे। चाहे तुम्हें पता हो या न पता हो, तुम अशांत तो हो ही, असल में तुम इतने अशांत हो कि तुम्हें पता भी नहीं लग सकता। तुम व्यवधान के आदी हो गए हो। नस-नस अशांति से भरी है, तुम लगातार अशांत रहते हो। अभी तुम्हें कोई परेशानी नहीं हो रही है, क्योंकि परेशानी को अनुभव करने के लिए भी कभी-कभी परेशान न होने की जरूरत होती है। केवल तभी तुलना में तुम देख सकते हो। तुम सतत ही अशांत हो। पर तुम इसके आदी हो गए हो। तुम सोचते हो कि जीवन ऐसा ही है।

अच्छा होगा अगर कभी-कभी तुम हिमालय चले जाओ। किसी सुदूर गांव में, वन में जाकर कुछ दिन मौन रहना अच्छा रहेगा, जैसे कि पूरी मनुष्यता समाप्त हो गई हो। फिर बंबई वापस लौट आओ। फिर तुम्हें पता लगेगा कि तुम कितने व्यवधान में जी रहे थे। अचानक तुम अशांत हो जाओगे। अब तुम्हारे पास विपरीत अनुभव है।

तो साधकों के लिए एकांत अच्छा है; सिद्धों के लिए व्यर्थ है। और दो तरह के गलत लोग होते हैं। पहले तरह के लोगों को अगर कहो कि वे ही अशांत हैं, परिस्थिति से कोई अंतर नहीं पड़ता, तो वे मौन का स्वाद लेने कभी एकांत में नहीं जाएंगे। फिर वे यहीं रहेंगे और कहेंगे कि 'हमें तो कुछ अशांत नहीं करता। वास्तव में परिस्थिति से कोई अंतर नहीं पड़ता। तो हम यहीं रहेंगे।' और वे हैं तो अशांत, लेकिन उनका सिद्धांत एक बौद्धिक व्याख्या बन जाएगा। फिर दूसरे लोग हैं दूसरी तरह के गलत लोग, जिन्हें तुम मौन में, एकांत में जाने को कहो जिससे कि आगे बढ़ने में सहायता मिले, लेकिन फिर वे कभी वापस ही नहीं लौटेंगे। फिर वह एक नशा बन जाएगा और वे हमेशा के लिए कमजोर रह जाएंगे, वे हमेशा संसार में वापस आने से डरेंगे। फिर उनका एकांत कोई बहुत सहयोगी नहीं हुआ; बल्कि एक बाधा बन गया। इससे वे अधिक मजबूत नहीं हुए, और कमजोर हो गए। अब वे संसार में नहीं जा सकते।

ये दोनों ही गलत हैं। तीसरी तरह के होना है, जो कि सम्यक है। पहले

ठीक से जान लो कि तुम परिस्थिति के कारण अशांत हो; तो कभी-कभी उससे बाहर निकलने की चेष्टा करो, प्रयास करो। फिर जब तुम उससे बाहर हो जाओ तो जो भी मौन तुम्हें उपलब्ध हो उसे अपनी परिस्थिति में लौटा लाओ और उसे बचाए रखो। यदि तुम उस परिस्थिति में भी उसे बचा सको, केवल तभी तुम्हारा सिद्धांत तुम्हारा अनुभव बना। तब तुम जानते हो कि कुछ भी तुम्हें परेशान नहीं कर सकता। तब तुम जानते हो कि अंततः तुम ही अशांत या शांत होते हो। लेकिन इसे एक अनुभव बनाओ, सिद्धांत की तरह यह व्यर्थ है।

चौथा प्रश्न :

इस पृथ्वी पर ब्रह्मांडीय चेतना को जान लेना और शरीर के पार चले जाना और बात है, लेकिन ज्ञानीजन यह कैसे जानते हैं कि यह चेतना शाश्वत है और शरीर की मृत्यु होने के पश्चात भी रहेगी ?

पहली बात तो यह है कि वे इसकी चिंता ही नहीं करते। उन्हें इसकी चिंता नहीं होती कि यह चेतना रहेगी या नहीं। तुम ही चिंता करते हो। वे तो अगले क्षण की भी नहीं सोचते। अगला जन्म तो बिलकुल ही असंगत है; अगला क्षण भी चिंता का विषय नहीं है। तुम्हीं भविष्य की चिंता करते हो। क्यों ? क्योंकि तुम्हारा वर्तमान रिक्त है, तुम्हारा वर्तमान कुछ भी नहीं है, सड़ा-गला है, इतनी पीड़ा है कि तुम उसे तभी झेल सकते हो जब तुम भविष्य की और स्वर्ग की ओर आगे के जीवन की सोचते रहो। अभी तो कोई जीवन नहीं है, इसलिए तुम अपने मन को भविष्य में लगाए रखते हो—वर्तमान से, कुरूप वर्तमान से बचने के लिए।

जो जाग्रत है वह पूर्णतः जीवंत होकर अभी और यहीं जीता है। जो कुछ हो सकता है, हो चुका। उसका कोई भविष्य नहीं बचा। मृत्यु उसे मिटाएगी या नहीं, इसकी उसे कोई चिंता नहीं है। एक ही बात है। कुछ बचता है या सब मिट जाता है, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता। यह क्षण इतना समृद्ध है, इतना समग्रतः समृद्ध है, इतना सघन है कि उसका पूरा अस्तित्व अभी और यहीं होता है।

आनंद बुद्ध से बार-बार पूछता है, 'जब आपका शरीर छूटेगा तो क्या होगा ?' और बुद्ध बार-बार कहते हैं, 'आनंद, तू भविष्य की इतनी चिंता क्यों करता है ? तू मेरी ओर क्यों नहीं देखता कि अभी क्या हो रहा है ?' लेकिन फिर थोड़े

दिनों बाद वह पूछता है, 'जब किसी बुद्ध पुरुष का शरीर छूट जाता है तो क्या होता है ?'

वह अपने बारे में डरा हुआ है। वह भयभीत है। वह जानता है कि जब शरीर मर जाता है तो उसे पुनरुज्जीवित करने का कोई उपाय नहीं है। फिर बचने की, बने रहने की कोई संभावना नहीं है। और उसे कुछ उपलब्ध नहीं हुआ। दीया ऐसे ही बुझ जाएगा, यह सब व्यर्थ ही रहा। यदि बिना कुछ उपलब्ध हुए ही मृत्यु हो गई तो वह मिट ही जाएगा। तो फिर सब व्यर्थ हो जाएगा। वह चिंतित था; वह जानना चाहता था कि शरीर के बाद भी कुछ बचता है या नहीं। लेकिन बुद्ध कहते हैं, 'मैं अभी और यहां हूं। भविष्य में क्या होगा इसकी चिंता ही नहीं करनी है।'

तो पहली बात है कि जाग्रत व्यक्ति इसकी चिंता ही नहीं करता। यह जाग्रत लोगों की पहली पहचान है, उन्हें भविष्य की चिंता नहीं होती।

और दूसरी बात, तुमने पूछा, वह कैसे निश्चित रूप से जानता है ?

ज्ञान सदा निश्चित होता है। ज्ञान के लिए निश्चित होना अंतर्निहित है। तुम्हें सिर में दर्द हो रहा है। मैं पूछ सकता हूं, 'तुम्हें कैसे पता है कि तुम्हारे सिर में दर्द हो रहा है ?' तुम कहोगे, 'मैं जानता हूं।' मैं पूछ सकता हूं, 'लेकिन तुम्हें कैसे पता है कि तुम्हारी जानकारी सही ही है, गलत नहीं है ?' लेकिन कोई भी ऐसे नासमझी के प्रश्न नहीं पूछता। जब सिर-दर्द होता है तो होता है, तुम जानते हो।

ज्ञान भीतर से निश्चित होता है। जब कोई जाग्रत होता है तो वह जानता है कि वह जाग्रत हो गया: वह जानता है कि यह शरीर नहीं है; वह जानता है कि भीतर वह विस्तीर्ण अवकाश, स्पेस है। और वह स्पेस मर नहीं सकती। वस्तुएं मर सकती हैं, वह अवकाश नहीं मर सकता।

जरा इस कक्ष के बारे में सोचो। हम इस भवन 'वुडलैंड्स' को नष्ट कर सकते हैं, लेकिन हम इस कक्ष की कक्षता को, स्पेस को नष्ट नहीं कर सकते। क्या तुम इसे नष्ट कर सकते हो ? दीवारें नष्ट की जा सकती हैं, लेकिन हम इस कमरे में खालीपन में, स्पेस में बैठे हुए हैं। दीवारें नष्ट की जा सकती हैं, लेकिन तुम इस कमरे को, दीवारों को नहीं, इस स्पेस को कैसे नष्ट कर सकते हो ? पूरा का पूरा 'वुडलैंड्स' समाप्त हो सकता है—और एक दिन होगा भी—लेकिन यह स्पेस तो बचेगी ही।

तुम्हारा शरीर समाप्त होता है। क्योंकि तुम्हें इनर स्पेस का पता नहीं है इसलिए तुम भयभीत हो। तुम निश्चित रूप से जानना चाहते हो। लेकिन बुद्ध

पुरुष जानता है कि वह स्पेस है, शरीर नहीं—दीवारें नहीं, बल्कि अंतर-आकाश। दीवारें गिर जाएंगी, वे कई बार गिरी हैं, लेकिन आंतरिक अवकाश तो रहेगा ही। इसके लिए उसे प्रमाण नहीं जुटाने होते, यह उसका अपना ज्ञान होता है। वह इसे जानता है। ज्ञान में सुनिश्चितता अंतर्निहित है।

यदि तुम्हारा ज्ञान अनिश्चित है तो जानना कि वह ज्ञान नहीं है। मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'हमारा ध्यान बहुत अच्छा चल रहा है। हम बड़े खुश हैं।' और फिर अचानक वे मुझसे पूछते हैं, 'आप इसके बारे में क्या कहते हैं ? क्या यह खुशी सच है ? क्या हम सच में सुखी हैं ?'

वे मुझसे पूछते हैं ! वे अपने सुख के विषय में निश्चित नहीं हैं। यह कैसा ज्ञान है ? वे बस दिखावा कर रहे हैं। लेकिन वे स्वयं को धोखा नहीं दे सकते। वे सोच रहे हैं, वे आशा कर रहे हैं—लेकिन सुखी हैं नहीं। नहीं तो मुझसे पूछने की जरूरत क्या है।

मैं कभी किसी से पूछने नहीं जाता कि मैं सुखी हूं या नहीं। मैं क्यों जाऊं ? अगर मैं सुखी हूं तो सुखी हूं, अगर नहीं हूं तो नहीं हूं। और कौन इसका प्रमाण दे सकता है ? यदि मैं गवाह नहीं हो सकता तो फिर मेरे लिए और कौन गवाह बनेगा ? और दूसरा कैसे गवाह बन सकता है ?

तो कभी-कभी मैं खेल खेलता हूं। कभी-कभी मैं कह देता हूं, 'हां, तुम सुखी हो, बिलकुल सुखी हो।' और वे मेरी बात सुनकर और खुश हो जाते हैं। और कभी-कभी मैं कह देता हूं, 'नहीं, तुममें कुछ नजर नहीं आता, कोई संकेत नहीं है। तुम सुखी नहीं हो। तुम सपना देख रहे होओगे।' और वे बुझ जाते हैं, उनका सुख समाप्त हो जाता है, वे उदास हो जाते हैं। यह कैसा सुख है ? बस इतना कहने से कि तुम सुखी हो, तुम्हारा सुख बढ़ जाता है; और इतना कहने से कि तुम सुखी नहीं हो, सुख गायब हो जाता है !

वे सुखी होने की कोशिश कर रहे हैं, पर सुखी हैं नहीं। यह ज्ञान नहीं है, बस वे अपनी इच्छा पूरी कर रहे हैं। वे आशा कर रहे हैं और सोचते हैं कि वे दूसरों को धोखा दे सकते हैं। यह सोचने से कि वे सुखी हैं, विश्वास करने से कि वे सुखी हैं, कोई प्रमाण खोजकर, किसी से प्रमाणपत्र पाकर कि वे सुखी हैं, वे सोचते हैं कि वे सुख पैदा कर लेंगे। यह आसान नहीं है।

जब अंतर्जगत में कुछ होता है तो तुम्हें पता चल जाता है कि हो गया। तुम्हें किसी प्रमाणपत्र की जरूरत नहीं रहती। किसी की भी सहमति पाने की मांग ही बचकानी है। इससे पता चलता है कि तुम सुख चाहते हो, लेकिन तुमने सुख पाया नहीं है। तुम उसे जानते नहीं। अभी सुख तुम्हें घटित नहीं हुआ।

जो ज्ञान को उपलब्ध हो गया है वह सदा निश्चित होता है। और जब मैं कहता हूं निश्चित, सुनिश्चित, तो मेरा यह अर्थ नहीं है कि उसे कुछ अनिश्चित है और उस अनिश्चित के विरुद्ध वह निश्चित अनुभव करता है। नहीं, वह बस निश्चित होता है। अनिश्चय का कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं जीवित हूं। क्या मुझे इसका निश्चय है ? निश्चय का कोई प्रश्न ही नहीं है। निश्चय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह बात निर्विवाद रूप से स्पष्ट है। इसका निर्णय नहीं होना है। मैं जीवित हूं।

सुकरात मृत्युशय्या पर था और किसी ने उससे पूछा, 'सुकरात तुम इतनी सरलता से, इतनी खुशी से मर रहे हो। क्या बात है ? क्या तुम भयभीत नहीं हो ? क्या तुम्हें डर नहीं है ?'

सुकरात ने एक बड़ी सुंदर बात कही। उसने कहा, 'मेरे मर जाने के बाद दो ही संभावनाएं हैं—या तो मैं रहूंगा, या नहीं रहूंगा। यदि मैं नहीं रहता तो कोई प्रश्न नहीं है, यह जानने के लिए भी कोई नहीं होगा कि मैं नहीं हूं। पूरी बात ही समाप्त हो गई। और यदि मैं रहता हूं तो फिर कोई प्रश्न ही नहीं उठता, मैं हूं ही। केवल दो ही संभावनाएं हैं—या तो मैं रहूंगा या नहीं रहूंगा, और दोनों ही बातें ठीक हैं। यदि मैं हूं तो सब ठीक ही है। यदि मैं नहीं हूं तो जानने के लिए भी कोई नहीं होगा, तो चिंता क्यों ?'

वह कोई बुद्ध पुरुष नहीं है, पर बहुत बुद्धिमान व्यक्ति है। याद रखो, बुद्ध पुरुष और बुद्धिमान व्यक्ति के बीच यही अंतर है। बुद्धिमान व्यक्ति हर चीज को गहराई से सोचता है, मनन करता है, गहराई में प्रवेश करता है और निष्कर्ष पर पहुंचता है। वह बहुत समझदार आदमी है। वह कहता है कि बस दो विकल्प हैं। तर्कसंगत रूप से वह मृत्यु में प्रवेश करता है—'केवल दो संभावनाएं हैं—या तो मैं समाप्त हो जाऊंगा, नहीं बचूंगा; या मैं बचूंगा।' क्या कोई तीसरा विकल्प है ? तीसरा कोई विकल्प नहीं है। तो सुकरात कहता है, 'मैंने दोनों के बारे में सोचा है। यदि मैं बचता हूं तो चिंता करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यदि मैं नहीं बचता तो चिंता करने के लिए बचेगा कौन ! तो अभी क्यों चिंता करूं ? जो होगा उसे देख लूंगा।'

वह जानता नहीं है, उसे पता नहीं है कि क्या होने वाला है, लेकिन बड़ी बुद्धिमानी से उसने इसके विषय में सोचा है। वह कोई बुद्ध नहीं है, पर बहुत प्रतिभाशाली है। लेकिन तुम यदि बुद्धिमान भी हो सको—बुद्ध नहीं, क्योंकि बुद्धत्व तो न ज्ञान है न अज्ञान, बुद्धत्व तो द्वैत का अतिक्रमण है—यदि तुम बुद्धिमान भी हो सको तो तुम विश्रांत हो जाओगे; यदि तुम बुद्धिमान भी हो सको तो बड़े

तृप्त हो जाओगे।

लेकिन तंत्र अथवा योग का लक्ष्य तो वह परम अवस्था है, जहां ज्ञान और अज्ञान दोनों का अतिक्रमण हो जाता है। जहां व्यक्ति बस जानता है सोचता नहीं, बस देखता है, द्रष्टा है, होशपूर्ण है।

अंतिम प्रश्न :

मैं निश्चित ही बुद्धत्व को उपलब्ध होना चाहता हूं। लेकिन यदि मैं उपलब्ध हो भी जाता हूं तो इससे बाकी संसार को क्या अंतर पड़ेगा?

लेकिन तुम बाकी संसार की चिंता क्यों कर रहे हो ? संसार को अपनी चिंता स्वयं करने दो। और तुम्हें इसकी चिंता नहीं है कि यदि तुम अज्ञानी रह गए तो बाकी संसार का क्या होगा ...।

यदि तुम अज्ञानी हो तो बाकी संसार का क्या होता है ? तुम दुख पैदा करते हो। ऐसा नहीं कि तुम जान-बूझ कर करते हो, पर तुम ही दुख हो; तुम जो भी करो, सब ओर दुख के ही बीज बोते हो। तुम्हारी आकांक्षा व्यर्थ है; तुम्हारा होना महत्त्वपूर्ण है। तुम सोचते हो कि तुम दूसरों की सहायता कर रहे हो, पर तुम बाधा ही डालते हो। तुम सोचते हो कि तुम दूसरों से प्रेम करते हो, पर शायद तुम उनकी हत्या ही कर रहे हो। तुम सोचते हो कि दूसरों को कुछ सिखा रहे हो, पर हो सकता है तुम सदा अज्ञानी ही बने रहने में उनकी मदद कर रहे हो। क्योंकि तुम जो चाहते हो, तुम जो सोचते हो, तुम जो आकांक्षा करते हो, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। तुम क्या हो, यह महत्त्वपूर्ण है।

प्रतिदिन मैं लोगों को देखता हूं जो एक-दूसरे को प्रेम करते हैं, लेकिन वे मार रहे हैं एक-दूसरे को। वे सोचते हैं वे प्रेम कर रहे हैं, वे सोचते हैं वे दूसरे के लिए जी रहे हैं और उनके बिना उनके परिवार, उनके प्रेमियों, उनके बच्चों, उनकी पत्नियों, उनकी पतियों का जीवन दुख से भर जाएगा। लेकिन वे लोग इनके साथ दुखी हैं। और वे हर तरह से सुख देने की कोशिश करते हैं, पर वे जो भी करें गलत हो जाता है।

ऐसा होगा ही, क्योंकि वे गलत हैं। करना अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, जिस व्यक्तित्त्व से वह उठ रहा है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण है। यदि तुम अज्ञानी हो तो संसार को नर्क बनाने में मदद दे रहे हो। यह पहले ही नर्क है—यह तुम्हारी ही निर्मिति है। जहां भी तुम स्पर्श करते हो नर्क बना लेते हो।

यदि तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते हो तो तुम कुछ भी करो—या तुम्हें

कुछ करने की भी जरूरत नहीं है—बस तुम्हारे होने से, तुम्हारी उपस्थिति से दूसरों को खिलाने में, सुखी होने में, आनंदित होने में सहायता मिलेगी।

लेकिन उसकी चिंता तुम्हें नहीं लेनी है। पहली बात तो यह है कि बुद्धत्व को कैसे उपलब्ध होना है। तुम मुझसे पूछते हो, 'मैं बुद्धत्व को उपलब्ध होना चाहता हूं।' लेकिन यह चाह बड़ी नपुंसक मालूम होती है, क्योंकि इसके तुरंत बाद तुम कहते हो 'लेकिन'। जब भी लेकिन बीच में आ जाता है तो उसका अर्थ है अभीप्सा नपुंसक है। 'लेकिन संसार का क्या होगा ?' तुम हो कौन ? अपने बारे में तुमने सोच क्या रखा है ? क्या संसार तुम पर निर्भर है ? क्या तुम इसे चला रहे हो ? तुम इसकी देख-भाल कर रहे हो ? तुम उत्तरदायी हो ? स्वयं को इतना महत्त्व क्यों देते हो ? इतना महत्त्वपूर्ण क्यों समझते हो ?

यह भाव अहंकार का हिस्सा है। और दूसरों की यह चिंता तुम्हें कभी भी अनुभव के शिखर पर नहीं पहुंचने देगी, क्योंकि वह शिखर तभी उपलब्ध होता है जब तुम सब चिंताएं छोड़ देते हो। और तुम चिंताएं इकट्ठी करने में इतने कुशल हो कि बस अद्भुत हो। अपनी ही नहीं दूसरों की भी चिंताएं इकट्ठी किए चले जाते हो, जैसे कि तुम्हारी अपनी चिंता पर्याप्त नहीं है। तुम दूसरों के बारे में सोचते रहते हो। और तुम क्या कर सकते हो ? तुम बस और अधिक चिंतित और पागल हो सकते हो।

मैं एक वाइसराय, लार्ड वैवेल की डायरी पढ़ रहा था। वह आदमी बड़ा ईमानदार मालूम होता है क्योंकि उसके कई वक्तव्य बहुत अद्भुत हैं। एक वक्तव्य में वह कहता है, 'जब तक ये तीन बूढ़े, गांधी, जिन्ना और चर्चिल नहीं मर जाते तब तक भारत मुसीबत में ही रहेगा।' ये तीन लोग—गांधी, जिन्ना और चर्चिल—और ये ही हर तरह से मदद कर रहे थे ! चर्चिल का अपना वाइसराय लिखता है कि इन तीन लोगों को जल्दी मर जाना चाहिए। और बड़ी आशा है वह उनकी उम्र भी लिखता है—गांधी 75, जिन्ना 65 और चर्चिल 68 । क्योंकि यह तीन समस्याएं हैं।

क्या तुम गांधी जी के बारे में यह कल्पना कर सकते हो कि वे ही समस्या हैं ? या जिन्ना ? या चर्चिल ? तीनों ही इस देश की समस्याओं को सुलझाने की पूरी कोशिश कर रहे थे ! और वैवेल कहता है कि यही तीनों समस्या हैं, क्योंकि ये तीनों बड़े हठी हैं; तीनों में से हर-एक के पास पूरा-पूरा सत्य है और बाकी दोनों को बिलकुल गलत समझते हैं। ये तीनों कहीं नहीं मिल सकते, बाकी दो बस गलत हैं। मिलने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

हर कोई यही सोचता है कि जैसे वही केंद्र है और उसे ही पूरे संसार की

चिंता करनी है और पूरे संसार को बदलना है, रूपांतरित करना है, आदर्श संसार बनाना है। तुम बस इतना ही कर सकते हो कि स्वयं को बदल लो। तुम संसार को नहीं बदल सकते। इसे बदलने के चक्कर में तुम और गड़बड़ कर सकते हो, और अराजकता बढ़ा सकते हो; और हानि पहुंचा सकते हो और परेशान हो सकते हो। पहले ही संसार इतना परेशान है और तुम उसकी परेशानी बढ़ा दोगे, उसकी उलझन बढ़ा दोगे।

संसार को कृपा करके उसके हाल पर ही छोड़ दो। तुम बस एक ही बात कर सकते हो, वह यह कि आंतरिक मौन, आंतरिक आनंद, आंतरिक प्रकाश को उपलब्ध हो जाओ। यदि तुम यह उपलब्ध कर लो तो तुमने संसार की बहुत सहायता कर दी। अज्ञान के केवल एक बिंदु को प्रकाश की लौ में बदलकर, केवल एक व्यक्ति के अंधकार को प्रकाश में बदलकर, तुमने संसार के एक हिस्से को बदल दिया। और उस बदले हुए हिस्से से बात आगे बढ़ेगी। बुद्ध मरे नहीं हैं। जीसस मरे नहीं हैं। वे मर नहीं सकते, क्योंकि एक शृंखला चलती है—ज्योति से ज्योति जले। फिर एक उत्तराधिकारी पैदा होता है और यह क्रम आगे चलता रहता है, वे सदा जीवित रहते हैं।

लेकिन यदि तुममें प्रकाश नहीं है, तुम्हारे दीये में ज्योति ही नहीं है, तो पहले तुम अपनी अंतर्ज्योति को प्राप्त करो। तभी दूसरे भागीदार हो सकते हैं। तभी तुम दूसरों की ज्योति जला सकते हो। फिर यह एक शृंखला बन जाती है। फिर तुम्हारी देह खो सकती है, पर तुम्हारी ज्योति एक हाथ से दूसरे हाथ में पहुंच जाएगी। अनंत तक यह क्रम चलता चला जाता है। बुद्ध कभी नहीं मरते, बुद्ध पुरुष कभी नहीं मरते, क्योंकि उनका प्रकाश एक शृंखला बन जाता है। और अज्ञानी कभी नहीं जीते, क्योंकि वे कोई शृंखला पैदा नहीं कर सकते, उनके पास बांटने के लिए कोई ज्योति नहीं है।

तो बस अपनी ही चिंता कर लो। मैं कहता हूं स्वार्थी बनो, क्योंकि स्व से मुक्त होने का यही एक उपाय है, संसार की सहायता करने का यही एक उपाय है। संसार की चिंता मत करो; उससे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। जितनी बड़ी तुम्हारी चिंताएं होती हैं, उतने ही बड़े तुम सोचते हो कि तुम्हारे उत्तरदायित्व हैं; और जितने बड़े तुम्हारे उत्तदायित्व होते हैं उतना ही तुम स्वयं को महान समझते हो। महान तुम हो नहीं, बस विक्षिप्त हो। दूसरों की सहायता करने के पागलपन से बाहर निकलो। बस अपनी सहायता कर लो। बस इतना ही किया जा सकता है।

और फिर बहुत कुछ होगा—लेकिन वह सब एक परिणाम की तरह होता

है। एक बार तुम प्रकाश के एक स्रोत बन जाओ तो घटनाएं घटने लगती हैं। कई लोग इसमें भागीदार बनेंगे, बहुत लोग इससे बुद्धत्व को उपलब्ध होंगे, बहुत लोग इससे जीवन को, महा-जीवन को उपलब्ध होंगे। लेकिन इस बारे में सोचो मत। सीधे-सीधे तुम इस बारे में कुछ भी नहीं कर सकते। केवल एक चीज की जा सकती है—तुम जाग्रत हो सकते हो। फिर सब कुछ अपने आप होता है।

जीसस ने कहीं कहा है, 'पहले प्रभु के राज्य में प्रवेश कर जाओ पहले प्रभु के राज्य को खोज लो, फिर और सब कुछ तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा।' मैं भी यही दोहराता हूं।

आज इतना ही।

ओशो—एक परिचय

बुद्धत्व की प्रवाहमान धारा में ओशो एक नया प्रारंभ हैं, वे अतीत की किसी भी धार्मिक परंपरा या श्रृंखला की कड़ी नहीं हैं। ओशो से एक नये युग का शुभारंभ होता है और उनके साथ ही समय दो सुस्पष्ट खंडों में विभाजित होता है—ओशो पूर्व तथा ओशो पश्चात।

ओशो के आगमन से एक नये मनुष्य का, एक नये जगत का, एक नये युग का सूत्रपात हुआ है, जिसकी आधारशिला अतीत के किसी धर्म में नहीं है, किसी दार्शनिक विचार-पद्धति में नहीं है। ओशो सद्यःस्नात धार्मिकता के प्रथम पुरुष हैं, सर्वथा अनूठे संबुद्ध रहस्यदर्शी हैं।

मध्यप्रदेश के कुचवाड़ा गांव में 11 दिसंबर, 1931 को जन्मे ओशो का बचपन का नाम रजनीश था। उन्होंने जीवन के प्रारंभिक काल में ही एक निर्भीक स्वतंत्र आत्मा का परिचय दिया। खतरों से खेलना उन्हें प्रीतिकर था। 100 फीट ऊंचे पुल से कूद कर बरसात में उफनती नदी को तैरकर पार करना उनके लिए साधारण खेल था। युवा ओशो ने अपनी अलौकिक बुद्धि तथा दृढ़ता से पंडित-पुरोहितों, मुल्ला-पादरियों, संत-महात्माओं—जो स्वानुभव के बिना ही भीड़ के अगुवा बने बैठे थे—की मूढ़ताओं और पाखंडों का पर्दाफाश किया।

21 मार्च, 1953 को इक्कीस वर्ष की आयु में ओशो संबोधि को उपलब्ध हुए। संबोधि के संबध में वे कहते हैं, 'अब मैं किसी भी प्रकार की खोज में नहीं हूं। अस्तित्व ने अपने समस्त द्वार मेरे लिए खोल दिये हैं।' उन दिनों वे जबलपुर के एक कालेज में दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी थे। बुद्धत्व घटित होने के पश्चात् भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी और सन् 1957 में सागर विश्वविद्यालय से दर्शनशास्त्र में प्रथम श्रेणी में प्रथम (गोल्ड मेडलिस्ट) रहकर एम. ए. की उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात् वे जबलपुर विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक पद पर कार्य करने लगे। विद्यार्थियों के बीच वे 'आचार्य रजनीश' के नाम से अतिशय लोकप्रिय थे।

विश्वविद्यालय के अपने नौ सालों के अध्यापन-काल के दौरान वे पूरे भारत में भ्रमण भी करते रहे। प्रायः ही 60-70 हजार की संख्या में उपस्थित होनेवाले श्रोताओं में वे आध्यात्मिक जन-जागरण की लहर फैला रहे थे। उनकी वाणी में और उनकी उपस्थिति में वह जादू था, वह सुगंध थी जो किसी पार के लोक से आती है।

सन् 1966 में ओशो ने विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दे दिया ताकि वे ध्यान की कला को और एक नये मनुष्य—जोरबा दि बुद्धा—के अपने जीवन-दर्शन

को अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुंचा सकें। 'ज़ोरबा दि बुद्धा' एक ऐसा मनुष्य है जो भौतिक जीवन का पूरा आनंद मनाना जानता है; जो मौन होकर ध्यान में उतरने में भी सक्षम है—ऐसा मनुष्य जो भौतिक और आध्यात्मिक, दोनों तरह से समृद्ध है।

सन् 1970 में वे बंबई में रहने के लिए आ गये। अब पश्चिम से सत्य के खोजी भी जो भौतिक समृद्धि से ऊब चुके थे और जीवन के लिए किन्हीं और गहरे रहस्यों को जानने और समझने के लिए उत्सुक थे, उन तक पहुंचने लगे। ओशो ने उन्हें बताया कि अगला कदम ध्यान है। ध्यान ही जीवन में सार्थकता के फूलों के खिलने में सहयोगी सिद्ध होगा।

इसी वर्ष सितंबर में, मनाली (हिमालय) में आयोजित अपने एक शिविर में ओशो ने नव-संन्यास में दीक्षा देना प्रारंभ किया। इसी समय के आस-पास वे आचार्य रजनीश से भगवान श्री रजनीश के रूप में जाने जाने लगे।

सन् 1974 में वे अपने बहुत से संन्यासियों के साथ पूना आ गये जहां 'श्री रजनीश आश्रम' की स्थापना हुई। पूना आने पर उनके प्रभाव का घेरा विश्वव्यापी होने लगा।

श्री रजनीश आश्रम, पूना में प्रतिदिन अपने प्रवचनों में ओशो ने मानव-चेतना के विकास के हर पहलू को उजागर किया। कृष्ण, शिव, महावीर, बुद्ध, शांडिल्य, नारद, जीसस के साथ-ही-साथ भारतीय अध्यात्म आकाश के अनेक संतों—आदि शंकराचार्य, गोरख, कबीर, नानक, मलूकदास, रैदास, दरियादास, मीरा आदि पर उनके हजारों प्रवचन उपलब्ध हैं। जीवन का ऐसा कोई भी आयाम नहीं है जो उनके प्रवचनों से अस्पर्शित रहा हो। योग, तंत्र, ताओ, झेन, हसीद, सूफी जैसी अनेक साधना-पद्धतियों के गूढ़ रहस्यों पर उन्होंने सविस्तार प्रकाश डाला है। साथ ही राजनीति, कला, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन, शिक्षा, परिवार, समाज, गरीबी, जनसंख्या-विस्फोट, पर्यावरण, संभावित परमाणु युद्ध का विश्व-संकट जैसे अनेक विषयों पर भी उनकी क्रांतिकारी जीवन-दृष्टि उपलब्ध है।

शिष्यों और साधकों के बीच दिए गए उनके ये प्रवचन छह सौ पचास से भी अधिक पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं और तीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित हो चुके हैं। वे कहते हैं, "मेरा संदेश कोई सिद्धांत, कोई चिंतन नहीं है। मेरा संदेश तो रूपांतरण की एक कीमिया, एक विज्ञान है।"

वे दिन में केवल दो बार बाहर आते रहे—प्रातः प्रवचन देने के लिए और संध्या समय सत्य की यात्रा पर निकले हुए साधकों को मार्गदर्शन एवं नये प्रेमियों को संन्यास-दीक्षा देने के लिए।

वर्ष 1979 में कट्टरपंथी हिंदू समुदाय के एक सदस्य द्वारा उनकी हत्या का प्रयास भी उनके एक प्रवचन के दौरान किया गया।

अचानक शारीरिक रूप से बीमार हो जाने से 1981 की वसंत ऋतु में वे मौन में चले गये। चिकित्सकों के परामर्श पर उसी वर्ष उन्हें जून में अमरीका ले जाया गया।

उनके अमरीकी शिष्यों ने ओरेगॅन के मध्य भाग में 64,000 एकड़ जगह खरीदी जहां उन्होंने ओशो को रहने के लिए आमंत्रित किया। धीरे-धीरे यह जगह एक फूलते-फलते शहर में परिवर्तित होती गई। वहां लगभग 5000 प्रेमी मित्र मिल-जुलकर अपने सद्गुरु के सान्निध्य में आनंद और उत्सव के वातावरण में एक अनूठे नगर के सृजन को यथार्थ रूप दे रहे थे।

जैसे अचानक एक दिन ओशो मौन हो गये थे वैसे ही अचानक अक्टूबर, 1984 में उन्होंने पुनः प्रवचन देना प्रारंभ कर दिया।

मध्य सितंबर, 1985 में ओशो की सचिव के रजनीशपुरम छोड़कर चले जाने के बाद उसके अपराधों की खबरें ओशो तक पहुंचीं। उसके अपराधपूर्ण कृत्यों के संबंध में बताने के लिए एक विश्व पत्रकार-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें ओशो ने स्वयं प्रशासन-अधिकारियों से अपनी सचिव को गिरफ्तार करने को कहा। लेकिन अधिकारियों की खोजबीन का उद्देश्य कम्यून को नष्ट करना था, न कि सचिव के अपराधपूर्ण कृत्यों का पता लगाना। प्रारंभ से ही कम्यून के इस प्रयोग को नष्ट करने के लिए अमरीका की संघीय, राज्य और स्थानीय सरकारें हर संभव प्रयास कर रही थीं। यह उनके लिए एक अच्छा मौका था।

अक्टूबर, 1985 में अमरीकी सरकार ने ओशो पर आप्रवास-नियमों के उल्लंघन के 35 मनगढ़ंत आरोप लगाए। बिना किसी गिरफ्तारी-वारंट के ओशो को बंदूकों की नोक पर हिरासत में ले लिया गया। 12 दिनों तक उनकी जमानत स्वीकार नहीं की गयी और उनके हाथ-पैर में हथकड़ी व बेड़ियां डालकर उन्हें एक जेल से दूसरी जेल ले जाया जाता रहा। जगह-जगह घुमाते हुए उन्हें पोर्टलैंड (ओरेगॅन) ले जाया गया। सामान्यतः जो यात्रा पांच घंटे की है, वह आठ दिन में पूरी की गयी। जेल में उनके शरीर के साथ बहुत दुर्व्यवहार किया गया और यहीं संघीय सरकार के अधिकारियों ने उन्हें 'थेलियम' नामक धीमे असरवाला जहर दिया।

14 नवंबर, 1985 को अमरीका छोड़ कर ओशो भारत लौट आये। यहां की तत्कालीन सरकार ने उन्हें विश्व से अलग-थलग कर देने का पूरा प्रयास किया। उनकी देखभाल करनेवाले उनके गैर-भारतीय शिष्यों के वीसा रद कर दिये गये, उन्हें मिलने के लिए आनेवाले पत्रकारों और उनके शिष्यों को वीसा देने से इनकार किया गया। तब ओशो नेपाल चले गये। लेकिन उन्हें नेपाल में भी अधिक समय तक रुकने की अनुमति नहीं दी गयी।

फरवरी, 1986 में वे विश्व-भ्रमण के लिए निकले, जिसकी शुरुआत उन्होंने ग्रीस से की। लेकिन अमरीका के दबाव के अंतर्गत 21 देशों ने या तो उन्हें देश से निष्कासित किया या फिर देश में प्रवेश की अनुमति ही नहीं दी। इन तथाकथित स्वतंत्र लोकतांत्रिक देशों में ग्रीस, इटली, स्विट्ज़रलैंड, स्वीडन, ग्रेट ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, हालैंड, कनाडा, जमाइका और स्पेन प्रमुख थे।

ओशो जुलाई, 1986 में बम्बई और जनवरी 1987 में पूना में अपने आश्रम लौटे, जो अब ओशो कम्यून इंटरनेशनल के नाम से जाना जाता है। यहां वे पुनः अपनी क्रांतिकारी शैली में अपने प्रवचनों के आग्नेय बाणों से पंडित-पुरोहितों और राजनेताओं के पाखंडों व मानवता के प्रति उनके षड्यंत्रों का पर्दाफाश करने लगे।

इसी बीच भारत सहित सारी दुनिया के बुद्धिजीवी वर्ग व समाचार माध्यमों ने ओशो के प्रति गैर-पक्षपातपूर्ण व विधायक चिंतन का रुख अपनाया। छोटे-बड़े सभी प्रकार के समाचारपत्रों व पत्रिकाओं में अक्सर उनके अमृत-वचन अथवा उनके संबंध में लेख व समाचार प्रकाशित होने लगे। देश के अधिकांश प्रतिष्ठित संगीतज्ञ, नर्तक, साहित्यकार, कवि व शायर ओशो कम्यून इंटरनेशनल में अक्सर आने लगे। मनुष्य की चिर-आकांक्षित यूटोपिया का सपना साकार देखकर उन्हें अपनी ही आंखों पर विश्वास न होता।

26 दिसंबर, 1988 को ओशो ने अपने नाम के आगे से 'भगवान' संबोधन हटा दिया। 27 फरवरी, 1989 को ओशो कम्यून इंटरनेशनल के बुद्ध सभागार में प्रवचन के दौरान उनके 10,000 शिष्यों व प्रेमियों ने एकमत से अपने प्यारे सद्गुरु को 'ओशो' नाम से पुकारने का निर्णय लिया।

अक्टूबर, 1985 में अमरीका की रीगन सरकार द्वारा ओशो को थेलियम नामक धीमा असर करने वाला जहर दिये जाने के कारण एवं उनके शरीर को प्राणघातक रेडिएशन से गुजारे जाने के कारण उनका शरीर तब से निरंतर अस्वस्थ रहने लगा था और भीतर से क्षीण होता चला गया, जिसके बावजूद वे ओशो कम्यूष इंटरनेशलन, पूना के गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में 10 अप्रैल, 1989 तक प्रतिदिन संध्या दस हजार शिष्यों, खोजियों और प्रेमियों की सभा में प्रवचन देते रहे और उन्हें ध्यान में डुबाते रहे।

17 सितंबर, 1989 से गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में केवल आधे घंटे के लिए आकर ओशो मौन दर्शन-सत्संग के संगीत और मौन में सबको डुबाते रहे। यह बैठक 'ओशो व्हाइट रोब ब्रदरहुड' कहलाती है। ओशो 16 जनवरी, 1990 तक प्रतिदिन संध्या सात बजे व्हाइट रोब ब्रदरहुड की सभा में उपस्थित होते रहे।

17 जनवरी को वे सभा में केवल नमस्कार करके वापस चले गए। 18 जनवरी को व्हाइट रोब ब्रदरहुड की सांध्य-सभा में उनके निजी चिकित्सक स्वामी अमृतो ने सूचना दी कि ओशो के शरीर में इतना दर्द है कि वे हमारे बीच नहीं आ सकते, लेकिन वे अपने कमरे में ही सात बजे से हमारे साथ ध्यान में बैठेंगे। दूसरे दिन 19 जनवरी, 1990 की संध्या-सभा में घोषणा की गई कि ओशो अपनी देह छोड़कर पांच बजे अपराह्न को महाप्रयाण कर गए हैं। ओशो की इच्छा के अनुरूप उसी संध्या उनका शरीर गौतम दि बुद्धा आडिटोरियम में दस मिनट के लिए लाकर रखा गया। दस हजार शिष्यों और प्रेमियों ने उनकी आखिरी विदाई का उत्सव संगीत-नृत्य, भावातिरेक और मौन में मनाया। फिर उनका शरीर दाहक्रिया के लिए ले जाया गया।

21 जनवरी, 1990 की पूर्वाह्न में उनके अस्थि-फूल का कलश महोत्सवपूर्वक कम्यून में लाकर च्वांग्त्सू हॉल में निर्मित एक संगमरमर की समाधि में स्थापित किया गया।

ओशो की समाधि पर स्वर्ण अक्षरों में अंकित है :

OSHO
Never Born
Never Died
Only Visited this
Planet Earth between
Dec 11, 1931—Jan 19, 1990

ओशो कम्यून, ध्यान और सृजन का यह अनूठा नव-संन्यास उपवन ओशो की विदेह-उपस्थिति में आज पूरी दुनिया के लिए एक ऐसा प्रबल चुंबकीय आकर्षण-केंद्र बन गया है कि यहां निरंतर नए-नए लोग आत्म-रूपांतरण के लिए आ रहे हैं तथा ओशो की सघन-जीवंत उपस्थिति की अनुभूति कर रहे हैं।

●●●

ओशो का हिन्दी साहित्य

उपनिषद

सर्वसार उपनिषद
कैवल्य उपनिषद
अध्यात्म उपनिषद
कठोपनिषद
ईशावास्य उपनिषद
निर्वाण उपनिषद
आत्म-पूजा उपनिषद
केनोपनिषद
मेरा स्वर्णिम भारत (विविध उपनिषद-सूत्र)

कृष्ण

गीता-दर्शन (आठ भागों में अठारह अध्याय)
कृष्ण-स्मृति

महावीर

महावीर-वाणी (दो भागों में)
महावीर-वाणी (पुस्तिका)
जिन-सूत्र (दो भागों में)
महावीर या महाविनाश
महावीर : मेरी दृष्टि में
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया

मीरा

पद घुंघरू बांध
झुक आई बदरिया सावन की

बुद्ध

एस धम्मो सनंतनो (बारह भागों में)

लाओत्से

ताओ उपनिषद (छह भागों में)

अष्टावक्र

महागीता (छह भागों में)

कबीर

सुनो भई साधो
कहै कबीर दीवाना
कहै कबीर मैं पूरा पाया
मगन भया रसि लागा
घूंघट के पट खोल
न कानों सुना न आंखों देखा (कबीर व फ़रीद)

शांडिल्य

अथातो भक्ति जिज्ञासा (दो भागों में)

दादू

सबै सयाने एक मत
पिव पिव लागी प्यास

जगजीवन

नाम सुमिर मन बावरे
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी

सुंदरदास
हरि बोलौ हरि बोल
ज्योति से ज्योति जले

पलटू
अजहूं चेत गंवार
सपना यह संसार
काहे होत अधीर

धरमदास
जस पनिहार धरे सिर गागर
का सोवै दिन रैन

मलूकदास
कन थोरे कांकर घने
रामदुवारे जो मरे

दरिया
कानों सुनी सो झूठ सब
अमी झरत बिगसत कंवल

झेन, सूफी और उपनिषद की कहानियां
बिन बाती बिन तेल
सहज समाधि भली
दीया तले अंधेरा

अन्य रहस्यदर्शी
भक्ति-सूत्र (नारद)
शिव-सूत्र (शिव)
भजगोविन्दम् मूढ़मते (आदिशंकराचार्य)
एक ओंकार सतनाम (नानक)
जगत तरैया भोर की (दयाबाई)
बिन घन परत फुहार (सहजोबाई)
नहीं सांझ नहीं भोर (चरणदास)
संतो, मगन भया मन मेरा (रज्जब)
कहै वाजिद पुकार (वाजिद)
मरौ हे जोगी मरौ (गोरख)
सहज-योग (सरहपा-तिलोपा)
बिरहिनी मंदिर दियना बार (यारी)
दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियादास बिहारवाले)
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलन)
हंसा तो मोती चुगैं (लाल)
गुरु-परताप साध की संगति (भीखा)
मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास)
झरत दसहुं दिस मोती (गुलाल)
जरथुस्त्र : नाचता-गाता मसीहा (जरथुस्त्र)

प्रश्नोत्तर
नहिं राम बिन ठांव
प्रेम-पंथ ऐसो कठिन
उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र
मृत्योर्मा अमृतं गमय
प्रीतम छवि नैनन बसी
रहिमन धागा प्रेम का
उड़ियो पंख पसार
सुमिरन मेरा हरि करैं
पिय को खोजन मैं चली
साहेब मिल साहेब भये
जो बोलैं तो हरिकथा
बहुरि न ऐसा दांव
ज्यूं था त्यूं ठहराया
ज्यूं मछली बिन नीर
दीपक बारा नाम का
अनहद में बिसराम
लगन महूरत झूठ सब
सहज आसिकी नाहिं
पीवत रामरस लगी खुमारी
रामनाम जान्यो नहीं

सांच सांच सो सांच
आपुई गई हिराय
बहुतेरे हैं घाट
कोंपलें फिर फूट आईं
फिर पत्तों की पाजेब बजी
फिर अमरित की बूंद पड़ी
चेति सकै तो चेति
क्या सोवै तू बावरी
एक एक कदम
चल हंसा उस देस
कहा कहूं उस देस की
पंथ प्रेम को अटपटो
मूलभूत मानवीय अधिकार
नया मनुष्य : भविष्य की एकमात्र आशा
सत्यम् शिवम् सुंदरम्
रसो वै सः
सच्चिदानंद
पंडित-पुरोहित और राजनेता : मानव आत्मा के शोषक
ॐमणि पद्मे हुम्
ॐशांतिः शांतिः शांतिः
हरि ॐतत्सत्
एक महान् चुनौती : मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य
मैं धार्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं

तंत्र

संभोग से समाधि की ओर
तंत्र-सूत्र (पांच भागों में)
तंत्र-सूत्र (पेपर बैक दस भागों में)

पत्र-संकलन

क्रांति-बीज
पथ के प्रदीप
अंतर्वीणा
प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल

बोध-कथा

मिट्टी के दीये

ध्यान, साधना, योग

ध्यानयोग : प्रथम और अंतिम मुक्ति
रजनीश ध्यान योग
हसिबा, खेलिबा, धरिबा ध्यानम्
नेति-नेति
मैं कहता आंखन देखी
पंतजलि : योग-सूत्र (दो भागों में)

साधना-शिविर

साधना-पथ
ध्यान-सूत्र
जीवन ही है प्रभु
माटी कहै कुम्हार सूं
मैं मृत्यु सिखाता हूं
जिन खोजा तिन पाइयां
समाधि के सप्त द्वार (ब्लावट्स्की)
साधना-सूत्र (मेबिल कॉलिन्स)

राष्ट्रीय और सामाजिक समस्याएं

देख कबीरा रोया
स्वर्ण पाखी था जो कभी और अब है भिखारी जगत का
शिक्षा में क्रांति
नये समाज की खोज

ओशो के संबंध में

भगवान श्री रजनीश : ईसा मसीह के पश्चात सर्वाधिक विद्रोही व्यक्ति

संपर्क सूत्र : साधना फाउण्डेशन, 17 कोरेगांव पार्क, पूना 411001

नए मनुष्य के लिए एक नया दृष्टिकोण

ओशो टाइम्स इंटरनेशनल

विश्व का एकमात्र शुभ समाचार-पत्र

एक वर्ष में 12 अंक

हिंदी संस्करण	साधारण डाक से	रजि.डाक से
वार्षिक शुल्क	150 रु.	250 रु.
अर्ध-वार्षिक	90 रु.	140 रु.

अंग्रेजी संस्करण वार्षिक सदस्यता शुल्क
480 रु. (रजि. डाक से)

ओशो टाइम्स का विशेष वार्षिकांक

हर साल 19 जनवरी पर उपलब्ध

संपर्क-सूत्र

ताओ पब्लिशिंग प्रा. लि.

50 कोरेगांव पार्क, पुणे-411 001, महाराष्ट्र
फोन : 0212-628562

नए मनुष्य के लिए एक नया दृष्टिकोण

ओशो

परम आनंद के सूत्र

- जीवन के प्रत्येक आयाम को तंत्र अपने में समाहित कर लेता है। तंत्र परम स्वीकार का मार्ग है, इसलिए परम आनंद का भी। तंत्र पूरे विश्व के साथ समानुभूति का मार्ग है। सजगता और संवेदनशीलता का मार्ग है, जिसके साथ हम पूरे जगत से एकरूप तथा विराट होते हैं। वही असली परम आनंद है। इसी परम आनंद के सर्वथा अनूठे मार्ग पर ओशो हमें निमंत्रण दे रहे हैं।
- इस दौर के सबसे सजग, संवेदनशील और मौलिक चिंतक संत ओशो द्वारा भगवान् शिव के 'विज्ञान भैरव तंत्र' पर दिए गए 80 प्रवचनों में से 73 से 80 प्रवचनों का संकलन किया गया है 'परम आनंद के सूत्र' में। आप ओशो का निमंत्रण स्वीकार करें, इन 112 वैज्ञानिक विधियों में से अपने अनुकूल विधि खोजकर ध्यान करें और अपना आध्यात्मिक विकास करें।
- ओशो के अनुसार ये विधियां केवल उनके लिए हैं, जो कुछ करने को तैयार हैं। इन पर दार्शनिक चिंतन-मनन अर्थहीन है। यदि सचमुच कुछ करने की तैयारी है, तो निश्चय ही आप में कुछ घटना शुरू हो जाएगा। ये जीवंत विधियां हैं। इसमें बुद्धि की नहीं, प्राणों की समग्रता की जरूरत है। कोई भी विधि, जो आपके काम की हो, उस पर अमल करो। तब आप अवश्य ही एक नए मनुष्य बन जाएंगे।

हिन्द पॉकेट बुक्स

Rs. 75/-
ISBN 81-216-0717-5
AHW HPB HINDI SERIES